जनवरी–मार्च : 2020

मूल्य : 60 रुपये

नया पथ

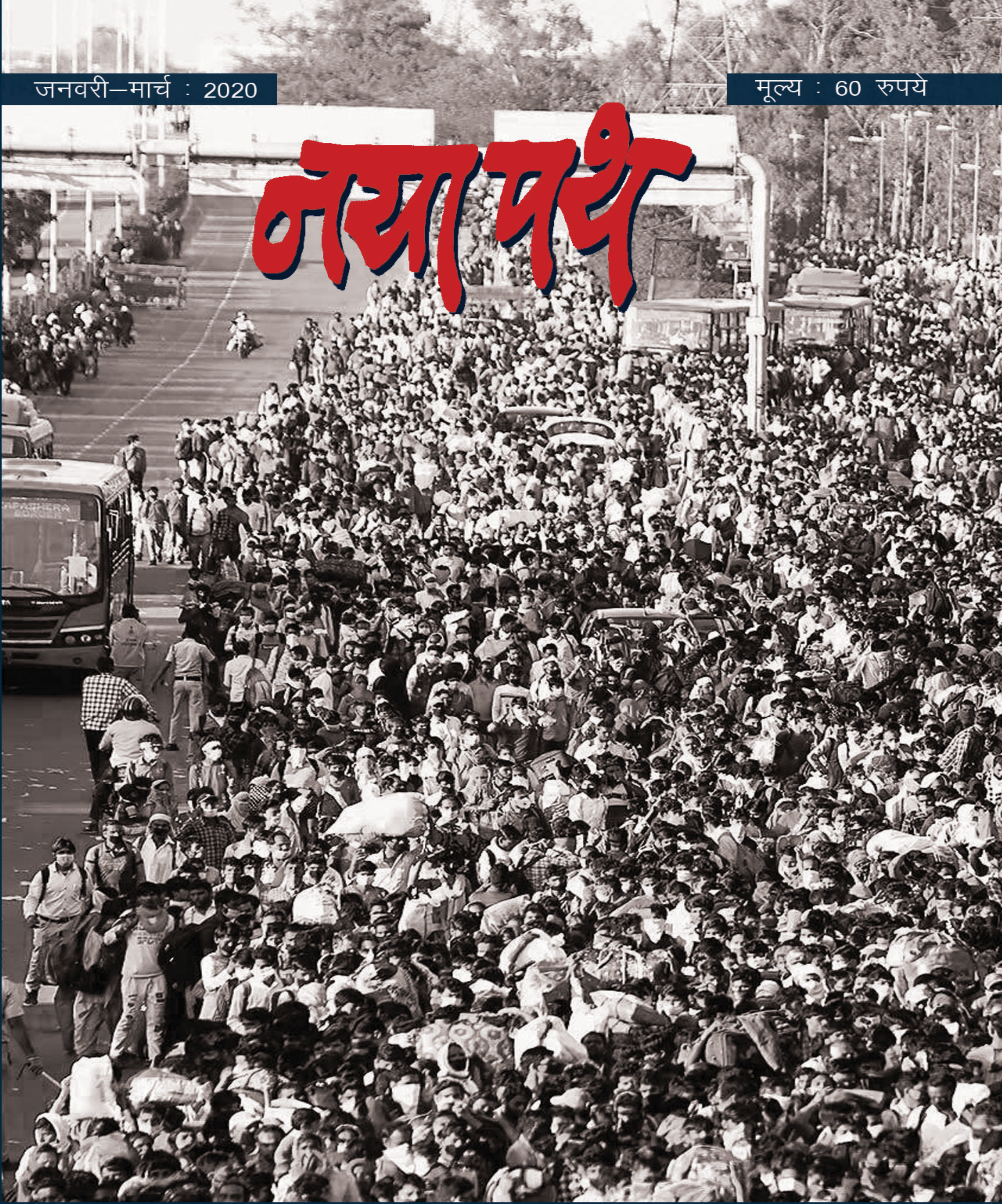

आततायी सत्ता और प्रतिरोध–2

हो चित्त जहाँ भयशून्य

हो चित्त जहाँ भयशून्य, माथ हो उन्नत,
हो ज्ञान जहाँ पर मुक्त, खुला यह जग हो-
घर की दीवारें बनें न कोई कारा,
हो जहाँ सत्य ही स्रोत सभी शब्दों का,
हो लगन ठीक से ही सब-कुछ करने की,
हों नहीं रूढ़ियाँ रचतीं कोई मरुथल-
पाये न सूखने इस विवेक की धारा।
हो सदा विचारों-कर्मों की गति फलती,
बातें हों सारी सोची और विचारी,
हे पिता! मुक्त वह स्वर्ग रचाओ हममें,
बस, उसी स्वर्ग में जागे देश हमारा।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर
बांग्ला से हिन्दी अनुवादः प्रयाग शुक्ल

संस्थापक
शिव वर्मा
संपादकीय परामर्श
असग़र वजाहत
संपादक
मुरली मनोहर प्रसाद सिंह
चंचल चौहान
संपादकीय सहयोग
कांतिमोहन सोज़'
रेखा अवस्थी
जवरीमल्ल पारख
संजीव कुमार
हरियश राय
बली सिंह
संजीव कौशल
आवरण
राशिद आलम
कंपोज़िंग
सुभाष कश्यप
कार्यालय सहयोग
मुशर्रफ़ अली
इस अंक की सहयोग राशि
साठ रुपये
(डाक ख़र्च अलग)
संपादकीय कार्यालय
ख़सरा नं 258, लेन नं 3, चंपा गली, वेस्ट एंड मार्ग, सैदुल्लाजाब, साकेत मैट्रो स्टेशन के पास, नयी दिल्ली-110030
Email : jlsind@gmail.com
मो. : 9818859545, 9818577833
Website: www.jlsindia.org
प्रकाशन, संपादन, प्रबंधन पूर्णतः ग़ैरव्यावसायिक और अवैतनिक।
पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखकों के अपने हैं, जलेस की सहमति आवश्यक नहीं।

जनवादी लेखक संघ की केंद्रीय पत्रिका

नया पथ

आततायी सत्ता और प्रतिरोध-2

वर्ष 34 : जनवरी-मार्च 2020

अनुक्रम

संपादकीय :
आततायी सत्ता के दौर में विपदाएं ही विपदाएं / 3

प्रतिरोध का संकल्प

अखिल भारतीय लेखक-कलाकार-वैज्ञानिक कन्वेंशन :
ऐलान / 5

आततायी मुहिम के नख-दंत

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा और स्त्रियां : *शुभा* / 9
इतिहास और समकालीन राजनीति : *नलिनी तनेजा* / 22
मोदी और चौथे खंभे का विध्वंस : *टी.के. राजलक्ष्मी* / 28
विवेक और वैज्ञानिक सोच पर हमला : *डी. रघुनंदन* / 34
बड़े व्यावसायिक घराने और भाजपा : *सुरजीत मजूमदार* / 44

औचक तालाबंदी में बेबस मज़दूर

बेसहारा मज़दूरों की गांव वापसी पर छह कविताएं :

विष्णु नागर, संजय कुंदन, नवल शुक्ल, धीरेंद्र तिवारी, देवी प्रसाद मिश्र, सृष्टि श्रीवास्तव / 48

कविताएं

मंगलेश डबराल, कुलदीप कुमार, लीलाधर मंडलोई, जयप्रकाश कर्दम, हरीश चंद्र पाण्डे, चैतन्य मित्र, विवेक निराला, संतोष चतुर्वेदी, बसंत त्रिपाठी, अंशु मालवीय, देवेंद्र चौबे, बली सिंह, महेंद्र सिंह बेनीवाल, सुदेश तनवर, मणिमोहन, सपना चमड़िया, विनीताभ, सीमा संगसार, टेकचंद, रानी कुमारी, उपासना गौतम, सुरेंद्र कुमार पांडेय / 59

गद्य कविता

काफ़ी मनुष्य होने के संस्मरण : *देवी प्रसाद मिश्र* / 111

ग़ज़लें और नज़्में

वक़ार सिद्दीक़ी, चंचल चौहान, सागर सयालकोटी, बल्ली सिंह चीमा, महेश कटारे 'सुगम', मुमताज, तसनीफ़ हैदर / 113

कथा-कहानी

और मूर्ति रोती रही : इब्ने कंवल / 126

मुक्ति द्वार के बाहर : *महेश दर्पण* / 129

बाबा के दरवाज़े : *संजय कुंदन* / 136

आठ लघुकथाएं : *संदीप मील* / 142

एन.एच. 43 की मौत : *विश्वासी एक्का* / 145

नाटक और सिनेमा

सांस्कृतिक प्रतिरोध में नाटक की भूमिका : *चंद्रेश / 149*

सिनेमा में प्रतिरोध के मायने : *संजय जोशी* / 153

पुस्तक समीक्षा

जस्टिस लोया की विवादित मौत : *मुरली मनोहर प्रसाद सिंह* / 160

लंबे विलंबित के बाद उठता स्वर : *दिनेश कुमार शुक्ल* / 162

कन्वेंशन रिपोर्ट

हम देखेंगे / 168

स्मृतिशेष

इस बीच जाने माने कवि रचनाकार गंगा प्रसाद विमल, प्रसिद्ध कथाकार कृष्ण बलदेव वैद, कथाकार गिरिराज किशोर, प्रगतिशील लेखक आलोचक खगेंद्र ठाकुर, लेखक और प्रकाशन संस्था, *ग्रंथशिल्पी* के संस्थापक डा. श्याम बिहारी राय, कहानीकार और संपादक प्रेम भारद्वाज, चित्रकला की दुनिया की महान शख़्सियत सतीश गुजराल, इतिहासकार प्रो. अर्जुन देव, कवि केदार नाथ कंत, कथाकार सुषुम बेदी, उपन्यासकार राजकृष्ण मिश्र, आदिवासी चित्रकार पेमा फत्या जैसे कई रचनाशील व्यक्तित्व दिवंगत हो गये। *नया पथ* परिवार की ओर से इन सभी को भावभीनी श्रद्धांजलि।

सांप्रदायिक हिंसा और तालाबंदी से उपजे संकट की वजह से अनेक मज़दूर, साधनहीन ग़रीब और कोरोना वायरस की चपेट में आये बहुमूल्य जीवन खो देने वाले नागरिकों को हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि।

संपादकीय

आततायी सत्ता के दौर में विपदाएं ही विपदाएं

आततायी सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध के स्वरों का इज़हार हर स्तर पर इतनी विपुल मात्रा में हुआ है कि उसे *नया पथ* के एक दो अंकों में समेटना क़तई संभव नहीं। इसीलिए पिछले अंक में ही हमें घोषित करना पड़ा था कि अगला अंक भी इसी विषय पर केंद्रित होगा। तो यह दूसरा अंक आपके सामने है।

इस बीच आततायी सत्ता ने अपना एक और घिनौना रूप दुनिया के सामने उजागर किया। पूर्वी दिल्ली के एक इलाक़े में, शाहीन बाग़ और दिल्ली व देश के कई अन्य इलाक़ों में संविधान की रक्षा के लिए चल रहे शांतिपूर्ण सत्याग्रहों की ही तरह का एक आंदोलन चल रहा था, उसे हटाने के लिए भाजपा के पराजित विधानसभा उम्मीदवार कपिल मिश्रा ने पुलिस को धमकाते हुए घोषणा की कि यदि पुलिस नाकाम रही, तो वे खुद अपने 'आदमियों' से वह जगह ख़ाली करवा लेंगे। सत्याग्रही हाथ में गुलाब का फूल लिये प्रेम और भाईचारे का संदेश दे रहे थे, कपिल मिश्रा और आर एस एस के गुंडे लाठियों, तलवारों और तमंचों से लैस हो कर सुनियोजित ढंग से हिंसा करने के इरादे से वहां पहुंचे थे। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के दौरे में व्यस्त पुलिस बल उस इलाक़े में बहुत कम तादाद में थे, जो मौजूद थे वे गुंडों के सामने टिक पाने में समर्थ नहीं थे, कुछ तो उनकी मदद ही कर रहे थे। इन हालात में, फ़ासीवादी आर एस एस ने ऐसा खूनी खेल खेला कि मानवता शर्मसार हो जाये। तीन दिन तक निर्दोष लोगों की हत्याएं होती रहीं। मकान, दुकान, स्कूल जलाने के कुकृत्य होते रहे। अमित शाह की पुलिस मूक दर्शक बनी रही। पुलिस के फ़ोन पर तीन हज़ार से ज़्यादा बेबस लोगों के 'कॉल' आते रहे। उन पर कोई कार्रवाई नहीं हुई, पुलिस रजिस्टर में कार्रवाई कालम ख़ाली पड़ा देखा गया, पुलिस ने संज्ञान ही नहीं लिया। हिंसा को इस तरह अंजाम दिया गया जिससे वह 'हिंदू मुस्लिम दंगा' जैसा दिखायी दे। इसी नज़रिये से पुलिस ने मुस्लिम युवाओं को भारी तादाद में गिरफ़्तार किया जबकि इस हिंसा को अंजाम दिलवाने वाले कपिल मिश्रा, अनुराग ठाकुर, प्रवेश वर्मा जैसे भाजपा के नेताओं पर केस दायर करने की बात तो दूर, उनकी सुरक्षा बढ़ा दी गयी। इससे पहले, जेएनयू में हिंसा करने वाले नक़ाबपोश आर एस एस-एबीवीपी के गुंडे भी अब तक नहीं पकड़े गये जबकि जेएनयू छात्र यूनियन की अध्यक्ष और सदस्यों पर मुक़दमा दायर कर दिया गया। जामिया में पुलिस का वहशी दमन और शाहीन बाग़ में खुले आम पिस्तौल चलाता और लहराता एबीवीपी का गुंडा सब ने देखा। आततायी सत्ता का यह असली चेहरा है।

दिल्ली में बहुत तबाही हुई, इस हिंसा से। इसलिए बहुत से संगठनों ने, सीपीआइ-एम ने व कुछ अन्य दलों ने तबाह हुए परिवारों की मदद के लिए राहत कोष जमा करके ज़रूरतमंदों तक पहुंचाया। जनवादी लेखक संघ के पदाधिकारियों व सदस्यों में से कई एक ने इसमें अपना अंशदान दिया। राहत के इस काम में मदद के लिए हम पूरे संगठन और लेखक समुदाय से अपील करने वाले थे कि अचानक एक दूसरी विपदा देशभर के लोगों पर टूट पड़ी। यह विपदा कोरोना नामक वायरस के भारत में आ जाने से पैदा हुई, जो महामारी का रूप धारण कर चुकी है। सारी दुनिया में जनता का बुरा हाल हो गया है। शुरुआत चीन के एक छोटे से इलाक़े से हुई, वहां तो उसकी बढ़त अब रुक गयी है, लेकिन बहुत से देश इसकी चपेट में बुरी तरह आ चुके हैं। प्रधानमंत्री मोदी ने पहले एक दिन का, 22 मार्च को 'जनता कर्फ़्यू' का फ़रमान जारी किया, और उसके बाद अचानक पूरे देश में 21 दिन की तालाबंदी घोषित कर

दी, शैली वही पुरानी जो नोटबंदी के वक़्त देखी गयी थी, वही आठ बजे फ़रमान, वही रात के बारह बजे से तीन सप्ताह तक 'लॉकडाउन' का ऐलान। लोग हड़बड़ाकर थैला उठाकर बाज़ार भागे। आटा, दाल, सब्ज़ी, दवा आदि ख़रीदने के लिए दुकानों पर लंबी लाइनें लग गयीं, जैसे नोटबंदी के वक़्त लगी थीं। इस 'फ़रमान' से देश के सबसे ग़रीब, ख़ासकर शहरी दिहाड़ी मज़दूर और पटरी पर रात गुज़ारने वाले बेसहारा लोग तो कहीं आने जाने के लायक़ भी नहीं रहे। हज़ारों की तादाद में अपने अपने गांव पैदल जाने वालों की अपार भीड़ महानगरों की सीमाओं पर देखी गयी।

प्रधानमंत्री अपने 'भक्तों' के अलावा किसी से सलाह मशविरा तो करते नहीं, सो ऐसे फ़रमानों से पैदा होने वाली तकलीफ़ों का उन्हें कोई अंदाज़ा ही नहीं होता। बाद में कुछ राहतें, कुछ रियायतें अलग अलग विभागों ने, राज्य सरकारों ने, रिज़र्व बैंक आदि ने घोषित कीं, जिनकी चिंता के केंद्र में पूंजीपतिवर्ग के हित ज़्यादा थे, ग़रीबों के लिए ऐसी घोषणाएं ही थीं, जिन पर अमल शायद ही हो पाये। मसलन, रजिस्टर्ड मज़दूरों के लिए राहत की घोषणा हुई, मगर करोड़ों बेघरबार, दिहाड़ी मज़दूर, पटरी पर सामान बेचने वाले व सामान ढोने वाले हज़ारों मज़दूर, रिक्शा चालक, मेकेनिक आदि कैसे तीन सप्ताह ज़िंदा रहेंगे, इसकी कोई ठोस योजना कहीं नहीं देखने को आयी। कुछ संवेदनशील संगठन या दानवीर ट्रस्ट या व्यक्ति इन मज़दूरों को खाना खिलाने ज़रूर पहुंचे, दिल्ली सरकार ने रैन बसेरों से भोजन बांटने की कुछ व्यवस्था की, मगर केंद्र सरकार का कोई ऐसा क़दम कहीं नहीं दिखा जिसमें 'प्रधानमंत्री राहत कोष' से ऐसे बेसहारा लोगों तक कोई राहत पहुंचाने का इरादा झलकता हो। 'पीएम केयर्स' नाम से एक और फ़ंड बना लिया, जिसकी सही ही आलोचना हो रही है, राहत कोष तो था ही। पुलवामा के शहीदों के लिए भी एक फ़ंड बना था, उसका क्या हुआ, कोई नहीं बताता। प्रधानमंत्री ने हर खाते पीते आदमी से निवेदन किया कि वह अपने पैसे से नौ असहाय लोगों को खाना खिलाये, मगर खुद उन्होंने अपने 'राजधर्म' का पालन करने में कोई तत्परता नहीं दिखायी।

इधर रिज़र्व बैंक ने, कोविड-19 वायरस की आड़ में, पहले से डूबती अर्थव्यवस्था में पूंजीपतियों को, व्यापारियों को, मध्यवर्ग के खाते पीते लोगों को सस्ती ब्याजदरों पर कर्ज़ मुहैया कराने व तीन महीनों तक क़िस्तों का भुगतान न करने की सुविधा का ऐलान कर दिया, मगर 'रैपो रेट' घटाने के उनके फ़ैसले से लाखों पेंशनशुदा वरिष्ठ नागरिकों, सैनिकों, शहीदों की विधवाओं का जो पैसा फ़िक्स्ड डिपाज़िट में बैंकों में है, उस पर ब्याज में कटौती करके ही यह संभव होगा, सारे बैंक यही करेंगे। इससे भी आम आदमी की आमदनी और ज़िंदगी पर असर पड़ेगा, इस ओर न सरकार का ध्यान गया है, न रिज़र्व बैंक के गवर्नर का, क्योंकि उन सबका नज़रिया ही जनविरोधी है, और रहेगा। हर देश के शोषकशासक वर्ग हर विपदा का इस्तेमाल अपने वर्गहितों के लिए करते ही हैं चाहे वह युद्ध हो, या महामारी! नयी आर्थिक नीतियों के महामंत्र, 'निजीकरण' के कारण सारे पूंजीवादी देशों में स्वास्थ्य सेवाएं, मुनाफ़ा कमाने वालों के हाथों सौंप दी गयीं, इस महामारी में वह मंत्र काम नहीं आ रहा, इसलिए यूरोप और अमेरिका में महामारी ने आबादी के बहुत बड़े हिस्से को अपनी चपेट में ले लिया। उनकी स्वास्थ्य सेवाएं ऐसी महामारी के लिए तैयार ही नहीं थी। महामारी से पहले भी अनेक मरीज़ भारत में अपने इलाज के लिए आते थे, क्योंकि वहां, मुनाफ़ाख़ोरों के हाथों में मंहगी चिकित्सा सुविधा है जो साधारण नागरिकों के बस से बाहर है। भारत की आततायी सत्ता भी धीरे धीरे उसी राह पर तेज़ी से चलना चाहती है, जनता को ऐसी विपदाएं तब तक झेलनी पड़ेंगी, जब तक यह व्यवस्था वजूद में रहेगी।

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह
चंचल चौहान

जंतर-मंतर ऐलान

सीएए-एनपीआर-एनआरसी के ख़िलाफ़ अखिल भारतीय लेखक-कलाकार-वैज्ञानिक कन्वेंशन द्वारा जारी

जंतर-मंतर, नयी दिल्ली, 1 मार्च, 2020

(1 मार्च 2020 को दिल्ली के जंतर-मंतर पर लेखकों, कलाकारों, संस्कृतिकर्मियों, वैज्ञानिकों और उनके विभिन्न संगठनों, मसलन इंडियन कल्चरल फोरम, जनवादी लेखक संघ, प्रगतिशील लेखक संघ, जन संस्कृति मंच, दलित लेखक संघ, न्यू सोशलिस्ट इनिशिएटिव, जन नाट्य मंच, दिल्ली साइंस फ़ोरम, जनसंस्कृति (मलयालम), विकल्प, सिनेमा ऑफ़ रेज़िस्टेंस, संगवारी तथा आल इंडिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क के अखिल भारतीय कन्वेंशन में पारित और घोषित)

हम लेखक, कलाकार, संस्कृतिकर्मी और वैज्ञानिक, सीएए-एनपीआर-एनआरसी के ख़िलाफ़ आज के इस अखिल भारतीय कन्वेंशन में दिल्ली में हाल ही में हुई हिंसा और सांप्रदायिक क़त्लेआम पर गहरी चिंता व्यक्त करते हैं।

हम समझते हैं कि यह भयावह घटना सीएए-एनआरसी-एनपीआर की सांप्रदायिक बुनावट और विभाजनकारी राजनीति का सीधा परिणाम है। बावजूद इसके, इसी दौर में हमने देखा कि दिल्ली की आम जनता सांप्रदायिकता की इस राजनीति के ख़िलाफ़ अपनी लड़ाई में एकजुट रही। ऐसी एकजुटता और सांप्रदायिक सौहार्द्र से ही सीएए-एनआरसी-एनपीआर को मात दी जा सकती है।

हम नागरिकता संशोधन क़ानून-2019, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर के नये प्रारूप और प्रस्तावित राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर जैसे भयावह क़ानूनों के ख़िलाफ़ शांतिपूर्ण ढंग से चल रहे मौजूदा आंदोलनों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हैं।

भाजपा के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार के द्वारा उठाया गया यह क़दम भारतीय संविधान के उस लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष चरित्र को नष्ट कर देगा जो हमारी सामंजस्यपूर्ण विविधता का आधार है। यह संविधान उन साझा मूल्यों से बना था, जिन्हें बर्तानवी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ साझा लड़ाई लड़ते हुए हम भारत के लोगों ने विकसित किया था। सीएए इस संविधान की अंतरात्मा को तबाह कर देने वाला क़ानून है।

हम भारत के लोग हमेशा से अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषिक और प्राकृतिक संसाधनों की विविधता पर नाज़ करते आये हैं।

अथर्ववेद के इस सूक्त में यही कहा गया है :

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुअनपस्फुरन्ती

(मंडल 12 सूक्त-1,45)

(विभिन्न धार्मिक मान्यताओं और विविध भाषाभाषी जनसमुदाय को एक परिवार के रूप में

आश्रय देने वाली, अविनाशी और स्थिर स्वभाव वाली पृथ्वी अनेक धारों में दूध देने वाले गाय के थन की तरह ही हमें असीम ऐश्वर्य प्रदान करने वाली बने।)

पुराने ज़माने से लेकर अब तक विभिन्न भारतीय भाषाओं के कवि इस बहुलता और धर्मनिरपेक्षता का जश्न मनाते आये हैं। जाति, लिंग और आस्था पर आधारित भेदभावों के ख़िलाफ़ 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना हमारी सांस्कृतिक प्रेरणा रही आयी है।

हमारा मानना है कि सीएए-एनआरसी-एनपीआर जैसे विभाजनकारी क़दम केवल बढ़ती बेरोज़गारी, किसानों की बदहाली, शिक्षा के बढ़ते संकट और आसमान छूती ग़ैरबराबरी जैसे असली मुद्दों को दबाने भर के लिए ही नहीं उठाये गये हैं। इन्हें भारत के लोगों पर एक एकात्म संस्कृति, भाषा और राष्ट्रभाव थोपने के मक़सद से भी लाया गया है। सीएए विरोधी आंदोलन पर सरकार, सत्ताधारी पार्टी और संबद्ध ग़ैर-राज्य समूहों द्वारा किये जा रहे हमले और हिंसा जनमत की विविधता, अभिव्यक्ति की आज़ादी और स्वयं लोकतंत्र को कुचलने के निमित्त भी हो रही है।

सीएए-एनआरसी-एनपीआर भारतीय संविधान की मूलभावना के ख़िलाफ़ हैं

हमारा संविधान हर तरह के भेदभाव के ख़िलाफ़ संघर्ष करने के हमारे संकल्प की एक शक्तिशाली सामूहिक अभिव्यक्ति है। यह सभी मनुष्यों के, नागरिकों और ग़ैर-नागरिकों के भी, मूलभूत मानवाधिकारों की गारंटी करता है।

सीएए से पहले भी हमारे देश के नागरिकता अधिनियम में जाति, धर्म, लिंग या राष्ट्रीयता के भेदभाव के बिना योग्य आवेदकों को नागरिकता देने के लिए पर्याप्त प्रावधान थे।

सीएए इन प्रावधानों के दायरे में तीन पड़ोसी देशों—बांग्लादेश, पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान से आने वाले 'अवैध आप्रवासियों' को भी शामिल करने का उपाय करता है, लेकिन मुसलमानों को छोड़कर। इस तरह पड़ोसी देशों में धार्मिक उत्पीड़न सहने के लिए मजबूर बोहरा, अहमदिया और हज़ारा मुसलमानों के समूह ही नहीं, कट्टरता के ख़िलाफ़ लड़ने वाले धर्मनिरपेक्ष मुसलमान भी बाहर छूट जाते हैं। म्यांमार के रोहिंगिया और श्रीलंका के तमिल भी, जो कि उपमहाद्वीप के सर्वाधिक उत्पीड़ित समूह हैं, इसमें शामिल नहीं किये जाते। ज़ाहिर है कि यह संशोधन मुस्लिम बहुल पड़ोसी देशों की एक नकारात्मक छवि बनाने की कोशिश भी करता है, जैसे कि सारा उत्पीडन केवल इन्हीं देशों में होता हो।

नागरिकता अधिनियम में पेश किये गये इस अनावश्यक सांप्रदायिक भेदभाव का संदेश यह है कि किसी न किसी अर्थ में भारतीय मुसलमान इस देश के अन्य धार्मिक समुदायों के बराबर नहीं हैं। मुसलमान परिवार में जन्म लेने के संयोग या दुर्योग मात्र से कोई एक भारतीय नागरिक होने के गौरव और अधिकार का कम दावेदार मान लिया जाता है। साथ ही यह क़ानून मुसलमान को 'राष्ट्र' के समक्ष 'अन्य' के रूप में रखने की कोशिश करता है।

हाल ही में हुए दिल्ली विधानसभा चुनावों में हम इसके गवाह बने। चुनावी ध्रुवीकरण करने के उद्देश्य के साथ दो धार्मिक समुदायों के बीच युद्ध जैसा उन्माद पैदा करने की कोशिशें की गयीं। सौभाग्य से जागरूक मतदाताओं ने इस ज़हर भरे विभाजनकारी खेल को आगे नहीं बढ़ने दिया। भारत के संविधान के आधारभूत सिद्धांतों की रक्षा के लिए ऐसे विभाजनों को ख़त्म करना भारत के हर नागरिक का महत्वपूर्ण कर्तव्य है।

सीएए-एनआरसी-एनपीआर हमारे लोकतंत्र का अवमूल्यन करता है

नागरिकों को धार्मिक आधार पर बांटने वाला सीएए जब एनपीआर और एनआरसी के साथ जुड़ता है, तब और ख़तरनाक हो जाता है। ये दोनों प्रस्ताव संदिग्ध नागरिकता की एक नयी श्रेणी निर्मित करते

हैं। यानी किसी अधिकारी के निराधार संदेह मात्र से करोड़ों भारतीय नागरिक इस श्रेणी में डाले जा सकते हैं। फिर जब तक वे सरकार को अपनी नागरिकता के विषय में संतुष्ट नहीं कर देते, तब तक वे नागरिकता के अधिकारों से वंचित माने जायेंगे।

सीएए-एनआरसी-एनपीआर में समस्या सिर्फ़ इतनी नहीं है कि ये सांप्रदायिक हैं। इन्हें, दरअसल, चालू सरकार से असहमति रखने वाले व्यक्तियों और समूहों और अपने अधिकारों की मांग करने वाले हाशिये के समुदायों की आवाज़ को कुचलने के शक्तिशाली हथियार के रूप में गढ़ा गया है। सरकार की नाराज़गी किसी भी नागरिक को बिना कोई कारण बताये संदिग्ध श्रेणी में पहुंचा सकती है। हमारे लोकतंत्र के समक्ष इतना बड़ा ख़तरा पहले कभी नहीं आया था।

सीएए-एनआरसी-एनपीआर भारत के 'राष्ट्रीय स्वप्न' का विध्वंस है

सीएए-एनआरसी-एनपीआर परियोजना भारत के राष्ट्रीय स्वप्न के भी ख़िलाफ़ है। भारतीय उपमहाद्वीप के समस्त जनगण की एकजुटता और मैत्री इस स्वप्न का अनिवार्य हिस्सा रही है। विभाजन की दुर्भाग्यपूर्ण विरासत के बावजूद हमने दो-राष्ट्र के सांप्रदायिक सिद्धांत को कभी भी स्वीकार नहीं किया। सीएए-एनआरसी-एनपीआर परियोजना दो-राष्ट्र सिद्धांत की ओर बढ़ाया गया सरकार का पहला आधिकारिक क़दम है। इसे किसी भी सूरत में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

हम भारत के लोगों ने सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषाई और प्राकृतिक संसाधनों की विविधताओं पर हमेशा गर्व किया है। हमारी साझा संस्कृति के इस सारतत्व को भारतीय संविधान आत्मसात करता है। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि मौजूदा केंद्र सरकार के नेतृत्व में पल-बढ़ रही हिंदुत्व की विचारधारा हमारे देश की संस्कृति और संविधान में निहित साझेपन की मूल भावना के ख़िलाफ़ है। भारतीय संविधान के निर्माता बाबा साहेब आंबेडकर ने हिंदुत्व की विचारधारा की तीखी आलोचना की थी क्योंकि यह स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के लोकतांत्रिक मूल्यों के ख़िलाफ़ थी। बीजेपी-आरएसएस के नेतृत्व में चलने वाली एनडीए सरकार सभी के लिए विकास के वादे के साथ आयी थी लेकिन अब उसने वह मुखौटा भी उतार फेंका है। अब उसने खुलेआम फ़ासीवादी विचारधारा आधारित आरएसएस के हिंदुत्ववादी एजेंडे को लागू करना शुरू कर दिया है।

अब केंद्र पर भाजपा-आरएसएस का नियंत्रण है जो लोकतांत्रिक मूल्यों को लगातार तबाह कर रहे हैं। बिना जम्मू-कश्मीर की विधानसभा की अनुमति लिए अनुच्छेद 370 ख़त्म करना और इसके बाद सांप्रदायिक भेदभाव आधारित सीएए जैसे क़दम हमारे संविधान के लोकतांत्रिक मूल्यों के ख़िलाफ़ हैं।

सीएए-एनआरसी-एनपीआर के ख़िलाफ़ जनता का आंदोलन

देश के गृहमंत्री ने संसद में धमकी भरे लहजे में ऐलान किया था कि सीएए के बाद देश में एनपीआर और एनआरसी आयेगा। इस धमकी के ख़िलाफ़ मुल्क के लोकतांत्रिक लोगों ने ज़ोरदार आवाज़ बुलंद की है। गलियों-मुहल्लों में शांतिपूर्ण धरनों-प्रदर्शनों की अनवरत शृंखला ही चल पड़ी जिसमें नागरिक समूह, अध्यापक, वकील, छात्र, युवा, महिलाएं, बुद्धिजीवी, कलाकार, वैज्ञानिक, सेलिब्रेटीज़ और राजनीतिक पार्टियां शामिल हैं। ग़ैर-बीजेपी शासित अधिकांश राज्यों की विधानसभाओं में हमारे संविधान के धर्म-निरपेक्ष आधार को नुक़सान पहुंचाने वाले सीएए के ख़िलाफ़ प्रस्ताव पारित किये गये।

प्रधानमंत्री और उनके गृहमंत्री लगातार यह झूठ बोलते रहे हैं कि 'सीएए नागरिकता देने का क़ानून है न कि नागरिकता छीनने का।' सीएए द्वारा दी जाने वाली नागरिकता में धर्म के पहलू को शामिल करना हमारे संविधान को तो ख़त्म करता ही है, साथ ही देश के वास्तविक नागरिकों को भी 'अवैध घुसपैठिये' घोषित करने के पर्याप्त औजार मुहैया कराता है। ऐसा असम में हो चुका है। साधारण लोगों

के मामलों के अलावा ऐसे बहुत से मामले सामने आये जिनमें सेना के अधिकारियों, सरकारी अफ़सरों और यहां तक कि भारत के पूर्वराष्ट्रपति के पारिवारिक सदस्यों व असम के पूर्व मुख्यमंत्री को भी एनआरसी सूची के मसौदे से बाहर रखा गया। उन्हें न्यायाधिकरणों के सामने यह साबित करने के लिए मजबूर किया गया कि वे 'अवैध' प्रवासी नहीं हैं।'(*इंडियाटुडे*, अगस्त 31, 2019) लाखों की संख्या में प्रतिबद्ध और समर्पित भारतीय नागरिक ऐसा नहीं कर पाये, क्योंकि भारत अभी तक दस्तावेज़ों के प्रति अंधश्रद्धा रखने वाला समाज नहीं बन पाया है।

हमारी एकजुटता

हम लेखक, कलाकार, संस्कृतिकर्मी, वैज्ञानिक और हमारे विभिन्न सांस्कृतिक संगठन यह मानते हैं कि शाहीन बाग़ और भारत के अलग-अलग हिस्सों में अवाम द्वारा चलाये जा रहे शांतिपूर्ण आंदोलन भारत के संविधान की मूल आत्मा, हमारे प्यारे देश की 'विविधता में एकता' और लोकतांत्रिक मूल्यों को बचाने का प्रयास हैं। ये ही हमें एक आधुनिक सभ्य धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बना सकते हैं। हम पूरे देश में चल रहे इन अहिंसक आंदोलनों के साथ एकजुट हैं। सभी देशभक्त नागरिकों से हम अपील करते हैं कि सीएए और एनआरसी की प्रस्तावित योजना को रद्द कराने के लिए इन आंदोलनों में शरीक हों।

हमारी अपील

हम इस महान मुल्क के सभी लेखकों, कलाकारों और वैज्ञानिकों का आह्वान करते हैं कि

1. सीएए-एनआरसी-एनपीआर के ख़िलाफ़ सभी शांतिपूर्ण आंदोलनों के साथ सक्रिय रूप से एकजुट हों।

2. 8 मार्च (महिला दिवस), 23 मार्च (शहीद दिवस) और 14 अप्रैल (बाबा साहेब दिवस) का इस्तेमाल देश भर में हो रहे इन शांतिपूर्ण प्रदर्शनों, नागरिकता, संविधान और भारतीय स्वप्न के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए करें।

3. ऐसे कन्वेंशन सभी राज्यों में आयोजित किये जायें और इसके बाद लेखकों-कलाकरों के दूसरे राष्ट्रीय कन्वेंशन के लिए हम फिर मिलें।

आततायी मुहिम के नख-दंत-1

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा और स्त्रियां

शुभा

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एक प्रतिगामी दक्षिणपंथी संगठन है जिसका जात-गोत, खाप, कुटुंब, क़बीला, धर्म-संप्रदाय के नाम पर सैकड़ों सालों से चली आ रही उन रूढ़िवादी और संकीर्ण सामाजिक वैचारिक संरचनाओं से नाभिनाल का रिश्ता है जो स्त्रियों और दलितों की शताब्दियों की ग़ुलामी पर खड़ी हैं। सच तो यह है कि यह मूलतः इनसे पैदा हुआ, इन्हीं से ख़ुराक़ पाने वाला संगठन है, जिसका आविष्कार इन्हीं दक़ियानूस निरंकुश संरचनाओं के मज़बूत रक्षा-कवच के रूप में किया गया था। अन्य अनेक ऐतिहासिक कारकों और परिस्थितियों से समर्थन लेकर यह ख़ुद को एक विस्तृत निरंकुश फ़ासीवादी संगठन के नमूने के तौर पर ढालने में कामयाब हुआ है।

ऐतिहासिक जड़ें

19वीं सदी की शुरुआत से आधुनिक शिक्षा और संचार की भूमिका बनने के साथ ही भारतीय नवजागरण के सूत्र दिखायी देने लगे थे। 19वीं सदी के प्रबोधन की धुरी मुख्य रूप से लैंगिक प्रश्न थे जिनका गहरा संबंध स्त्रियों की भूदास जैसी जीवनदशा से था। नये पढ़े-लिखे तबक़ों ने जब मध्यकालीन बर्बरताओं के ख़िलाफ़ समाज-सुधार के प्रश्न उठाने शुरू किये तभी दक़ियानूसी ताक़तों ने उनका कड़ा विरोध किया। सती के नाम पर स्त्रियों की बर्बर हत्या हो या बाल विवाह, अनमेल विवाह और बहुविवाह जैसी भयानक अमानुषिकताएं—इनके ख़िलाफ़ उठी हर आवाज़ को बंगाल, महाराष्ट्र और देश के अन्य हिस्सों में प्रतिक्रियावादियों के प्रचंड विरोध का सामना करना पड़ा। इसी तरह स्त्री शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह के कार्यक्रमों पर आक्रामक और हिंसक प्रतिक्रिया दिखायी दी।

यहां कुछ बातें ग़ौरतलब हैं। समाज सुधार आंदोलन की नवजागरणकालीन आधुनिकता के अंकुरण में निर्णायक भूमिका सिद्ध हुई जिसने हमारी जनतांत्रिकता, 'सेक्युलराइज़ेशन' और जातीय गठन की प्रक्रिया का रास्ता खोला और ख़ुद इसकी नींव में मुख्यतः लैंगिक प्रश्न और उन पर हुआ कठिन और लंबा विचारधारात्मक संघर्ष था। स्त्री प्रश्नों पर हुए भीषण वैचारिक संघर्ष ने हमारी आधुनिक जनतांत्रिकता के निरूपण में निर्णायक भूमिका अदा की। दरअसल, कट्टरपंथियों के लिए विवाह और परिवार संस्था के जनतंत्रीकरण का प्रश्न जीवन मरण का प्रश्न है। वे जानते हैं कि स्त्रियों की व्यक्तिगत संपत्ति या भूदास जैसी हैसियत बनाये रखने के लिए और उनकी यौनिकता पर संपूर्ण नियंत्रण के लिए 'स्त्रीत्व' और 'सतीत्व' की पुरानी परिभाषाएं और विवाह संस्था या परिवार के ढांचों की क़िलेबंदी हर हाल में ज़रूरी है। इन रूढ़ सामाजिक ढांचों का जनतंत्रीकीकरण और स्त्री-शिक्षा, स्त्री को एक आधुनिक, स्वायत्त आत्मनिर्भर और संप्रभु व्यक्ति-नागरिक की पहचान देकर मुक्त कर सकते हैं जिससे पितृसत्तात्मक सामाजिक निरंकुशता और परजीविता को संचालित करने वाला पूरा क़िला ढह सकता है। ये प्रतिगामी

ताक़तें शुरू से अच्छी तरह जानती थीं इसीलिए उन्होंने पूरे समाज सुधार आंदोलन के उदारवादी जनतांत्रिक सार पर हमला बोला और उसके अंदर व बाहर से प्रबल पुरुत्थानवादी दबाव बनाया यहां तक कि 1857 के बाद के दिनों में समाज सुधार आंदोलन काफ़ी हद तक इसी पुनरुत्थानवाद के क़ब्ज़े में चला गया[1]। इसकी एक वजह यह भी थी कि उपनिवेशवादी अब तक यह समझ चुके थे कि जाति-बिरादरी और धार्मिक समुदायों की रूढ़ संरचनाओं को छेड़े बिना, ऊंची जातियों और अभिजात तबक़ों को ख़ुश रखते हुए ही यहां पर टिके रहना ज़्यादा आसान होगा।

19वीं सदी के उत्तरार्ध में राष्ट्रीय चेतना के अंकुरण के दिनों में इन्हीं रूढ़िवादी ताक़तों ने अपने समाज-सुधार विरोधी अभियानों को उग्र सांप्रदायिक रूप दे दिया था, जिसने साम्राज्यवादविरोधी व्यापक एकता को तोड़ने में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों की आख़िर तक ख़ूब मदद की।

हम देखते हैं कि लैंगिक भेदभाव और जातिवादी विषमता पर खड़ी प्रतिगामी संरचनाएं धर्म, संस्कृति और परंपरा जैसे लबादे पहनकर सामने आती हैं और 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के छद्म में अपने को छिपाती हैं। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जो लोग स्मृति ग्रंथों और अन्य शास्त्र-पुराणों से उद्धरण निकाल-निकाल कर अपनी नृशंसताओं को सही ठहराते थे और सती, बाल विवाह, अनमेल विवाह और बहुविवाह के विरोध या विधवा विवाह जैसे सुधारों और स्त्री-शिक्षा को 'पश्चिमपरस्ती', 'म्लेछों का प्रभाव' या 'ईसाइकरण' की कोशिश के रूप में पेश करते थे वही लोग 19वीं सदी के उत्तरार्ध में, इस तथाकथित 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का सहारा लेकर उदीयमान उपनिवेशवाद-विरोधी चेतना के सांप्रदायिक ध्रुवीकरण में तेज़ी से लग गये। यहां तक कि इस तरह की कोशिशें हिंसक रूप लेने लगीं[2]। 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' अब खुलकर सांप्रदायिक राष्ट्रवाद की शक्ल में आ गया। इतिहास गवाह है कि 19वीं सदी में जिन्होंने महाराष्ट्र में बाल विवाह के समर्थन में उन्माद जगाया और 'सोशल कॉन्फ्रेंस' जैसी संस्थाओं पर हमले किये उन्होंने ही हिंसक, धार्मिक उन्माद जगाकर आज़ादी की लड़ाई को आगे तक सांप्रदायिक आधारों पर बांटने की नींव रक्खी। यह स्पष्ट है कि आरएसएस जैसे फ़ासीवादी नमूने के संगठनों की बुनियाद इसी 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' (असल में सामाजिक प्रतिक्रियावाद और सांप्रदायिक राष्ट्रवाद) पर रखी गयी। यह वर्चस्वशाली सामाजिक परजीवियों की विचारधारा है। स्त्री-द्वेष, दलित-द्रोह, ज़हरीली सांप्रदायिकता, आक्रामक अनुदारता, ज़हालत, अंधराष्ट्रवाद और सैन्यवाद के मेल से बनी यह प्रतिक्रियावादी विचारधारा 'भारतीयता' का स्वांग तो खूब भरती है, लेकिन साम्राज्यवाद से इसका गहरा याराना छिपना कठिन है।

विचारधारा

आरएसएस की आधारभूत सैद्धांतिक पुस्तक इनके दूसरे सरसंघचालक मा. स. गोलवलकर की, *विचार नवनीत* को माना जाता है। यह पुस्तक पूरी तरह 'हिंदू पुरुष' को संबोधित है। स्त्रियों पर स्वतंत्र रूप से इसमें विचार नहीं किया गया है। अवांतर प्रसंगों में स्त्री का उल्लेख नकारात्मक तरीक़े से कहीं-कहीं हुआ है। यह पुस्तक आरएसएस की सुपरिचित पद्धति—पाखंडपूर्ण विस्तार और छलपूर्ण गोपनीयता का नमूना है। इसके मुताबिक़ 'हिंदू' और उसकी संस्कृति 'सनातन' है। वह 'अनादि काल' से 'भारत पुत्र' है और उसे 'शाश्वत मूलों का सिंचन' करना है[3]। आरएसएस की हिंदूवादी विचारधारा तमाम शास्त्रों, पुराणों, *रामायण, महाभारत, गीता* और वेदों व उनसे जुड़ी कथाओं, उपकथाओं, अंतर्कथाओं और मिथकों तक फैली हुई है, जिनका प्रयोग गोलवलकर प्रमाणिक दस्तावेज़ों की तरह करते हैं। इस प्रकार वे पांच हज़ार साल की सभ्यता पर अपनी मनोगत धारणाओं को आरोपित करते हुए किसी भी मिथक या बिंब से जुड़ी कल्पना को अपनी विचारधारा को प्रतिष्ठित करने के काम में लाते हैं। तार्किक संगति से बेपरवाह और इतिहास मुक्त हो कर, शास्त्र-पुराण दंतकथाओं और मिथकों के निरंतर इस्तेमाल से यह विचारधारा

एक अराजक घोल के रूप में सामने आती है जिसे चिन्हित करना ज़रूरी है। असल में यह मैक्यावेलियन कुटिल व्यवहारवाद और निरंकुशता की एक परिपूर्ण विचारधारा है। इसमें छल, कपट, अफ़वाह, तथ्यों की तोड़-मरोड़, भीतरघात, अंध उन्माद जगाना और बड़े पैमाने के हत्याकांडों को नियोजित करना सब कुछ जायज़ है, बशर्ते वह लक्ष्य' के अनुरूप है और कारगर' है।

आरएसएस की मूल अवधारणा 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' एक ऐसी निरंकुश सामाजिक सत्ता की कल्पना है जो हर तरह की असमानता और भेदभाव को न केवल स्वाभाविक मानती है, बल्कि 'हिंदू समाज', 'हिंदू संस्कृति', 'हिंदू राष्ट्रीयता' की एक विशिष्टता मानती है और इसका महिमामंडन किया जाता है। इस भेदभाव के साथ 'ऐक्य' और 'समरसता' स्थापित करना ही 'हिंदू राष्ट्रवाद' है। इसके लिए हिंसा और बल प्रयोग न केवल जायज़ है बल्कि अनिवार्य है इसीलिए गोलवल्कर नपुंसक 'अहिंसा' की आलोचना करते हैं और 'पराक्रमकारी पुरुष बनो' का आह्वान करते हैं। 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का अर्थ यही है कि उत्पीड़ित तबक़े 'एकल वैचारिक कोड' में बंधे रहें। इसलिए वे वर्ण व्यवस्था के समर्थक हैं और वर्ण आधारित हिंदू समाज को ही ब्रह्म मानते हैं।[4] और इस हिंदू समाज' का 'ईश्वरत्व' किसमें निहित है समझ लीजिए यह ब्राह्मणवादी सवर्ण पुरुष है। इस परिप्रेक्ष्य में वे स्त्री को 'मातृशक्ति' के रूप में परिभाषित करते हैं। गोलवलकर 'ऐहिक' को एक 'अलौकिकता' प्रदान करने वाली संस्कृति की महानता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'हम प्रत्येक स्त्री चाहे वह छोटी बालिका ही क्यों न हो को मां कहकर पुकारते हैं'।[5] बालिका को मातृरूप में देखने का अर्थ है उसके बचपन को बेदख़ल करना। 'मातृशक्ति' भी पितृसत्ता का ही परावर्तित बिंब है। यह ब्राह्मणवादी पितृसत्ता है जिसके संदर्भ में स्त्रियों को परिभाषित किया जा रहा है। इसका अर्थ यही है कि 'ऐहिक' स्त्री को तथाकथित अलौकिकता' प्रदान करते हुए मां के प्रतीक में घटा दिया गया है जिसका संबंध स्त्री की जनन-क्षमता पर नियंत्रण से है। मातृशक्ति रूप में स्त्री को परिभाषित करने का मतलब उसकी स्वयंभू नागरिकता छीनना है। इसका यही अर्थ है कि स्त्री स्वतंत्र नहीं है, 'पिता' उसका कर्ता है और उसका एकमात्र संदर्भ है। पिता, पति और पुत्र के समानांतर मां, पत्नी और बहन की श्रेणियां हैं जो पुरुष के अधीन हैं। इस तरह मातृशक्ति सांस्कृतिक-सामाजिक मूल्यों से संश्लिष्ट शब्द है, इसका साधारण मांओं की इच्छा, दुख-दर्द और क्षमता से कुछ भी लेना देना नहीं है। इसका अर्थ इतना ही है कि सवर्णवादी पितृसत्ता के खूंटे से बंधी स्त्री का मातृत्व भी पितृसत्ता का बंधक होता है। एक क्रूर पितृसत्तात्मक ढांचे की 'मर्यादा', 'आचरण संहिता', कर्मकांड और तमाम अग्निपरीक्षाओं से गुज़रने पर ही उसे मातृपद 'प्रदान' किया जाता है। इस 'मातृपद' को छीना भी जा सकता है। इस मातृपद की मर्यादा के रक्षक पितृसत्ता के प्रतिनिधि पिता, पति और पुत्र ही नहीं पूरी बिरादरी और धर्म-संस्कृति के ठेकेदार हैं। 'हिंदू राष्ट्रीयता' को परिभाषित करते हुए वे इसमें स्त्रियों को शामिल नहीं करते। मातृभूमि के पुत्र हिंदू ही हैं और कोई नहीं (क्योंकि 'हिंदू' गर्भावस्था से ही संस्कारों से गुज़रता है) इन पुत्रों के बीच 'सजातीय भ्रातृत्व' ही राष्ट्रीयता है। इस तरह ब्राह्मणवादी, सवर्णवादी पितृसत्तात्मक रक्त संबंध की परिकल्पना हिंदू राष्ट्र का गूढ़ आधार है।[6] इसलिए आरएसएस सदस्य रक्षा बंधन को 'महत्वपूर्ण पर्व' मानते हैं और एक-दूसरे को राखी बांधते हैं, उनके लिए रक्षाबंधन सिर्फ़ भाई-बहन का त्योहार नहीं है।

जाति और जेंडर संबंधी प्रश्न सघन अंतर्सूत्रों से जुड़े हैं। ऊंची जाति की स्त्रियों के लिए योनि शुचिता, पतिव्रत धर्म, सती, पर्दा, कर्मकांड और संस्कार हैं तो दलित स्त्री के लिए 'सेवा धर्म' है जिसके अंतर्गत उसे हर शोषण को 'सेवा धर्म' के अंतर्गत स्वीकार करना है। बलात्कार और यौन-शोषण इसका अपरिहार्य हिस्सा है। सौंदर्य प्रतियोगिताओं के एक उल्लेख में गोलवलकर ने सीता, सावित्री, पद्मिनी को भारतीय नारीत्व का आदर्श बताया है।[7] इनमें सीता और सावित्री पतिव्रता स्त्री हैं तो पद्मनी पतिव्रता

के साथ-साथ 'जौहर' करने वाली क्षत्राणी है। हालांकि गोलवलकर अपनी पुस्तक में *मनुस्मृति* का प्रकट उल्लेख करने से बचते हैं लेकिन आरएसएस के विमर्श 'हिंदू राष्ट्र' के लक्ष्य के साथ शास्त्र-पुराणों और ख़ासकर *मनुस्मृति* को कोई पुरानी बात नहीं रहने देते और उसे व्यवहार में उतारने की इच्छा के साथ पुनः स्थापित करते हैं। *मनुस्मृति* को तो ये लगभग अपना संविधान ही मानते हैं।

नारीत्व के आदर्श से गिरी हुई स्त्री बुरी स्त्री होती है जिसे हिंदुत्ववादी विचारधारा में 'कुलटा', 'राक्षसी', 'डायन' आदि बताते हैं। इस स्त्री पर हिंसा और इसके 'वध' को गोलवलकर ज़रूरी मानते हैं। 'वास्तविक धर्म' बताते हुए वे उदाहरण देते हैं : 'हमारे एक सर्वोच्च आदर्श श्रीराम विजय के इस दर्शन के जीवित उदाहरण हैं। स्त्रियों का वध करना क्षात्र धर्म के विपरीत माना जाता है। उसमें शत्रु के साथ खुले लड़ने का आदेश भी है। लेकिन श्रीराम ने ताड़का राक्षसी का वध किया और बाली के ऊपर उन्होंने पीछे से प्रहार किया। ...एक निरपराध स्त्री का वध करना पापपूर्ण है परंतु यह सिद्धांत राक्षसी के लिए लागू नहीं किया जा सकता'।[8] इस तरह गोलवलकर 'धर्मराज्य की प्रस्थापना' करने के लिए 'परम कर्तव्य' की तरह निरपराध 'स्त्री' के वध को उचित ठहराते हैं। ध्येयवादी मनुष्य के बारे में बताते हुए वे 'स्त्री वध' की एक कथा और सुनाते हैं–:एक युवक और युवती में बड़ा प्यार था। किंतु उस लड़की के माता-पिता उस युवक के साथ विवाह करने की अनुमति नहीं दे रहे थे। इसलिए वे एक बार दूर एकांत स्थान में मिले और वह युवक कविता में कहता है–मैंने उसका गला घोंट दिया और मार डाला किंतु उसे पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ।' आगे वे कहते हैं, 'यही वह कसौटी है जिसे हमें इस प्रकार के प्रत्येक अवसर पर अपने लिए लगाना चाहिए'।[9]

मुसलमान और ईसाई को वे 'आंतरिक संकट' और 'आक्रमणकारी' नस्ल के तौर पर देखते हैं जिन्होंने भारत का गौरव नष्ट किया और इस तरह हिंदू की एक उत्पीड़ित छवि बनायी गयी है जिसे क्षात्र धर्म से 'हौताम्य' सीखना है, 'विजयेष्णु' और 'पराक्रमवादी' बनना है। इस उग्र असहिष्णु हिंदू को अपने 'ध्येय' के हिसाब से ईसाई और मुसलमान औरत के प्रति अपना व्यवहार तय करना है, जिसका प्रदर्शन 2002 गुजरात हत्याकांड में और खैरलांजी व ननों के साथ बलात्कार के प्रसंगों में हम देखते हैं। स्त्रियों के प्रति हिंसा और 'अन्य' स्त्री जिसे वे 'राक्षसी' कहते हैं या जो प्रेमिका है लेकिन 'ध्येय' के आड़े आती है उसका 'वध' वे आदर्श की तरह सामने रखते हैं।

ऐसा लगता है कि आरएसएस और गोलवलकर स्त्रियों को विचलनकारी, विनाशकारी शक्ति मानते हैं जिसे 'मातृशक्ति' के रूप में पितृसत्ता के खूंटे से बांधकर स्वस्थ बलशाली नस्ल पैदा करनी चाहिए अन्यथा यह पतन की ओर ले जाती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मन आक्रमण के सामने फ्रांस की हार का कारण बताते हुए वे कहते हैं, 'फ्रांस के आकस्मिक तथा पूर्ण पतन का कारण था वह स्त्रैण जीवन ही, जिसने फ्रांस के पराक्रमयुक्त पुरुषत्व की शक्ति को उखाड़ फेंका था।' आगे वे लिखते हैं–'हमारे देश में भी परिस्थिति भिन्न नहीं है। तरुण पुरुषों का आधुनिक फ़ैशन बना है–अधिकाधिक स्त्रैण रूप में दिखायी पड़ना। वेश में, स्वभाव में, साहित्य में और अपने दैनंदिन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'आधुनिकता' का अर्थ हो गया है स्त्रैणता'।[10] वे युवकों को 'इंद्रिय-विषयों तथा क्लीवता' में लिप्त होने से बचाने के लिए स्त्रियों से दूर रखना ज़रूरी समझते हैं। वे लिंग पार्थक्य के समर्थक हैं और स्त्री-पुरुष को अपवर्जी (exclusive) श्रेणी की तरह परिभाषित करते हुए लिंग आधारित नस्लवाद को प्रतिष्ठित करते हैं। इन नस्लों के बीच समानता संभव नहीं क्योंकि पुरुष में 'कर्तृत्व' निहित है और स्त्री उससे वंचित है। स्त्री समानता के प्रश्न को वे एक वाक्य में ख़ारिज कर देते हैं। वे स्त्री-पुरुष के बीच असमानता को नहीं, उसके विरोध को विभाजनकारी मानते हैं। विचित्र विपर्यय पर आधारित समझ के साथ स्त्रियों के लिए किसी भी क़िस्म के आरक्षण पर तंज़ कसते हुए वे कहते हैं–'इस समय स्त्रियों के समानाधिकारों

और उन्हें पुरुष की दासता से मुक्ति दिलाने के लिए भी एक कोलाहल है। भिन्न लिंग होने के आधार पर विभिन्न सत्ता केंद्रों में उनके लिए पृथक स्थानों के संरक्षण की मांग की जा रही है और इस प्रकार एक और नये वाद अर्थात 'लिंगवाद' को जन्म दिया जा रहा है जो जातिवाद, संप्रदायवाद, भाषावाद, समाजवाद आदि के ही समान है'।[11]

विचार नवनीत में मातृभूमि के पुत्र 'वीरव्रती निष्ठा', 'पौरुषयुक्त राष्ट्रजीवन हेतु', 'विजय के उपासक', 'विजयेष्णु बनो', 'पुरुष बनें' जैसी उग्र पुरुषवादी और पुरुष केंद्रित विचार और भाषा मौजूद है और स्त्रियों की पूरी अनुपस्थिति है।

स्त्रियों को 'मातृशक्ति' के रूप में परिभाषित करने का सीधा संबंध उनकी घरेलू भूमिका से है। बच्चों को जन्म देना, उनका पालन-पोषण, पति की सेवा और परिवार में भारतीय संस्कार और संस्कृति का निरंतर पुनरुत्पादन की ज़िम्मेदारी स्त्री की है। इस ज़िम्मेदारी में उसकी सामाजिक भूमिका का नकार छिपा हुआ है। सभी तत्ववादी विचारधाराओं की यह मान्यता रही है कि स्त्रियों का काम 'श्रेष्ठ' नस्लों को जन्म देना और उनका पालन-पोषण मात्र है। 'हिंदू' राष्ट्र में भी महिलाओं को घर तक सीमित रखने की परिकल्पना मौजूद है। खुद समय-समय पर अनेक सरसंघचालक इस तरह के बयान देते रहे हैं। इसी वज़ह से संघ परिवार के साक्षी महाराज, साध्वी प्राची, योगी आदित्यनाथ आदि ने हिंदू स्त्रियों द्वारा अधिक बच्चे पैदा करने संबंधी बयान दिये हैं। जहां जहां भाजपा सरकार होती है और वहां बाक़ायदा समाजशास्त्र की पाठ्य पुस्तकों में नौकरी-पेशा महिलाओं के ख़िलाफ़ पाठ शामिल किये गये हैं।[12]

'मातृशक्ति' को वर्णव्यवस्था के अंदर रहकर 'मातृ धर्म' का पालन करना है यानी उच्चवर्ण महिलाएं 'योनिशुचिता' और 'सती धर्म' का पालन करते हुए संपत्ति के वारिस, 'धर्म' और 'राष्ट्र के रक्षक' पैदा करें और दलित स्त्रियां 'सेवा धर्म' निभाने के लिए संतान पैदा करें। इस तरह *विचार नवनीत* में 'राक्षसी' और उसके 'वध' के प्रसंग के माध्यम से 'कुलटा' आदि सांस्कृतिक बिंबों को जगाने और स्त्रियों पर हिंसा करने का आधार प्रस्तुत किया गया है। प्रेमिका की हत्या के माध्यम से 'लक्ष्य के लिए' स्त्री को रास्ते से हटाने और ऑनर किलिंग' का आधार रख दिया गया है। संभाजी के प्रधान के बेटे खंडो बल्लाल के प्रसंग को वे प्रेरक बताते हैं जो संभाजी द्वारा अपनी बहन पर बुरी नज़र डालने पर अपनी बहन को प्राणांत की 'अनुमति' दे देता है और संभाजी के प्रति समर्पित रहता है क्योंकि संभाजी उस समय अनेक व्यक्तिगत दुर्गुणों के होते हुए भी 'पुनरुत्थानशील हिंदूस्वराज्य के एकीकरण का प्रतीक' था।[13] चार पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के माध्यम से स्थापित किया गया है कि कर्तृत्व पुरुषों में ही निहित है।[14] मोक्ष या अध्यात्म को वे 'हिंदू राष्ट्र' के ठोस प्रतीक के रूप में देखते हैं।[15] स्त्री इन पुरुषार्थों और लक्ष्यों तक पहुंचने का साधन मात्र है उसमें कर्तृत्व नहीं है, वह पुरुष में ही निहित है। ये बातें छलपूर्ण और गोपनीय शैली का प्रयोग करते हुए *विचार नवनीत* के माध्यम से संप्रेषित की गयी हैं।

रणनीति और कार्य प्रणाली

महिला समानता का औचित्य जनतांत्रिक व्यवस्था में मान्य है और महिला आंदोलन की प्रतिष्ठा है; इसलिए आरएसएस महिलाओं के ख़िलाफ़ कई तरह से काम करता है। महिलाओं की अधीनता स्थापित करने के लिए उसने खुद महिलाओं के संगठन बनाये हैं, महिलाओं के विरुद्ध स्वतंत्र पुरुष संगठन बनाये हैं, स्त्री अधिकारों के ख़िलाफ़ लगातार प्रचार अभियान द्वारा और लैंगिक प्रश्नों को अपनी संकीर्ण राजनीति का औजार बनाकर भी वह यह काम करता रहा है। इस काम में संघ के तमाम संगठन यानी पूरा संघपरिवार शामिल है।

राष्ट्रीय स्वयं सेविका संघ, आरएसएस का अनुषंग है। 1936 में बने इस संगठन के माध्यम से हिंदू

प्रचारिकाएं निकाली जाती हैं। 1990 तक उसकी किसी सेविका को आरएसएस की प्रतिनिधि सभा में भाग लेने की इजाज़त नहीं थी। बाबरी मस्जिद विध्वंस के समय कार सेविका का मोबलाइज़ेशन राष्ट्रीय सेविका संघ द्वारा किया गया। इन सेविकाओं को कार सेवकों के लिए पूड़ी-सब्ज़ी बनाना, उनके पैर धोना, दंगों या ध्वंस के समय उन्हें प्रेरित करना जैसे काम करने होते हैं। परिवारों में त्योहार पर्व संस्कार व रीति रिवाज ठीक से चलते रहें यह देखना भी उनका मुख्य काम है। आरएसएस द्वारा निर्धारित कामों में ये एक ऐसी निश्चित भूमिका अदा करती हैं जो अधीनस्थ सहायक की है। इसमें केवल मध्यवर्गीय परिवार की स्त्रियां ही होती हैं। दहेज, बलात्कार, घरेलू हिंसा, काम की जगह पर यौन उत्पीड़न आदि महिला मुद्दों पर ये कोई काम नहीं करतीं। भाजपा की एमपी इसकी सदस्य होती हैं। सती के पक्ष में कलश यात्रा जैसे काम भी यह संगठन करता है। इस संगठन का लक्ष्य महिलाओं को संगठित करना या महिला-मुद्दे उठाना नहीं है बल्कि हिंदुत्ववादी पितृसत्तात्मक विचार के लिए आरएसएस के निर्देशन में काम करना है। और उसकी प्रचारिकाएं तैयार करना है। अविवाहित महिला कुलवक़्ती प्रचारक होती हैं जो साध्वी' बनकर हिंदू भाइयों' को संबोधित करती हैं। साध्वी ऋतंभरा और साध्वी प्राची का संबोधन पुरुषों के प्रति ही होता है। राष्ट्रीय सेविका संघ की संचालक को आरएसएस के सरसंघचालक नियुक्त करते हैं।

हिंदू महासभा के संगठन, बजरंग दल की तरह दुर्गावाहिनी' हिंदू युवतियों का संगठन है जिसमें हथियार चलाने की ट्रेनिंग भी दी जाती है और हिंदुत्ववादी विचार भी। स्त्री और पुरुष समान नहीं हैं और स्त्रियों को आत्मरक्षा करने के लिए हथियार चलाना भी आना चाहिए। यह आत्मरक्षा उसे मुसलमान' से या जो भी अन्य' हैं उनसे करनी है। इस तरह महिलाओं के बीच दक्षिणपंथी विचार और हिंसा की स्वीकार्यता व दंगों में सीमित ढंग की सक्रिय भागीदारी के लिए लड़कियों को तैयार किया जाता है। ये दक्षिणपंथी महिला संगठन एक तरह से महिला आंदोलन के बीच भीतरघात हैं।

सेव इंडियन फ़ैमिली'(SIF) एक अम्ब्रेला आरगेनाइज़ेशन है जिसके तहत छोटे-बड़े 50 एनजीओ और संगठन काम करते हैं। राष्ट्रीय, प्रांतीय स्तर की वैबसाइट नेट पर मौजूद हैं। इसकी सदस्य संख्या एक करोड़ बतायी जाती है। इस संगठन ने लिंग समानता' का हवाला देकर महिला आंदोलन द्वारा पिछले दशकों में बनवाये गये सभी क़ानूनों को लिंग पूर्वाग्रह' से ग्रस्त बताया है। घरेलू हिंसा, काम की जगह पर यौन उत्पीड़न, दहेज, रेप संबंधी सभी क़ानूनों के इकतरफ़ा होने' व उनके दुरुपयोग का मामला बनाते हुए उन्हें ज़मानती बनाने और रिव्यू करने का एजेंडा रखा जा रहा है। उत्पीड़ित पुरुषों के लिए सभी बड़े शहरों और क़स्बों में 50 से अधिक हैल्पलाइन सक्रिय हैं जिसमें एक दिन में ही हज़ारों शिकायतें आयी बताते हैं। घरेलू हिंसा से उत्पीड़ित पुरुषों की इन शिकायतों और केस दर्ज कराने के माध्यम से महिलाओं के ख़िलाफ़ एक झूठा डाटा जैनरेट किया जा रहा है। हरियाणा में छेड़खानी का विरोध करने वाली लड़कियों के ख़िलाफ चरित्रहनन के लिहाज से नेट पर जारी फ़िल्म को भी इसी संगठन ने स्पांसर किया था। इसने पुरुष कमीशन' बनाने की बात उठायी है। भारतीय परिवार बचाने' के नाम पर यह संगठन स्त्रियों के मुक़ाबले वरिष्ठ नागरिकों' और अभिभावकों' की दशा को इस तरह सामने रखता है जैसे महिलाओं की वजह से उन पर केस होते हैं या जेल होती हैं और जैसे महिलाएं ही अपराधी हैं।

महिला आंदोलन द्वारा महिलाओं की असुरक्षा, घर में हिंसा और उनके भेदभाव की जो सच्चाई समाज में स्थापित हुई है उसकी मान्यता को संदिग्ध बनाना, महिला आंदोलन और प्रतिरोध करने वाली औरत की छवि को विवादास्पद, संदिग्ध और कलुषित करना, झूठे आंकड़े जैनरेट करके उसकी साख को चोट पहुंचाना इसका उद्देश्य है। भाजपा प्रवक्ता राकेश सिन्हा राष्ट्रीय मीडिया पर इसी संगठन के प्रतिनिधि के तौर पर 'दहेज विरोधी क़ानून' को ज़मानती बनाने की वकालत कर चुके हैं।

लैंगिक प्रश्नों पर स्त्री द्वेषी राजनीति

संघ परिवार स्त्री की नागरिक के रूप में संवैधानिक अवधारणा को अपदस्थ करके उसे 'बहू-बेटी' के रूप में अत्यंत संकीर्ण मध्ययुगीन पितृसत्तात्मक रक्त संबंध पर आधारित पारिवारिक छवि तक सीमित कर देता है। इस तरह सांप्रदायिक व जातिवादी 'मर्दानगी' को उकसाकर महिलाओं के ख़िलाफ़ एक भावनात्मक उन्माद जगा दिया जाता है। उन्मादकारी भीड़ों को मोबिलाइज़ करने का यही तरीक़ा है। गुजरात में यह प्रचार लंबे समय तक किया गया कि 'हिंदू औरतों' को 'मुसलमानों' से ख़तरा है और इस तरह सांप्रदायिक रंग देते हुए औरतों के साथ वीभत्स हिंसा, यौन उत्पीड़न और बलात्कार किये गये। इसके लिए उन्होंने दलित और महिलाओं का भी सक्रिय समर्थन ले लिया। 2014 के चुनावों की तैयारी में मुज़फ्फ़रनगर में 'बहू-बेटी सम्मान बचाओ' सम्मेलन किया गया और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण करते हुए खाप पंचायत, पितृसत्ता के उग्र मुखियाओं और सब तरह के लंपट व हिंसक तत्वों को अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ मोबिलाइज़ कर लिया गया; लेकिन यह सारा मोबिलाइज़ेशन सभी तबक़ों की औरतों के ख़िलाफ़ भी था; क्योंकि इससे सभी तबक़ों की पितृसत्ता और अन्य स्त्री विरोधी तत्वों और निरंकुश 'मर्दानगी' को एक बड़ा मंच मिल गया। वे सामाजिक नेतृत्व की तरह पुनः प्रतिष्ठित हुए। ये स्त्रीविरोधी शक्तियां ही महिलाओं के 'सम्मान' की कस्टोडियन बन गयीं। स्त्रियों की सुरक्षा का वास्तविक मुद्दा न केवल किनारे हो गया बल्कि उसके एक पुनरुत्थानवादी, विकृत, स्त्री द्रोही स्वरूप को व्यापक सामाजिक वैधता भी प्राप्त हो गयी। इसके साथ ही उन्होंने 'लव जेहाद' का मुहावरा गढ़ा और सांप्रदायिक माहौल बनाते हुए न केवल वोट बटोरा बल्कि प्रेम करने के अधिकार, इच्छा से विवाह करने के अधिकार को भी किनारे धकेल दिया और 'ऑनर किलिंग' की परिस्थिति को वैधता और बल प्रदान किया। उत्तर प्रदेश का चुनाव जीतने के बाद लखनऊ भाजपा कार्यकारणी के उद्बोधन में पिता और भाइयों से अपील की गयी कि वे अपनी बेटी और बहन पर 'निगाह' रखें, यानी 'वे क्या पहन रही हैं, कहां जा रहीं हैं, कब आ रही हैं, किससे मिलती हैं' आदि पर।[16] इस तरह महिलाओं की सुरक्षा का मुद्दा कोई समाज, प्रशासन, सरकार का नहीं 'पिता', 'भाइयों' और 'बिरादरी' की ज़िम्मेदारी हो गयी। यह स्त्रियों को ख़ासकर युवा लड़कियों को कुएं में धकेलने के समान है।

'लव जेहाद' का मुहावरा और उसकी राजनीति, सांप्रदायिक मोबिलाइज़ेशन का फ़ौरी औजार ही नहीं, युवा लड़कियों के नागरिक अधिकारों को संदिग्ध बनाने के लिए ही नहीं, युवा तबक़ों से प्रेम का अधिकार छीनने के लिए भी है। वैलेनटाइंस डे' का विरोध, पार्कों में लड़के-लड़कियों पर हमले, हिंदू स्त्री के साथ मुसलमान सहकर्मी को रोकना-पीटना, लडके-लड़कियां पार्कों आदि में न मिल सकें इसके लिए 'निगरानी कमेटियां' बनाना, हिंदू-मुस्लिम विवाहित जोड़ों को धमकियां देना और प्रताड़ित करना आदि से स्पष्ट है कि वे 'प्रेम' के विरोध में हैं क्योंकि हिंदुत्ववादी दहेज, असमानता पर आधारित परिवार और पितृसत्ता के पक्ष में हैं। वैसे भी 'प्रेम' एक 'स्त्रैण' भाव है फिर प्रेम के अधिकार में स्वतंत्र अभिरुचि, चुनाव, संवाद और असहमत होने व प्रतिरोध करने का भी अधिकार शामिल है। इन सभी अधिकारों से उच्छिन्न लड़के 'हिंदू राष्ट्र निर्माण' में आसानी से लग सकते हैं और लड़कियां आसानी से 'मातृशक्ति' और 'गृहलक्ष्मी' बन सकती हैं। इसीलिए वे लिंग 'पार्थक्य' के समर्थक हैं। सहशिक्षा का विरोध उनका पुराना एजेंडा है। एक बार बाला साहब देवरस से दिल्ली के एक पत्रकार ने पूछा कि क्या राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सदस्य व सरसंघचालक कोई महिला बन सकती है? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, 'नहीं—कोई महिला आरएसएस की सदस्य नहीं बन सकती। हम रोज़ शाखाएं लगाते हैं। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि एक घंटे लड़के और लड़कियां एक साथ खेल रहे हैं, यह संभव नहीं है'।[17]

'बलात्कार', छेड़खानी, अपहरण और यौनहिंसा के लिए आरएसएस और हिंदुत्वादी ताक़तें स्त्रियों

को ही ज़िम्मेदार मानती हैं। इस तरह वे अपराधियों को बचाती हैं और बलात्कार के पक्ष में हैं। मोहन भागवत का यह बयान कि रेप 'इंडिया' में होते हैं 'भारत' में नहीं, इसका स्पष्ट उदाहरण है। इंडिया का अर्थ हिंदुस्तान का वह हिस्सा है जहां स्त्रियां अपने नागरिक अधिकारों का प्रयोग करती हैं जिसे वे 'पश्चिमीकरण' कहकर ख़ारिज करते हैं। साक्षी महाराज द्वारा हिंदू युवावाहिनी सम्मेलन में 'मुसलमान औरतों को क़ब्र से निकाल कर रेप करना चाहिए', ऐसे भाषण दिये गये थे, उन पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी और अब कुछ दिन पहले ही मेरठ और गाज़ियाबाद के बीच तलहेटा गांव में 26 वर्षीय मुस्लिम युवती की क़ब्र खोदकर उसके साथ बलात्कार किया गया। पुलिस का कहना है कि ये सांप्रदायिक तनाव पैदा करने के लिए किया गया लगता है।[18] पिछले कुछ ही दिनों में बैंगलौर में लेखिका तिर्थाहल्ली को रेप और मारने की धमकी दी गयी है क्योंकि वे 'हिंदू रीति रिवाजों के ख़िलाफ़' लिखती हैं। उन्होंने इसके ख़िलाफ़ एफ़आइआर दर्ज़ करायी है।

2014 लोकसभा चुनावों से पहले जस्टिस वर्मा कमेटी की रिपोर्ट को निशाना बनाना, रेप के ख़िलाफ़ न बोलकर लड़कियों के कपड़ों पर टिप्पणियां करना आदि संघ परिवार के बलात्कार के पक्ष में होने के सबूत हैं।

खाप पंचायतों को लोकसभा चुनाव के समय और फिर हरियाणा विधानसभा चुनाव के समय जैसे महिलाओं के ख़िलाफ़ मैदान में उतार दिया गया। उत्तर प्रदेश और हरियाणा में खाप पंचायतों ने लड़कियों के जीन्स पहनने, मोबाइल रखने को रेप का कारण बताया। सोनीपत में खाप पंचायत में विचार व्यक्त किया गया कि बालविवाह करने से रेप नहीं होंगे। ऐसे प्रस्ताव भी चर्चा में आये कि लड़कियों को 10वीं के आगे नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। हरियाणा के मुख्यमंत्री (जो आरएसएस के घोषित प्रचारक रहे हैं) ने शपथ लेते ही बयान दिया कि 'महिलाओं को अगर स्वतंत्रता चाहिए तो वे निर्वस्त्र क्यों नहीं घूमती हैं'? उन्होंने हरियाणा के एक प्राइवेट चैनल पर इंटरव्यू में खाप पंचायतों को 'जल्दी न्याय देने वाली संस्था' बताया। हिंदू महासभा और खाप पंचायतों के प्रतिनिधियों ने टी.वी. पर लड़कियों के कपड़ों पर लंबी-लंबी बहसें की हैं जिनमें ऐसी बातें भी शामिल हैं कि 'लड़कियां ऐसे कपड़े पहनती हैं जिसमें उनके आकार दीखते हैं।' लड़कियों के ख़िलाफ़ ऐसा वातावरण बना दिया गया जैसे वे अपराधी हैं। जस्टिस वर्मा कमेटी की सिफ़ारिशें लागू नहीं हुईं; रेप के ख़िलाफ़ वातावरण बनाने के एजेंडे को पलट दिया गया और लगभग 'लड़कियों को सुधारने' का एजेंडा रख दिया गया। इस समय बलात्कारियों और बदमाशों के हौसले बुलंद हैं और स्त्रियों के ख़िलाफ़ अपराध बढ़ रहे हैं। जातिवादी रुख़ भी इन अपराधों में शामिल हैं, ख़ासकर पढ़ने वाली दलित लड़कियों को निशाना बनाया जा रहा है। इसी महीने यमुनानगर के एक स्कूल के बाहर छात्राओं को दबंगों द्वारा छेड़ने और उनके कपड़े फाड़ने की घटना सामने आयी है। सनपेड गांव (हरियाणा) में दलित परिवार को पुलिस पहरे में जलाकर मारने की घटना अभी हुई जिसमें 2 बच्चे जीवित जल गये और मां 70 प्रतिशत जल गयी। दशहरे के दिन सोनीपत के कुंडली गांव में 14 साल की युवती जो भाई के साथ थी (परिवार उसके पीछे था) को अगवा करके रेप और हत्या अंजाम दी गयी। हर दिन पूरे देश से स्त्रियों पर हमलों की ख़बरें आ रही हैं। प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री, सरसंघचालक इन पर कुछ नहीं बोलते, राजसत्ता, पुलिस-प्रशासन, अपराधियों को बचाते हैं। सोशल मीडिया पर भी हिंदुत्ववादियों द्वारा महिलाओं को लगातार हिंसा और रेप की धमकियां दी जा रही हैं।

दलित, महिलाओं और ग़रीब तबक़ों को पंचायत चुनावों से बाहर रखने के लिए हरियाणा में प्रत्याशियों पर 10वीं पास होने, बैंक कर्ज़ा न होने, घर में शौचालय होने जैसी शर्तें लगाने वाला प्रस्ताव हरियाणा विधानसभा में पास किया गया है। सरकार के इस फ़ैसले को जनवादी महिला समिति की मदद से प्रत्याशियों ने चुनौती दी है और सरकार ने कोर्ट में मुंह की खायी है। सरकार द्वारा 'स्टे' की अपील

पर अभी मामला सुप्रीम कोर्ट में है। वास्तव में संघ परिवार महिलाओं, दलितों और ग़रीब आबादियों से उनकी नागरिकता छीनना चाहता है। वह उनके मताधिकार और निर्वाचित होने के अधिकार को भी स्वीकार नहीं कर पाता क्योंकि इनसे तथाकथित 'सेवा धर्म' में बाधा पड़ती है।

जातिवादी, सांप्रदायिक घृणा, हिंसा और स्त्रियों के ख़िलाफ़ अपराधों को राजसत्ता का समर्थन इस समय प्राप्त है। वे अपराधों के ख़िलाफ़ बयान तक नहीं देते और उनके संगठन, प्रचारक और हिंदूवादी स्वयंभू 'राष्ट्रवादी' आग लगाने वाले बयान देते हैं। ऐसा लगता है जैसे वे स्त्रियों के सम्मान के साथ खेल रहे हैं। गृहमंत्री बयान देते हैं कि दो लोगों द्वारा बलात्कार सामूहिक बलात्कार नहीं होता। अपराधियों के ख़िलाफ़ कुछ न बोलना और स्त्रियों के ख़िलाफ़ सामाजिक-सांस्कृतिक हमले को शह देना व संगठित करना मौजूदा स्त्रीद्रोही हिंदुत्ववादी दक्षिणपंथी सरकार का मुख्य चरित्र है। और ऐसे में मोहन भागवत बयान देते हैं कि 'पुरुषों को जीविका उपार्जन करनी चाहिए और स्त्रियों को घर संभालना चाहिए।' वास्तव में वे स्त्रियों की 'घर वापसी' का गुप्त एजेंडा रखते हैं। चूंकि आरएसएस के अनुसार 'मातृशक्ति' का स्थान घर है। हिंदुत्ववादियों ने लैंगिक प्रश्नों को संकीर्ण विभाजनकारी राजनीति का हिस्सा बना लिया है और महिलाओं को घर और बाहर न केवल असुरक्षित कर दिया है बल्कि उन्हें निहत्था करने और समाज की सबसे पिछड़ी ताक़तों को उनके ख़िलाफ़ खड़ा करने का वे काम कर रहे हैं।

संघ परिवार और आरएसएस उस हिंदुत्ववादी परंपरा की निरंतरता को आगे ले जा रहे हैं जिसने 'हिंदू कोड बिल' का विरोध इसलिए किया था क्योंकि इसमें एक विवाह और तलाक़ का प्रावधान था। वे पुत्र उत्पत्ति के नाम पर एक से अधिक विवाह यानी बहुविवाह की परंपरा क़ायम रखना चाहते थे। महिलाओं को संपत्ति में अधिकार नहीं देना चाहते थे। इस स्त्रीविरोधी मुहिम में श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे हिंदू महासभा के लोग नेतृत्वकारी भूमिका में थे।[19] श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने ही आगे चल कर भारतीय जनसंघ बनाया जिसका परवर्ती रूप आज की भाजपा जैसी दक्षिणपंथी राजनीतिक पार्टी है। बाबरी मस्जिद ध्वंस से पहले हम रूपकंवर सती प्रसंग में भी हिंदुत्ववादियों का स्त्री-द्रोही चेहरा देख चुके हैं। उस समय उठी बहसों में इन्होंने कामकाजी स्त्रियों को 'चरित्रहीन' बताया, पढ़ी-लिखी औरतों की निंदा की और उस 'भारतीय संस्कृति' का गुणगान किया जिसमें सती-प्रथा और बहुविवाह को मान्यता प्राप्त है।

सांप्रदायिकता की तरह ही वे लैंगिक प्रश्नों को अपना सामाजिक-सांस्कृतिक वर्चस्व क़ायम करने के लिए एक राजनीतिक हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं।

मौजूदा सरकार के कारनामे

'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' का नारा देने वाली भाजपा सरकार ने 2014 से आज तक लड़कियों के जीवित रहने और पढ़ने की परिस्थिति को इस हद तक ज़हरीला बना दिया है कि उनका पढ़ना और जीवित रहना दोनों ही मुश्किल से मुश्किल होते जा रहे हैं। विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं में छात्र-छात्राओं के लिए एक घुटन भरा वातावरण बनाया गया है। आर.एस.एस. प्रचारकों की नियुक्ति वाइस चांसलर के तौर पर की जा रही है। ये स्त्रीद्रोही लोग हैं। इसका एक उदाहरण तो बनारस विश्वविद्यालय में छात्राओं के आंदोलन के समय सामने आया। बनारस विश्वविद्यालय में सुबह-शाम आर.एस.एस. की शाखाएं लगती थीं और भगवा ध्वज लेकर रोज़ जुलूस निकाले जाते थे। लड़कियों को शाम के बाद बाहर निकलने पर छेड़खानी होती थी। लड़कियों ने सीसी टी.वी. कैमरे लगाने, हॉस्टल के आसपास रोशनी का ठीक इंतज़ाम करने और सुरक्षा के अन्य उपायों के लिए एप्लीकेशन लिखी और वी.सी. से समय मांगा जो वी.सी. ने नहीं दिया। लड़कियों ने शिकायत की कि हमारे कमरे की खिड़की के सामने लड़के ने कहा, 'शाम को बाहर क्यों निकलती हो?' एक लड़की के साथ शाम को अभद्र शारीरिक व्यवहार किया गया

और कहा गया, 'वापस जायेगी या रेप करायेगी?' इस पर छात्राओं ने धरना दिया। धरने पर लाठीचार्ज किया गया। लड़कियों के चरित्रहनन की कोशिश की गयी, उनके घरवालों को भड़काने वाली रिपोर्ट भेजी गयी, उनके ख़िलाफ़ तरह-तरह की अनुशासनात्मक कार्रवाई की गयी। यह एक जगह की बात नहीं है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की नौ लड़कियों की शिकायत के बावजूद प्रशासन ने डॉ. जौहरी का बचाव किया और बरसों से अच्छा काम कर रही यौन उत्पीड़न-विरोधी कमेटी को ही भंग कर दिया। दिल्ली में लड़कियों के 'पिंजड़ा तोड़' आंदोलन के दौरान लड़कियों को डराया-धमकाया गया और ए.बी.वी.पी. के लड़कों ने चरित्र हनन के प्रयास किये; साथ ही लड़कियों पर हमले भी किये। यहां एक-दो उदाहरण की बात नहीं है। ऐसा लगता है लड़कियों को पढ़ने से हतोत्साहित करने की मुहिम चली हुई है। हरियाणा में फ़रीदाबाद और फिर रिवाड़ी में स्कूल की लड़कियों ने छेड़ख़ानी के ख़िलाफ़ आंदोलन किये। पंचायत ने फ़ैसला लिया कि लड़कियां पढ़ने नहीं जायेंगी। लड़कियां दिन-रात धरने पर बैठीं, उन्हें डराने के लिए गुंडे भेजे गये और प्रशासन ने कुछ नहीं किया। बाद में महिला आंदोलन के हस्तक्षेप से मामला कुछ सुलझा। उसके बाद ही इस इलाक़े में सी.बी.एस.सी. में प्रथम आने वाली लड़की के साथ सामूहिक रेप हुआ। लड़कियों के माता-पिता में जो लड़कियों को पढ़ाने की गहरी इच्छा पैदा हुई थी वह टूट रही है। लड़कियों के अभिभावक लड़कियों की सुरक्षा को लेकर चिंतित हैं और एक मजबूरी महसूस कर रहे हैं।

आज शिक्षा को लगातार महंगा किया जा रहा है। इसका असर दलित, ग़रीब तबक़ों और ख़ासकर लड़कियों पर पड़ रहा है। माता-पिता असुरक्षा और महंगी शिक्षा के कारण भयानक दबाव में हैं और लड़कियां प्रतिरोध कर रही हैं। प्रतिरोध करती लड़कियों का मनोबल तोड़ने के लिए पुलिस प्रशासन, सरकार हर तरह के हथकंडों का इस्तेमाल कर रही है। केवल जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में ही नहीं, पूरे देश में जगह-जगह फ़ीस वृद्धि के ख़िलाफ़ आंदोलन हो रहे हैं।

भाजपा बलात्कार, यौन उत्पीड़न और चरित्र हनन को लगातार स्त्रियों के ख़िलाफ़, जनतांत्रिक आंदोलनों के ख़िलाफ़ और अपनी विभाजनकारी संकीर्ण राजनीति को आगे बढ़ाने के लिए इस्तेमाल कर रही है। कठुआ रेप केस में हिंदुत्ववादियों ने तिरंगे लेकर बलात्कारियों को बचाने के लिए उन्मादी जुलूस निकाला। इस जुलूस में जम्मू-कश्मीर के दो भाजपाई विधायकों ने भी हिस्सा लिया। सारे देश में इसका विरोध हुआ। दबाव में विधायकों को इस्तीफ़ा देना पड़ा। प्रधानमंत्री इस केस पर तीन महीने तक कुछ नहीं बोले। उत्पीड़ित बच्ची के घरवालों और उसकी वकील को लगातार केस छोड़ने के लिए डराया-धमकाया गया। इस केस का प्रयोजन बकरवालों को खदेड़ना और सांप्रदायिक विभाजन को पक्का करना था।

बच्चियों के यौन उत्पीड़न और हत्या के मामले एक डराने वाले परिमाण में सामने आ रहे हैं। ख़ुद बच्चियों को शरण देने वाले शेल्टर हाउस यानी बालगृह में बच्चियां यौन उत्पीड़न से लेकर अन्य अनेक तरह की हिंसा की शिकार हो रही हैं। मुजफ़्फ़रपुर, बिहार बालगृह के संदर्भ में ब्रजेश ठाकुर को पुलिस खोज रही है। इस सुधारगृह से लड़कियां ग़ायब की गयीं। हड्डियों का एक बंडल भी उस स्थान से खुदाई में मिला जहां कुछ बच्चियों को मारकर जलाया गया था। ख़ुद एक आरोपी ने यह जगह पुलिस को दिखायी। लोगों के भारी प्रतिरोध के कारण केस सी.बी.आइ. को सौंप दिया गया।

राजस्थान में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय, अलवर में वार्डन और उसके पति को लड़कियों के यौन-उत्पीड़न के संदर्भ में गिरफ़्तार किया गया। सरकार द्वारा जनदबाव में बनायी गयी एक खोजबीन कमेटी ने मध्य प्रदेश आदि अनेक राज्यों के बालिका गृहों में बच्चियों पर हो रही हिंसा और यौन उत्पीड़न के मामलों की रिपोर्ट प्रस्तुत की।

बलात्कार से लड़कर जीवित बच जाने वाली महिलाओं के पुनर्निवास के लिए 2013 में बनाया गया

निर्भया फ़ंड उत्पीड़ित महिलाओं पर ख़र्च नहीं किया गया। केवल 30 प्रतिशत फ़ंड ख़र्च किया गया। उसी फ़ंड से 500 करोड़ रुपया रेलवे को सीसी टीवी लगाने के लिए दे दिया गया।

उन्नाव रेप केस, चिन्मयायनंद केस, नित्यानंद केस आदि की एक अंतहीन लिस्ट है जिसमें भाजपा के विधायक, मंत्री और ख़ुद प्रधानमंत्री, गृहमंत्री के साथ फ़ोटो खिंचाने वाले नज़दीकी लोग महिलाओं के प्रति अपराधों में लिप्त पाये गये। इन मामलों में आरोपी को बचाने की पूरी कोशिशें हुईं। आरोपी का भाग जाना, पकड़ा ही न जाना, ज़मानत पर खुला घूमना, उत्पीड़ित पर हिंसा करना, केस वापस लेने के दबाव बनाना, सबूत मिटाना और परिवारजनों की हत्या कर देना -- इसी तरह की पद्धतियां अपनायी जा रही हैं। चिन्मयानंद जो भाजपा सरकार में तीन बार मंत्री रह चुके हैं, आराम से अस्पताल में हैं और लड़की जेल में है। उसे परीक्षा देने की अनुमति भी नहीं मिली; उस पर ग़ैरज़मानती गंभीर केस बनाये गये हैं; जबकि चिन्मयानंद पर मामूली धाराएं लगायी गयीं।

शबरीमला मंदिर पर सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले के ख़िलाफ़ गृहमंत्री ने बयान दिया कि सुप्रीम कोर्ट को फ़ैसला करते समय लोगों की धार्मिक भावनाओं का ध्यान रखना चाहिए। पूरे देश में इस मुद्दे के बहाने महिलाओं के ख़िलाफ़ और प्रगतिशील ताक़तों के ख़िलाफ़ कट्टरपंथी उन्मादी भावनाओं को भड़काया गया। मंदिर प्रवेश करने वाली स्त्रियों पर हमले के लिए लोगों को उकसाया गया।

धूर्ततापूर्वक मातृशक्ति का राग छेड़ने वाली इस सरकार ने आइ.सी.डी.एस. आंगनवाड़ी योजना के बजट में 50% की कटौती कर दी। ग़रीब गर्भवती औरतों और बच्चों को मिलने वाले मामूली पोषण में यह कटौती बच्चों में कुपोषण और प्रसव के दौरान मौत जैसी समस्याओं को बढ़ाने वाली है। आशा वर्कर्स के बजट को भी कम किया गया है। आर.टी.एफ. (Right to Food) पर पूरा काम करने वाली एक संस्था ने 50 से अधिक मौतें भूख के कारण एक रिपोर्ट में दर्ज की हैं। झारखंड, उत्तर प्रदेश और दिल्ली में ये मौतें हुई हैं। इसके बावजूद राशन प्रणाली के नियम इस तरह बनाये जा रहे हैं कि लोगों को राशन नहीं मिल रहा। आधार कार्ड से राशन कार्ड को जोड़ने और मशीन पर अंगूठे की छाप से पहचान करने के कारण बहुत ग़रीब लोगों को राशन नहीं मिल रहा। मज़दूर औरतों के अंगूठों के निशान घिस जाते हैं इस वजह से मशीन पर उनकी छाप ठीक नहीं आती।

मनरेगा योजना जिसमें ग़रीब औरतों को 100 दिन काम मिलता था उसमें बजट कम करने से अब केवल 34 दिन काम मिलेगा। यही नहीं, 2016-17 में मनरेगा की 20,000 करोड़ रुपये की दिहाड़ी समय से नहीं दी गयी। वास्तव में इस योजना को बर्बाद कर दिया गया है।

ग्रामीण महिलाएं जो पशु-पालन से घरेलू अर्थव्यवस्था चलाती थीं 'गाय की राजनीति' के कारण संकट में हैं। आदिवासी महिलाएं जंगलात के अधिकार के क़ानून में बदलाव के कारण भारी मुसीबत में हैं झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में उनसे ज़मीनें ख़ाली करायी जा रही हैं और वे भीषण संघर्षों से गुज़र रही हैं। स्वच्छ भारत अभियान के तहत लोगों से जो टैक्स वसूल किया जा रहा है और उसे इश्तहार और प्रचार पर ख़र्च कर दिया गया है। नेशनल सैंपल सर्वे के अनुसार, दस में से छह शौचालयों में पानी की कोई व्यवस्था नहीं है। मध्य प्रदेश में दो दलित बच्चों की पिटाई से मौत हुई क्योंकि वे खुले में निपटने के लिए गये थे। गटर साफ़ करने के लिए अब भी मशीनों आदि के लिए कोई बजट नहीं रखा गया है। आज भी, गटर में उतरने पर मौत की घटनाएं सामने आती रहती हैं।

हर ओर मौतें। छात्र आत्महत्या कर रहे हैं, किसान आत्महत्या कर रहे हैं, गाय के नाम पर लिंचिंग हो रही है। क़रीब 12 हज़ार किसान कर्ज़े की वजह से हर साल आत्महत्या कर रहे हैं। औरतें इस समय भयानक दबावों में हैं। कर्ज़ा उगाहने वाले और अनेक असामाजिक तत्त्व उन्हें परेशान करते हैं, साथ में आर्थिक संकट भी झेल रही हैं जिसे नोटबंदी ने और बढ़ा दिया है।

इधर संसद में ऐसे कई बिल पारित करा लिये हैं जिन के माध्यम से सरकार ने स्पष्ट तौर पर सांप्रदायिक पार्थक्य को पक्का कर दिया है। असम में नागरिकता रजिस्टर के क़दम से अनेक लोग भयानक मुश्किलों से गुज़र रहे हैं। उन महिलाओं की ख़ासी तादाद है जिन पर काग़ज़ नहीं है। वे ग़रीब, अनपढ़ औरतें हैं। शादी के बाद वे असम पहुंच गयीं। कितनी औरतें यातनागृह जैसे शैल्टर हाउस में रह रही हैं। नागरिकता संशोधन क़ानून तो संविधान की मूल प्रतिज्ञा को उलटने वाला है। यह संविधान को अपदस्थ कर *मनुस्मृति* लागू करने की दिशा में एक क़दम है।

सरकार द्वारा बनायी जा रही तमाम परिस्थितियां औरतों को और अधिक असुरक्षित करने वाली हैं; क्योंकि सारे क़दम एक हिंसक परिस्थिति बना रहे हैं। तथाकथित हिंदू राष्ट्र के संदर्भ में पहले ही घोषणाएं की जा चुकी हैं कि स्त्री का काम पति की सेवा करना है। जो सामाजिक सत्ता आज महिलाओं के ख़िलाफ़ खड़ी है वह केवल परंपरागत सामाजिक सत्ता नहीं है। मौजूदा सत्ता का चरित्र आपराधिक विश्व पूंजी और दक्षिणपंथी प्रतिगामी राजनीति के दलालों द्वारा गढ़ा गया है। यह सामाजिक सत्ता, निरंकुश राजसत्ता और कॉरपोरेट पूंजी के गठजोड़ से निर्मित हुई है जिसकी उपस्थिति दुनिया में मानवता के प्रति होने वाले क्रूरतम अपराधों तक फैली हुई है। इकतरफ़ा युद्ध, गृह युद्ध, जनसंहार, हत्याओं के गूढ़ सिलसिले, नस्ली हिंसा और निर्दोषों पर अकारण बमबारी हो या स्त्री, बच्चों और ग़रीब आबादियों के प्रति व्यापक क्रूरताएं हों–सभी में इस तरह के गठजोड़ की उपस्थिति मौजूद है। इस सामाजिक सत्ता को, हिटलर अपना हीरो लगता है और संघ परिवार व भाजपा के लिए तो वह परम आदर्श है ही। इस राजनीतिक सत्ता का आर्थिक वर्चस्व की शक्तियों से जो गठबंधन है उसके चलते आज व्यापक आबादियां गहरी यातना और लाचारी से गुज़र रही हैं। साथ ही ऐसा कोई प्रदेश या तबक़ा नहीं है जहां इसके ख़िलाफ़ विरोध या संघर्ष न हो रहे हों। यह गहरी अंतर्विरोधी स्थिति है। हमारा मुक़ाबला इस समय सिर्फ़ भाजपा से नहीं बल्कि एक मनुष्य द्रोही गठबंधन से है। सामाजिक सत्ता को लोगों के पक्ष में ढालने और विकल्प की रणनीति तैयार करने की मांग इस परिस्थिति में छिपी हुई है।

मो. 9896310916

संदर्भ

1. सुमित सरकार, *आधुनिक भारत,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृ. 93-97

2. **Stanley A. Wolpert, *Tilak and Gokhle*, Chapter 3, 'Revival and Reform' pp 62-119, Oxford University Press] 1991.**

3. मा.स.गोलवलकर, *विचार नवनीत,* पृ. 32,119,120,152, भारतीय संस्कृति पुनरुत्थान समिति, लखनऊ, उ.प्र., तृतीय संस्करण।

4. 'हमारे पूर्वजों ने ...कहा कि हिंदू समाज ही वह विराट पुरुष है, सर्वशक्तिमान की स्वः की अभिव्यक्ति। यद्यपि वे हिंदू शब्द का प्रयोग नहीं करते पर 'पुरुष सूक्त' में सर्वशक्तिमान के निम्नांकित वर्णन से यही स्पष्ट है :

ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यांशूद्रो अजायत।।

('ब्राह्मण उसका मुख है, क्षत्रिय भुजाएं, वैश्य उसकी जंघाएं तथा शूद्र पैर हैं।)
इसका अर्थ है कि समाज जिसमें यह चतुर्विध व्यवस्था है अर्थात हिंदू-समाज हमारा ईश्वर है।'

-- *विचार नवनीत,* पृ. 26 (तृतीय संशोधित संस्करण), गुरु गोलवलकर, इसके अलावा, देखिए, पृ. 104,105

5. 'उदाहरण के लिए हमारा यह सामान्य नियम है कि प्रत्येक स्त्री को चाहे वह छोटी बालिका ही क्यों न हो, हम मां कहकर पुकारते हैं। हम अपनी अनेक बोलियों में जो भी शब्द प्रयोग करते हैं, वह भी इस अर्थ को व्यक्त करते हैं। इसका यह आशय है कि पत्नी को छोड़कर अन्य प्रत्येक स्त्री वह चाहे जिस अवस्था एवं प्रतिष्ठा की हो, पुरुष के लिए माता का व्यक्त रूप है। यह हमारी संस्कृति का विशिष्ट स्वरूप है।' *विचार नवनीत,* वही, पृ.122

6. *विचार नवनीत,* पृ. 115,

7. *विचार नवनीत,* पृ. 31

8. *विचार नवनीत,* पृ. 263

9. *विचार नवनीत,* पृ. 405

10. *विचार नवनीत,* पृ. 227

11.*विचार नवनीत,* पृ. 114

12. **bbc.com,** 23 सितंबर 2015, 'महिलाएं बढ़ा रही हैं बेरोज़गारी'

छत्तीसगढ़ समाज विज्ञान की दसवीं की पाठ्य पुस्तक, (राज्य शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, रायपुर, छत्तीसगढ़)

13. *विचार नवनीत,* पृ. 374

14. *विचार नवनीत,* पृ. 34- 'यह चतुर्विध पुरुषार्थ है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष'

15. *विचार नवनीत* पृ. 26

16. ***The Hindu***, 24 अगस्त 2014,

17. **Bala Saheb Deoras with Delhi Newsmen, March 12, 1979,** सुरुचि साहित्य प्रकाशन।

18. ***Times of India,*** 26 अक्तूबर 2015

19. **Renu Chakarvarty, *Communists in Indian Women's Movement* (2nd edition), p.190-191.**

आततायी मुहिम के नख-दंत-2

इतिहास और समकालीन राजनीति

नलिनी तनेजा

हम चाहे किसी भी युग की बात क्यों न करें, इतिहास का संबंध हमेशा वर्तमान से होता है। भारत में आज, मौजूदा राजनीति के बिल्कुल केंद्र में इतिहास है और इसे केंद्रीय महत्त्व दक्षिणपंथी हिंदुत्व ने दिया है। हम अपनी आंखों से देख सकते हैं कि फ़ासीवादी राजनीति के लिए इतिहास को द्वेषपूर्ण ढंग से हथियार बनाया गया है।

हमारे जीवन, हमारे समाज और इस व्यापक दुनिया में अतीत में जो कुछ भी घटित हुआ है, वही इतिहास है। लेकिन हम इस अतीत का अनुभव प्रत्यक्षतः नहीं करते। अगर मौखिक परंपराओं की बात न भी करें, तब भी कई पीढ़ियों के इतिहासकारों, यात्रियों, टिप्पणीकारों और भिन्न-भिन्न स्तर के बौद्धिक व्याख्याकारों ने, जिस तरह अतीत को लिपिबद्ध किया है, समझा है और व्याख्यायित किया है, उससे छनकर ही वह हम तक पहुंचता है। इसलिए अतीत को जिस रूप में हम समझते हैं वह भी इतिहास है। अपने इस दायरे में दक्षिणपंथी हिंदुत्व बहुत आक्रामक रूप में आगे बढ़ रहा है। भले ही विद्वानों के बीच वह वर्चस्व हासिल नहीं कर पा रहा है, फिर भी संस्थागत बदलावों और पाठ्यचर्याओं में हस्तक्षेप के माध्यम से वह यहां भी आर एस एस द्वारा प्रचारित स्मृतियों को आकार दे रहा है।

हम इतिहास-लेखन की विभिन्न धाराओं के बारे में जानते हैं—भारतीय संदर्भ में साम्राज्यवादी, राष्ट्रवादी, सांप्रदायिक, कैंब्रिज और सबाल्टर्न धाराएं, और अन्य कई धाराएं जो जेंडर और जाति परिप्रेक्ष्यों के प्रति संवेदनशील हैं। 18वीं और 19वीं सदी से जबसे इतिहास को सामाजिक विज्ञान के रूप में मान्यता मिलने लगी थी, तब से उसे चाहे जिस दृष्टिकोण या परिप्रेक्ष्य से लिखा जाना हो, उसे लिखने के लिए काम में लाये जाने वाले ज़रूरी उपकरणों और पालन किये जाने वाले मापदंडों की समझ ज़रूरी है—सही सूचना, तथ्यों का विवेकपूर्ण चयन, विश्लेषण और व्याख्या में वस्तुपरकता। शुद्ध विज्ञान की तरह तो नहीं लेकिन ऐतिहासिक आख्यान और व्याख्या सहित सामाजिक विज्ञान में भी काफ़ी हद तक वस्तुपरकता संभव भी है और वांछनीय भी।

इस अर्थ में, फ़ासीवादी हिंदुत्व द्वारा इतिहास का प्रक्षेपण, किसी भी अर्थ में इतिहास नहीं है। इसका अधिकांश मनगढ़ंत कहानियां हैं, ये इस हद तक पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं कि साफ़ असत्य ध्वनित होता है और लगभग सभी तुच्छ हैं और मिथकों और पूर्वनिर्धारित धारणाओं पर आधारित हैं।

इतिहास लेखन में मिथकों का एक उद्देश्य होता है—वे सत्य नहीं होते लेकिन जब लिखे गये थे, उस समय के प्रचलित विचारों के बारे में वे हमें बताते हैं। समय के अनुसार वे बदलते भी हैं और प्रत्येक युग के अपने प्रचलित सामाजिक मानदंडों के आलोक में वे दुबारा कहे जाते हैं। इसीलिए उनके कई पाठांतर भी होते हैं। उदाहरण के लिए, भारत और विदेशों में समाज के अलग-अलग हिस्सों और क्षेत्रों में *रामायण* के कम से कम तीन सौ से अधिक तरह के पाठांतर मिलते हैं। हिंदुत्व का फ़ासीवादी इतिहास मानव अनुभव और इसके अभिलेखन की सभी परतों को अनदेखा कर *रामायण* के उस पाठांतर को हावी होने देता है जो हिंदू राष्ट्र के निर्माण में लाभप्रद हो।

इस पाठांतर को पाठ्यपुस्तकों के पुनर्लेखन के ज़रिये, आमसभाओं के ज़रिये, मुद्रित और इलेक्ट्रानिक मीडिया और अब इंटरनेट और सामाजिक मीडिया के ज़रिये लोगों के बीच तीव्र और आक्रामक ढंग से निर्मित और प्रसारित करने का काम किया जा रहा है।

इतिहास और दूसरे सामाजिक विज्ञानों पर दक्षिणपंथी आक्रमण कोई नयी बात नहीं है। 1992 में बाबरी मस्जिद के विध्वंस और अटल बिहारी वाजपेयी के अधीनस्थ भाजपा सरकार के दौरान एनसीइआरटी के पाठ्यक्रमों में बदलाव के बाद ही अधिकतर इतिहासकार और वामपंथ सहित मुख्यधारा के राजनीतिक दल दक्षिणपंथी फ़ासीवादी संभावनाओं के ख़तरे के प्रति सजग हुए। इनका प्रतिरोध हुआ लेकिन 2004 में वाजपेयी सरकार के पतन और कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) की विजय के बाद ही सांप्रदायिक पाठ्यपुस्तकों को हटाया गया। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। सांप्रदायिक पाठ्यपुस्तकों के अलावा कई अन्य चीज़ों को पलटा नहीं जा सका। इसके लिए बहुत कोशिश भी नहीं हुई। इस दौरान भी आरएसएस से संबद्ध संस्थाएं लगातार फलती-फूलती रहीं, वे इतिहास और संस्कृति का अपना संस्करण पढ़ाते रहे और मोदी सरकार के दौरान तो इनकी संख्या भी बहुत अधिक बढ़ गयी है और इन्हें सरकार से मान्यता और सरकारी अनुदान भी प्राप्त हो रहा है।

आरएसएस ने शिक्षा को जितनी गंभीरता से लिया उतनी गंभीरता से किसी अन्य राजनीतिक समूह ने नहीं लिया और राजनीतिक लामबंदी में इतिहास के महत्त्व को जितना आरएसएस ने पहचाना उतना किसी अन्य राजनीतिक या सामाजिक समूह ने नहीं पहचाना। इनका राजनीतिक एजेंडा इतिहास पर इनके विमर्श में व्याप्त है और इतिहास उनके संपूर्ण राजनीतिक विमर्श में व्याप्त है। वाजपेयी सरकार से कहीं ज़्यादा निर्लज्ज ढंग से मोदी सरकार इसके लिए पूर्ण सहयोग उपलब्ध करा रही है।

भारतीय जनता पार्टी की वाजपेयी सरकार ने सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त एनसीइआरटी-सीबीएसइ स्कूल प्रणाली पर नियंत्रण के लिए बुनियाद रख दी थी ताकि समाज के विभिन्न हिस्सों को जिन्हें वे अपने प्रभाव में लाना चाहते थे, उनके लिए स्कूल की पाठ्य पुस्तकों को संशोधित करने और सरकार द्वारा प्रायोजित बहुत से शिक्षण संस्थानों का निर्माण करने का काम किया जा सके।

यह सरकार लामबंदी करने के लिए विपरीत छोर से पहुंच रही है—यह शैक्षिक समुदाय (एकेडमिया) के बाहर के समाज को आतंकित करने के लिए, उन लोगों का जिनका शैक्षिक समुदाय से बहुत थोड़ा नाता होता है, उनकी सोच को ज़बरन बदलने के लिए और अपनी निर्दयी ताक़त का उपयोग करके शासन व्यवस्था और उच्च शिक्षा के सार्वजनिक संस्थानों में अपनी सोच को ज़बरन थोपने के लिए आरएसएस और उससे संबद्ध संगठनों को प्रोत्साहित करती है। यह सोच विद्वत्ता के दायरे में प्रवेश कर चुकी है और इस पर वाम और धर्मनिरपेक्ष परिप्रेक्ष्यों का नहीं बल्कि एक लोकप्रचलित आम समझ का वर्चस्व है जिसे सालों से दक्षिणपंथी राजनीतिक प्रचार और उनके बढ़ते नियंत्रण वाले जन माध्यमों के ज़रिये पैदा किया गया है।

मोदी-शाह की जोड़ी विद्वत्तापूर्ण शोध की मुख्यधारा को लेकर बहुत कम परेशान है जिसकी प्रकृति अब भी धर्मनिरपेक्ष है—लड़ाई सड़कों पर चल रही है और सड़क पर जो लोग हैं, उनकी सोच कैसी होनी चाहिए यही उनकी चिंता का विषय होता है। इसीलिए, आरएसएस अपनी शाखाओं में, जनसभाओं में, अपने प्रकाशनों और मित्र मंडलियों और भजन मंडलियों के ज़रिये जो प्रवचन देता था वह अब हमारे स्कूलों, कॉलेजों, मध्यवर्गीय घरों, पड़ोसियों, संक्षेप में हमारे नागरिक समाज तक पहुंच चुका है, जिनकी मिली-जुली संस्कृति और समन्वयवादी विरासत पर हम गर्व किया करते थे। भीड़ द्वारा हिंसा, रीति-रिवाजों और धार्मिक रस्मों के प्रति मध्यवर्ग का जुनून, यहां तक कि मुसलमानों और दलितों के विरुद्ध बलात्कार और हिंसा को 'इतिहास' यानी 'ग़लतियों' को सुधारने' में यक़ीन, 'चोट खायी संवेदनाओं' के लिए 'न्याय'

और इसी तरह की बातों द्वारा पुष्ट किया जाता है। भाजपा शासित राज्यों के स्कूलों में सरस्वती वंदना और वंदे मातरम् को अनिवार्य बनाने के द्वारा, नगरों और रास्तों के नाम बदलने के द्वारा, सामाजिक सेवाओं' के ज़रिये त्योहारों के समारोह द्वारा, खेलकूद के आयोजनों द्वारा, वे औपचारिक कक्षाओं के बाहर इतिहास की सांप्रदायिक दृष्टि को लोगों तक पहुंचाते हैं। जैसाकि आम चुनावों के नज़दीक पुलवामा और पाकिस्तान से जुड़ी घटनाएं, कश्मीर को सेना के नियंत्रण में लाने, कश्मीरी जनता का व्यापक दमन करने और उन नेताओं की गिरफ़्तारी जो उनसे असहमत हैं और उनके आलोचक हैं, तात्कालिक इतिहास के उनके संस्करण को प्रचारित करने की सुविधाजनक चालें हैं। धर्मांतरण, गौ रक्षा, मुस्लिम आबादी में बढ़ोतरी, 'लव जिहाद' जैसे अपने प्रिय विषयों को वे मध्ययुग और मुग़ल शासन से जोड़ देते हैं, और इन सबको वे आज के मुसलमानों पर हस्तांतरित कर देते हैं और ये उनके विरुद्ध हिंसा के लिए बहाने बन जाते हैं। इसी तरह मुग़ल शासन के आधार पर वे 'विदेशी' के रूप में चिह्नित किये जाते हैं ताकि राष्ट्रीय पंजिका और नागरिकता संशोधन क़ानून को न्यायोचित ठहराया जा सके और जिसका नतीजा बड़ी संख्या में मुसलमानों को नागरिकता से वंचित करने या उन्हें दोयम दर्जे की नागरिकता में घटा देने में निकल सकता है। अयोध्या में पुरातात्त्विक तथ्यों की विकृति ने ऐसा न्यायिक निर्णय दिये जाने को संभव बनाया जिसने मुसलमानों को न्याय से वंचित कर दिया।

हिंदू फ़ासीवादी राज्य की इमारत खड़ी करने के लिए मोदी-शाह शासन कटुतापूर्ण तरीक़े से इतिहास का खुलकर इस्तेमाल कर रहा है।

आरएसएस के लिए, इतिहास का मक़सद सांप्रदायिक आधार पर लोगों को विभाजित कर हिंदू गौरव का भाव भरना है, और अल्पसंख्यकों, ख़ासतौर पर मुसलमानों के प्रति नफ़रत पैदा करने के ज़रिये समाज का ध्रुवीकरण करना है। इस क्रम में उन्होंने भारतीय इतिहास का वह काल विभाजन स्वीकार किया है जिसे सबसे पहले साम्राज्यवादी ब्रिटिश इतिहासकारों ने प्रस्तावित किया था और बाद में उन्होंने स्वीकार किया था जिनका नज़रिया सांप्रदायिक था। वे भी प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल खंडों को उस युग के शासकों के धर्म के अनुसार हिंदू, मुसलमान और ब्रिटिश काल के रूप में स्वीकारते हैं (हालांकि निस्संदेह आधुनिक युग को ईसाई काल की बजाय ब्रिटिश काल कहा गया है)। और यदि लक्ष्य हिंदू राष्ट्र बनाना है, तो हमारे इतिहास का प्राचीन काल स्वर्ण युग था और मध्यकाल अंधकार युग था। वे इसी के अनुसार विवरणों से प्रत्येक युग को भर देते हैं, भले ही ये विवरण साक्ष्य की जांच में और यथार्थ की वस्तुपरक परीक्षा में खरे न उतरें।

स्थापित शोध के विपरीत, ये आर्यों को भारत के मूल निवासी दिखाते हैं। आर्यों को अधिक 'प्राचीन प्रमाणित' करने के लिए हड़प्पा-सिंधु घाटी सभ्यता को वैदिक सभ्यता बताते हैं और ब्राह्मणवादी रीति रिवाजों की पहचान सच्ची भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं के रूप में की जाती है। इनकी किताबों में आदिवासी परंपराओं का उल्लेख तक नहीं होता। हिंदू धर्म को प्राचीन रचना और भारत के प्रथम धर्म के रूप में बताया जाता है। दरअसल यही अकेला देशी धर्म है, शेष सभी धर्म विदेशी हैं। उस प्राचीन स्वर्ण युग में शांति और समृद्धि थी और सभी लोग सुखी थे। भारत में हुए सभी शासकों में मौर्य सबसे महान और न्यायप्रिय शासक थे। आधुनिक युग में विज्ञान के महत्त्व को देखते हुए उसकी प्रतिक्रिया में अपने स्कूल की पाठ्यपुस्तकों में प्रत्येक आधुनिक आविष्कार को प्राचीन काल में होने का दावा किया जाता है। इन बहुत से हास्यास्पद दावों के अनुमोदन और सम्मानित स्थान के लिए भारतीय विज्ञान कांग्रेस का भी इस्तेमाल किया गया है। और अब मोदी और शाह से आरंभ होकर भाजपा के नेताओं ने अपने जनाधार के उपभोग के लिए हास्यास्पद सार्वजनिक वक्तव्य देना शुरू कर दिया है। उनका कहना है कि 'इस भूमि को जहां पर प्रथम मानव ने जन्म लिया था', 'उसे महान बनाने के लिए ही राम और कृष्ण

और अन्य कई देवताओं ने यहां पर जन्म लिया था'। इन दावों की सूची से पूरी एक किताब भरी जा सकती है! मोदी ने स्वयं कहा है कि 'गणेश की हाथी जैसी सूंड इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारत में भी आधुनिक शल्य चिकित्सा होती थी'! हम इन दावों पर प्रायः हंसते हैं लेकिन उनका मक़सद बहुत गंभीर होता है।

उनके विद्या भारती और शिशु मंदिर स्कूलों की पाठ्यपुस्तकों में बाहरी हमलावरों के विरुद्ध हिंदू-भारतीय इतिहास की 3000 साल पुरानी 'गौरव गाथा' का उल्लेख है—असभ्य, क्रूर और बर्बर मुसलमान हमलावरों ने मंदिर तोड़े, हिंदू औरतों का अपहरण किया, उनके साथ बलात्कार किया, उन्हें ज़बरन हिंदू से मुसलमान बनाया और वे हिंदुओं के प्रति बहुत दमनकारी थे। 'एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में क़ुरान' लेकर वे आये थे। विकृत तथ्यों और मनगढ़ंत कहानियों के साथ वे मध्ययुग की चर्चा करते हैं और इस तरह बहुत छोटी उम्र में ही वे बच्चों के दिमाग़ों में पूर्वाग्रह भर देते हैं। उनके अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि उनके शासन काल में हज़ारों की संख्या में मंदिरों का विध्वंस करना उनका मुख्य काम था और धार्मिक उत्पीड़न मुख्य मसला था। उनके आख्यान में बाबरी मस्जिद का ख़ास महत्त्व है। वे दावा करते हैं कि रामजन्मभूमि को मुक्त कराने के लिए 78 लड़ाइयां लड़ी गयीं जिनमें साढ़े तीन लाख लोग मारे गये। जबकि सच्चाई यह है कि हिंदू और मुग़ल राजाओं के यहां हिंदू और मुसलमान दोनों नौकरी करते थे। दोनों की सेनाएं मिश्रित होती थीं। हिंदू शासकों में और मुस्लिम शासकों में भी आपस में लड़ाइयां होती थीं जिनकी पूरी तरह उपेक्षा की गयी है। मुग़लों के समय जो महान सांस्कृतिक प्रस्फुटन हुआ और मध्ययुग में जिस मिली-जुली संस्कृति का उभार हुआ उनके बारे में एक भी शब्द नहीं कहा गया है। इसके विपरीत ताजमहल जैसे स्मारकों के बारे में उनके द्वारा यह दावा किया जाता है कि मूल रूप में वे मंदिर थे जिन्हें मुसलमानों ने छल-कपट से अपना बना लिया।

इसी प्रवाह में वे यह भी दावा करते हैं कि हिंदू धर्म मूलतः एक सहिष्णु धर्म है, जिसमें कई देवता हैं और पूजा की कई पद्धतियां हैं। जबकि इस्लाम और ईसाई धर्म एक पुस्तक पर आधारित सामी धर्म हैं और जो संकीर्णतावादी और हिंसक हैं।

पृथ्वीराज चौहान, शिवाजी, महाराणा प्रताप 'राष्ट्रीय नायक' हैं और अकबर, औरंगज़ेब और अंग्रेज़ों से लड़ने वाला टीपू सुल्तान उनके इतिहास में खलनायक हैं।

इस शासन में इतिहास में लड़ी गयी लड़ाइयों के नतीजे भी बदल दिये गये हैं : इस प्रकार इनकी हाल में लिखी गयी पाठ्यपुस्तक हमें बताती है कि हल्दी घाटी की लड़ाई में अकबर पराजित हुआ था!

आधुनिक काल के लिए लिखी गयी उनकी पुस्तकों में वे चिरपरिचित ढंग से हेडगेवार, गोलवलकर और सावरकर को देशभक्त और स्वतंत्रता सेनानी के रूप में महिमामंडित करते हैं और गांधी, नेहरू और जिन्ना को विभाजन के लिए अकेले ज़िम्मेदार ठहराते हुए खलनायक के रूप में पेश करते हैं। गांधी, सुभाष बोस, आंबेडकर और यहां तक कि भगत सिंह को भी वे अपने साथ समायोजित कर रहे हैं और अब वे उन्हें आरएसएस का अनुमोदन करता हुआ दिखाने की भी कोशिश करते हैं जो कि पूरी तरह झूठ है। वे उपनिवेशवाद की आलोचना नहीं करते। आरएसएस और उसकी भूमिका को आज़ादी की लड़ाई के महत्त्वपूर्ण सालों में महिमामंडित करते हैं जबकि तथ्य यह है कि आज़ादी के आंदोलन में उनकी कोई भूमिका नहीं थी।

आर्यों को भारत का मूलवासी बताने और आर्य सभ्यता को भारतीय सभ्यता का आधार बताने, हिंदुओं को मूल भारतीय और बाक़ी सब को विदेशी बताने, मध्यकाल के सभी स्मारकों के नीचे मंदिर बताने और सबसे पुरानी आर्य सभ्यता के रूप में सरस्वती सभ्यता के अस्तित्व को मानने के अपने सिद्धांतों के समर्थन में वे पुरातत्व और उत्खनन की रिपोर्टें तोड़-मरोड़कर पेश करते हैं।

यहां यह कहना अनुचित न होगा कि बाबरी मस्जिद के बनने से पहले उसके नीचे किसी मंदिर की मौजूदगी का कोई विश्वनीय पुरातात्विक साक्ष्य नहीं मिला है। जैसाकि हमारे प्रख्यात धर्मनिरपेक्ष इतिहासकारों ने साबित किया है कि जो अवशेष प्राप्त हुए हैं वे मंदिर के नहीं हैं। इसके अलावा मस्जिद बनाने के लिए कुछ भी तोड़ा नहीं गया है। यहां तक कि उस क्षेत्र में उस दौर में रामभक्ति का चलन भी नहीं था। तुलसीदास ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। दरअसल, अयोध्या बौद्ध धर्म, सूफ़ी मत, जैन धर्म और अन्य कई मत-मतांतरों सहित बहु धार्मिक परंपरा का शहर रहा है। और तब, कोई सदियों बाद यह दावा कैसे कर सकता है कि भगवान का जन्म ठीक इसी स्थान पर हुआ था, जबकि उनका अस्तित्व केवल मिथकीय है; और अंत में, अगर यह मान भी लिया जाये कि यह सब सत्य था, तो क्या कोई, सदियों बाद 'चोट खायी भावनाओं' के नाम पर आबादी के एक हिस्से से बदला लेने का आह्वान कर सकता है? ये इतिहास के सवाल हैं और इनका संबंध वर्तमान से है। आरएसएस और हिंदुत्ववादी संगठन इनका एक तरीक़े से जवाब देते हैं और धर्मनिरपेक्ष समाधान इसका बिल्कुल उलटा होता है।

उनके स्कूलों में प्रयुक्त होने वाली इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का प्रत्येक सर्वेक्षण यही दर्शाता है कि संस्कृति के बारे में बताने के नाम पर युवा पीढ़ी के मन में कट्टरता और धर्मोन्माद को प्रोत्साहित करने के मक़सद से उन पुस्तकों को तैयार किया गया हैं। वैज्ञानिक स्वभाव और विवेक को अंधविश्वास, अंधराष्ट्रवाद और संकीर्णता से प्रतिस्थापित किया गया है। वे जाति व्यवस्था का पक्ष लेते हैं, उनमें दलितों के विरुद्ध पूर्वाग्रह भरा हुआ है और स्त्रियों के बारे में उनकी सोच पिछड़ी होती है। इनकी किताबों में भारत के नक्शे में हमेशा 'अखंड भारत' दिखाया जाता है। वे भारत का उल्लेख 'हिंदूस्थान' के रूप में करते हैं। भगवा ध्वज उनकी दृष्टि में पूज्य है हालांकि अब उन्होंने राष्ट्रीय ध्वज को स्वीकार कर लिया है। भारतीय अस्मिता की जो एकरूपीय और हिंदू प्रधान तस्वीर वे पेश करते हैं, वह ग़लत है और संस्कृति, धर्म और रोज़मर्रा के जीवन में जिस समृद्ध विविधता का अनुभव लोग करते हैं, उसके विपरीत है। उनका यह ज़हर सैकेंडरी स्तर की राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में भी समाविष्ट है। राजनीति विज्ञान की पुस्तकों में दीनदयाल उपाध्याय के विचारों को जोड़ा गया है, लेकिन गांधी के विचारों को बहुत मुश्किल से मामूली जगह दी गयी है।

उनकी किताबों में निकृष्टतम है, नैतिक विज्ञान' के पाठ और बच्चों के दिमाग़ों में 'संस्कार' भरने की कोशिश : संस्कार के नाम पर वे घृणित और अविश्वसनीय कहानियों के द्वारा अंधराष्ट्रवाद, अनुदारता, अल्पसंख्यकों के प्रति पूर्वाग्रह और वैज्ञानिक स्वभाव और विवेक का खंडन समाविष्ट करते हैं। औरतों के बारे में उनके प्रतिगामी विचार हर कहीं साफ़ दिखायी देते हैं। हम उनसे अब भलीभांति परिचित हैं। उनकी किसी भी पुस्तक को उठा लीजिए वे हर कहीं मौजूद हैं।

जब भाजपा केंद्र में और जिन राज्यों में सत्ता में होती है तब एनसीइआरटी की पाठ्यपुस्तकों, राज्य के स्कूल बोर्डों और सीबीएसइ की पाठ्यचर्याओं में उनका यह दृष्टिकोण और विश्वास कि भारत मूलतः हिंदुओं की भूमि है और उन्हें अपने लिए इसे वापस हासिल करना है, की मज़बूत प्रतिध्वनि सुनी जा सकती है। हज़ारों की संख्या में चलने वाले उनके अपने स्कूल और बहुत से सामाजिक संगठन जो एक समानांतर व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके ज़रिये वे बच्चों के दिमाग़ों में पक्के तौर पर यह दृष्टिकोण भर देते हैं। दुर्भाग्य से, कोई राजनीतिक पार्टी इनके बारे में सवाल नहीं उठाती। इसीलिए धर्मनिरपेक्ष शिक्षा के लिए संघर्ष हमेशा कमज़ोर रहा है। यहां तक कि जब भी सार्वभौमिक और सार्वजनिक शिक्षा और पड़ोसी स्कूलों के साथ एक समान, न्यायसंगत स्कूल प्रणाली की लोकतांत्रिक मांग उठायी गयी, तब भी स्कूल परिदृश्य में आरएसएस की मौजूदगी को चुनौती नहीं दी गयी।

आरएसएस का दृष्टिकोण उच्च शिक्षा में भी मौजूद है और कुछ विश्वविद्यालयों को छोड़कर देश भर

में कालेज के विद्यार्थियों द्वारा इस्तेमाल होने वाली पाठ्यपुस्तकों, 'गाइडों' और 'कुंजियों' पर इतिहास के सांप्रदायिक परिप्रेक्ष्य का असर दिखायी देता है। इसके अधिकांश को जनमाध्यम और सुदृढ़ करते हैं। आरएसएस से संबद्ध लोग इंटरनेट पर बहुत विस्तार और मज़बूती के साथ अपना अभियान चलाते हैं। यह बहुत विशाल उद्योग है जो किसी भी घटना या समकालीन मुद्दे को 'मुसलमानों के हाथों हिंदुओं के साथ हुए शताब्दियों के अन्याय' से जोड़ देता है। धर्म को छोड़कर पहचान के सभी रूपों को वे दृढ़तापूर्वक पीछे धकेल देते हैं और जिनका कोई महत्त्व नहीं रह जाता।

और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि अब आरएसएस के दृष्टिकोण को देशभक्ति, राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य की सुरक्षा के लिए अपरिहार्य के रूप में पेश किया जा रहा है। राष्ट्र-राज्य के हितों को लोगों के हितों से उत्कृष्ट बताते हुए उन्हें लोगों के हितों से अलगा दिया गया है। लोगों को ऐसे उद्देश्य के लिए त्याग करने के लिए कहा जा रहा है जो उनको तकलीफ़ ही पहुंचा सकते हैं। बाबरी मस्जिद के न्यायिक फ़ैसले ने झूठे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यों के आधार पर हुए इस सैन्यीकरण की ताक़त को साबित कर दिया है—हिंदुओं को मंदिर बनाने की अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि वे यक़ीन करते हैं कि राम का जन्म इसी स्थान पर हुआ था। अफ़ज़ल गुरु के अपराधी होने पर सामूहिक विश्वास को संतुष्ट करने के लिए उसे फांसी पर लटकाया जाना ज़रूरी है। भीड़ द्वारा हत्या संभव है और इसके लिए किसी को दंडित नहीं किया जाता क्योंकि एक संपूर्ण विचारधारात्मक मशीनरी उन्हें कहती है कि गाय पवित्र है और मुसलमान उनकी पवित्र गाय को मारते हैं। और इसी तरह बहुत कुछ।

यह बहुत डरावना है कि वे यह सब करके साफ़ बच निकलते हैं। वे 'हाशिये' पर नहीं हैं जैसा कि पहले कहा जाता था। उनका दृष्टिकोण पूरी तरह से मुख्यधारा में है। राजनीतिक दलों को आत्मविश्लेषण करने की ज़रूरत है कि जनता के दिमाग़ों के लिए संघर्ष इतना ध्रुवीकृत कैसे हो गया है? यह सड़कों पर कैसे आ गया है? इस पर आरएसएस का वर्चस्व कैसे हो गया है? हमारी राजनीति और सामाजिक दायरे में फ़ासीवाद कैसे व्याप्त हो गया है? दुर्भाग्य से अब विचारों से विचारों यानी इतिहास की आरएसएस की कहानी से इतिहास के लोकतांत्रिक संस्करण के बीच की लड़ाई के लिए बहुत देरी हो चुकी है। वे कौन हैं और उनका वास्तविक इतिहास और पहचान क्या है, के एक सही संस्करण का सरल मामला नहीं है। विश्वविद्यालयों और हमारे अपने दायरे को छोड़कर इसकी सुरक्षा की जानी चाहिए और आगे बढ़ाया जाना चाहिए। व्यापक क्षेत्र में तो जीवनयापन और इस शासन व्यवस्था द्वारा दी जा रही तकलीफ़ों के मसले ऐसे हैं जिनकी वजह से लोग उन्हें ठुकरा सकते हैं। यह त्रासदी है, लेकिन यही एकमात्र आशा है।

मो. 9868338681
अनु. : जवरीमल्ल पारख
मो. 9810606751

मोदी और चौथे खंभे का विध्वंस

टी.के. राजलक्ष्मी

वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी ने फ़ैसला किया था कि उसके मुख्य प्रचारक नरेंद्र मोदी होंगे। उनकी प्रधानमंत्री पद की उम्मीदवारी को लेकर भी पार्टी में ज़्यादातर सहमति थी, हालांकि यह अघोषित था। वे आक्रामक हिंदुत्व की लहर और जनता के असंतोष पर सवार स्टार प्रचारक थे। यह ऐसा अभियान था जैसा हाल के चुनावों में सुना नहीं गया था। चिल्लम-पों और हमलावरी का कोई जवाब नहीं था। लेकिन विपक्ष को बहुत पीछे छोड़ते हुए सारी प्रक्रिया को जिसने जीत दिलायी वह था मीडिया, सोशल मीडिया और ख़ासतौर पर टेलीविज़न का इस्तेमाल, जिसने भाजपा और उसके प्रचार को कहीं ज़्यादा दिखाया। क्योंकि, जहां तक दृश्य मीडिया का संबंध है, वह (भाजपा का प्रचार) ज़्यादा ध्यान खींचने वाला और टीआरपी देने वाला था। भाजपा के आइटी सेल ने विपक्ष और ख़ासतौर पर कांग्रेस अध्यक्ष पर हमला करने और उनकी खिल्ली उड़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। चुनाव प्रचार की दौड़ में, मोदी की तुलना में राहुल गांधी कहीं नहीं ठहर रहे थे। हिंदुत्व ब्रिगेड के पसंदीदा विषय थे -- हिंदुत्व, अल्पसंख्यकों पर हमला और पाकिस्तान। 2004 में भी भाजपा ने प्रमोद महाजन के कुशल प्रबंधन में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के रिकार्ड किये संदेशों के ज़रिये 'इंडिया शाइनिंग' का व्यापक प्रचार किया था; हालांकि उस धुंआधार प्रचार के बावजूद भाजपा हार गयी थी। उस वक़्त भी मीडिया भाजपा पर लट्टू था और ऐसा समझा जा रहा था कि एन.डी.ए को रोका नहीं जा सकेगा।

2014 में सत्तारूढ़ कांग्रेस और यूपीए के ख़िलाफ़ 'अच्छे दिन आयेंगे' और वंशवाद की राजनीति को दमदार तरीक़े से इस्तेमाल किया गया। ख़ासकर गांधी परिवार के उपहास को। उस वक़्त मीडिया ने अपनी कवरेज में संतुलन तो रखा लेकिन मोदी की रैलियां बड़ा आकर्षण बन गयी थीं, इसलिए उन्हें और उनकी पार्टी को ज़्यादा कवरेज मिलना अपरिहार्य हो गया था। उनकी मार्केटिंग टीम ने प्रिंट, टेलीविज़न और सोशल मीडिया के फ़ेसबुक, यूट्यूब और ट्विटर जैसे मंचों पर धुआंधार प्रचार की मुहिम चला दी। मोदी ने खुद को ट्विटर पर लांच किया और अपने चालीस लाख अनुयायी होने का दावा किया। यह मार्केटिंग की रणनीति थी और उद्योग समर्थित थी।

भाजपा ने 2014 के चुनाव प्रचार पर 714.28 करोड़ रुपये ख़र्च किये। कांग्रेस ने जितना ख़र्च किया यह उससे 200 करोड़ ज़्यादा था। अकेले मीडिया के विज्ञापनों पर 304.5 करोड़ ख़र्च किये गये। तक़रीबन 78 करोड़ रुपये विमान किराये पर लेने में ख़र्च किये गये। यह सबसे ज़्यादा महंगा चुनाव प्रचार था। चुनाव आयोग के समक्ष घोषित चुनाव ख़र्च में अघोषित ख़र्चे भी थे।

2019 में राष्ट्रीय सुरक्षा की कहानी ऐसी थी, जिस पर कोई सवाल नहीं कर सका। नोटबंदी और जी.एस.टी. को लागू करने की अड़चनें, दो ऐसी आपदाएं थीं जिन्होंने समाज के हर वर्ग को नाखुश कर रखा था। उम्मीद की जा रही थी कि 2019 के चुनाव में इसके परिणाम सामने आयेंगे। राजस्थान, मध्य

प्रदेश और छत्तीसगढ़ के विधानसभा चुनाव परिणाम इस बात के संकेत थे कि 2019 के चुनावों को संभालने में भाजपा को दिक़्क़त पेश आयेगी। लेकिन उसी के बाद पुलवामा का हमला और बालाकोट में जवाबी हमला सामने आ गया और विपक्ष मुश्किल में पड़ गया। राष्ट्रीय सुरक्षा का आख्यान मज़बूत हो गया। किसी को यह सवाल करने की इजाज़त नहीं थी कि सैनिकों की जान लेने वाला पुलवामा का हमला क्यों और कैसे हुआ। जिन पैनलिस्ट्स ने यह पूछने का साहस किया उन्हें कुछ सरकार समर्थक चैनलों पर चुप करा दिया गया। ख़ासतौर पर तीन चैनल—एक टाइम्स समूह द्वारा संचालित, दूसरा सुभाष चंद्रा के स्वामित्व वाला चैनल 'ज़ी टी वी' और तीसरा, 'रिपब्लिक टी वी', जिसके मालिक पत्रकार अर्णब गोस्वामी और कर्नाटक से भाजपा के राज्यसभा सांसद राजीव चंद्रशेखर हैं। सुभाष चंद्रा भाजपा समर्थित राज्यसभा सदस्य हैं और एस्सेल ग्रुप के चेयरमैन हैं। 'रिपब्लिक टी वी' और 'ज़ी' मिडिया समूह ख़ासतौर से सरकार के भोंपू जैसे बन गये और दक्षिणपंथी राष्ट्रवाद के अपने भड़कीले समर्थन के लिए उनका हवाला 'राष्ट्रवादी मीडिया' के तौर पर भी दिया जाने लगा है। 'ओडीशा टी वी' भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष और प्रवक्ता विजयंत जय पांडा की पत्नी का है। असम में राज्य सरकार के मंत्री, हिमंत बिस्वा सरमा की पत्नी टी वी चैनल 'न्यूज़लाइव' की मालकिन हैं।

मार्च 2014 में 'नेटवर्क 18' को रिलायंस समूह ने ले लिया। 'नेटवर्क 18 मीडिया एंड इन्वेस्टमेंट लिमिटेड' की मालिक है मुकेश अंबानी की रिलायंस इंडस्ट्रीज लिमिटेड। इसमें 'सीएनएन-न्यूज़ 18' (जो पहले सीएनएन-आइबीएन कहलाती थी), 'सीएनएन-टीवी 18', 'सीएनएन आवाज़', 'कलर्स', 'एमटीवी' और 'होमशॉप एंटरटेनमेंट' शामिल हैं। 'नेटवर्क 18', इसकी वेबसाइट के मुताबिक़, भारत की सबसे बड़ी मीडिया कंपनियों में से है, जिसके 53 चैनल हैं। इनमें से 20 न्यूज़ चैनल और बाक़ी 33 एंटरटेनमेंट चैनल हैं। जैसा कि एक मीडिया टिप्पणीकार ने इशारा किया, इस तरह देश की सबसे बड़ी मीडिया कंपनी मीडिया पर कब्ज़ा कर रही है। तो हमारे यहां एक बहुत बड़ा कारपोरेट आपरेटर है जो मीडिया के बड़े हिस्से पर भी नियंत्रण कर रहा है। ख़ासतौर पर टेलीविज़न पर। रेडियो पर राज्य के नियंत्रण और मीडिया के बड़े हिस्से पर कारपोरेट मीडिया के नियंत्रण ने ख़बरों के मिजाज़ पर भी असर डाला है। यह (मीडिया) अब प्रोपेगेंडा बन गया है और वह भी एक ख़ास पार्टी का जो प्रिंट, ऑनलाइन और टेलीविज़न सहित समूचे मीडिया पर विज्ञापनों की बौछार कर सकती है। और अगर सरकार के साथ लेन-देन का रिश्ता है तो मीडिया की, ख़ासतौर पर जिसमें कारपोरेट शामिल है, तटस्थता पर गहरे सवाल खड़े होते हैं। तभी सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेशीकरण या राष्ट्रीय संपत्ति का निजीकरण मुख्य समाचारों की तरह सामने नहीं आता। न इस पर कोई प्राइम टाइम डिबेट होती है कि शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में सरकारी सहायता (लोक निधि) की ज़रूरत क्यों है।

मीडिया ऑनरशिप मॉनीटर शोध परियोजना के मुताबिक़ वितरण नेटवर्क्स के लाइसेंसों पर पाबंदियों के बावजूद, जहां डाइरेक्ट टु होम (डीटीएच) व्यवसाय में प्रसारक के या केबल नेटवर्क कंपनी के साझे पर 20 फ़ीसद की सीमा निर्धारित है, वहां इन पाबंदियों को लागू नहीं किया गया। यह शोध 'रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स' और दिल्ली स्थित डिजिटल मीडिया कंपनी 'डाटा लीड्स' ने किया। 'ज़ी मीडिया' के स्वामित्व वाले एस्सेल समूह के मामले में उसका नियंत्रण प्रसारण मीडिया और वितरण नेटवर्क दोनों पर रहा। जैसे कि डिश टी.वी. और सिटी केबल। रिपोर्ट के मुताबिक़ भारत विश्व के सबसे बड़े मीडिया बाज़ारों में से एक है। जबकि मीडिया के स्वामित्व का केंद्रित होना (सिमट कर रह जाना) यह दर्शाता है कि मुट्ठी भर लोगों के पास भारतीय मीडिया का मालिकाना और नियंत्रण है, जिससे मीडिया के बहुलतावादी परिदृश्य का बोध नहीं होता।

मीडिया के स्वामित्व के चंद लोगों के हाथ में होने से, विशेषकर, ख़ास राजनीतिक जुड़ाव वाले

मालिकाने के मामलों ने उस संतुलन को डगमगा दिया है जो कुछ हद तक बना हुआ था। मुख्यधारा का मीडिया आज़ादी के बाद के कुछ दशकों तक कारपोरेट के प्रभाव से खुद को आज़ाद किये रहा। शायद इसलिए क्योंकि खुद कारपोरेट क्षेत्र भी नया-नवेला था। लेकिन टेलीविज़न के आगमन के साथ मीडिया ने हथियार डालने शुरू कर दिये। टेलीविज़न की पहुंच प्रिंट के मुक़ाबले ज़्यादा थी। नवें दशक के शुरू से मध्य तक केवल कुछ ही ख़बरिया चैनल थे। इसके तुरंत बाद स्थिति तेज़ी से बदली। 'मीडिया ऑनरशिप मॉनीटर' ने भारत में सबसे ज़्यादा दर्शक हिस्सेदारी वाले 58 मीडिया आउटलेट्स का विश्लेषण किया और पाया कि प्रिंट मीडिया भी कुछ जगहों पर ही सिमटा हुआ है। हिंदी भाषा के राष्ट्रीय बाज़ार में *दैनिक जागरण, हिंदुस्तान, अमर उजाला* और *दैनिक भास्कर,* इन चारों के कब्ज़े में चार में से तीन पाठक हैं। हर भाषा में आधा या आधे से ज़्यादा पाठकों का हिस्सा दो शीर्ष अख़बारों की मुट्ठी में है। ज़्यादातर मीडिया कंपनियों का स्वामित्व बड़े मीडिया समूहों के पास है, जिनका निवेश मीडिया के अलावा दूसरे उद्योगों में भी है। मीडिया के भीतर ही नहीं बल्कि इस उद्योग के बाहर दूसरे हिस्सों में इस क्रास ऑनरशिप से बहुत ही वाजिब सवाल खड़े हुए हैं कि इस तरह के मालिकाने के बाद मीडिया कैसे स्वतंत्र और निष्पक्ष रह सकता है। जहां तक मीडिया की आज़ादी का सवाल है, निष्पक्ष व्यवहार सुनिश्चित करने वाला कोई नियम नहीं है। इसलिए मीडिया भी 'भाड़े पर रखो और निकालो' की आसान नीति तथा ठेका प्रथा के साथ एक कंपनी की तरह चलाया जा रहा है। इसने मीडियाकर्मी को किसी फ़ैक्ट्री कर्मचारी में तब्दील कर दिया है। 'मीडियाकर्मी' पदनाम नवें दशक में शुरू हुआ और अगले दशक तक ठीक-ठाक चला। जल्दी ही सत्तारूढ़ दल के लिए परोक्ष प्रोपेगंडा प्रत्यक्ष प्रोपेगंडा में तब्दील हो गया। अख़बारी रपटें (*बिजनेस टुडे* : जबर्दस्त ब्रांडिंग अभियान जिसने प्रधानमंत्री मोदी को विजेता बनाया) बताती हैं कि उस वक़्त जब टी.वी., प्रिंट और रेडियो का इस्तेमाल हुआ, भाजपा किस तरह पूरे सोशल मीडिया पर छायी हुई थी। चुनावी रणनीति और मोदी की उपलब्धियों की ह्वाट्सऐप पर बौछार हो गयी थी। यहां तक कि स्कूल और कॉलेजों के एलुमनी ह्वाट्सऐप समूहों और ट्विटर पर भी। भाजपा की सरकार बनने के बाद ये सब बंद हो गया। राहुल गांधी को 'चौकीदार चोर है' टिप्पणी के लिए जहां चुनाव आयोग ने फटकार लगायी और अदालत में मानहानि के आरोपों का सामना करना पड़ा, वहीं भाजपा को उसके नेताओं की सांप्रदायिक शब्दावली के बावजूद बहुत आसान तरीक़े से बचा लिया गया। मोदी पर बनी फ़िल्म की, जिसमें विवेक ओबेरॉय ने मोदी की भूमिका निभायी थी, चुनाव आयोग ने भर्त्सना नहीं की। यहां तक कि मीडिया में भी मुश्किल से कोई आलोचनात्मक टिप्पणी हुई, जबकि कुछ फ़िल्म आलोचकों ने इसे 'संतचरित' (हेजियोग्राफ़ी) कहा था। इस फ़िल्म का ट्रेलर 2019 के चुनाव से दो महीने पहले मार्च में जारी हुआ। चूंकि भाजपा के रणनीतिकार पहले से जानते थे कि फ़िल्म के रिलीज़ होने से चुनावी आचार संहिता का उल्लंघन होगा, इसलिए 19 मई को मतदान का आख़िरी चरण पूरा होने के बाद 24 मई को फ़िल्म रिलीज़ की गयी। लेकिन प्रधानमंत्री और भाजपा के लिए प्रोपेगंडा का मक़सद हासिल कर लिया गया। इस प्रचार परियोजना में बॉलीवुड ने भी उसी तरह मदद की जैसे लेनी राइफ़ेंसटाल (जर्मन फ़िल्म निर्देशक) ने हिटलर की मदद की थी। एक आलोचक ने यहां तक लिखा कि मोदी ओबेरॉय से बेहतर अभिनेता हैं।

जैसे ही भाजपा ने सत्ता संभाली, जेएनयू जैसे विश्वविद्यालयों को वैचारिक रूप से निशाना बनाने सहित समूचा सांप्रदायिक अलंकरण प्रभावी तरीक़े से इस्तेमाल किया जाने लगा। कई राज्यों में गो-हत्या से संबंधित क़ानून और यहां तक कि गो-मांस खाना दंडनीय बना दिया गया, जबकि अल्पसंख्यकों की भीड़-हत्या में इज़ाफ़ा हो गया। जिसने भी नफ़रत फैलाने के ख़िलाफ़ बोला, या कश्मीर पर या अल्पसंख्यकों के अधिकारों को लेकर अलग राय व्यक्त की, उस पर हमला होने लगा और भर्त्सना की

जाने लगी। विपक्ष की खिल्ली उड़ाना इस हद तक बढ़ गया कि कांग्रेस जैसे दलों ने टी वी चैनलों पर अपने प्रवक्ताओं को भेजना बंद कर दिया। ताज़ा चलन टी वी चैनलों पर थोड़ा अकादमिक पृष्ठभूमि वाले राजनीतिक विश्लेषकों या कुछ पत्रकारों को भेजने का हो गया है, जो बुनियादी रूप से किसी एक या दूसरी पार्टी से वैचारिक तौर पर गहरे जुड़े हों। भाजपा ने भी इस पद्धति में महारत हासिल की है।

असहिष्णुता की इंतहा तब सामने आयी जब हिंदू राष्ट्र के निर्माण के लिए समर्पित एक संगठन द्वारा सितंबर 2017 में बंगलौर की पत्रकार गौरी लंकेश की उनके घर के सामने हत्या कर दी गयी। कर्नाटक पुलिस के विशेष जांच दल ने पाया कि हत्यारा हिंदू दक्षिणपंथी संगठन 'श्रीराम सेना' का सदस्य है। लंकेश कर्नाटक में दक्षिणपंथी समूहों की कटु आलोचक रहीं। ख़ासतौर पर 'श्रीराम सेना' जैसे संगठनों की, जो मंगलौर के पबों में युवकों और युवतियों पर हमला करने के लिए कुख्यात हुए थे।

देशद्रोह और आपराधिक मानहानि के आरोपों के कुछ मामलों में पत्रकारों को गिरफ़्तार किये जाने के अलावा भाजपा सरकार अब भयभीत करने के ज़्यादा सीधे और चतुराईपूर्ण तरीक़े अपना रही है। जिस दिन सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने अयोध्या विवाद पर फ़ैसला सुनाया उस दिन सभी निजी सैटेलाइट चैनलों और सभी डीटीएच व केबल आपरेटरों को एडवाइज़री जारी की गयी कि फ़ैसले के मद्देनज़र केबल टेलीविज़न नेटवर्क (नियमन) क़ानून, 1995 की कार्यक्रम संहिता का पालन करें। एडवाइज़री में कहा गया था कि 'यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि इलेक्ट्रानिक मीडिया पर दिखायी जाने वाली बहसें/विचार-विमर्श/दृश्य (विजुअल्स) विभाजनकारी या राष्ट्रविरोधी भावनाएं भड़काने वाले न हों। किसी भी कार्यक्रम में ऐसी कोई बात न हो जिसमें, धर्मों या समुदायों पर प्रहार हो या धार्मिक समूहों के प्रति अवमाननाकारी दृश्य या शब्द हों या जो राष्ट्रविरोधी रवैये को बढ़ावा देती हो, जिसमें कोई अश्लील, अपमानजनक, झूठी और भड़काऊ व्यंग्योक्ति और अर्द्धसत्य हो या जो हिंसा को बढ़ावा देने जैसी या भड़काने वाली हो या जिसमें क़ानून और व्यवस्था बनाये रखने के विरुद्ध कोई बात हो या राष्ट्रविरोधी अभिवृत्तियों को बढ़ावा देती हो, जिसमें ऐसा कुछ हो जो अदालत की अवमानना के समान हो, जिसमें ऐसा कुछ हो जो राष्ट्र की अखंडता को प्रभावित करता हो और निजी तौर पर किसी व्यक्ति या ख़ास समूहों, देश के सामाजिक, लोक और नैतिक जीवन के किसी हिस्से की आलोचना करता हो, विद्वेषकारी हो और झूठी निंदा करता हो।' इस एडवाइज़री की प्रतियां न्यूज़ ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष रजत शर्मा और इंडियन ब्राडकास्टिंग फ़ाउंडेशन के एन.पी. सिंह को भेजी गयी थीं।

2019 की चुनावी दौड़ में यह सामान्य समझ थी कि नरेंद्र मोदी सहित भाजपा नेताओं ने और उनकी पार्टी के सिद्धांतकारों ने चुनावी सभाओं में किस इरादे से मुजफ़्फ़रनगर की घटनाओं का उल्लेख किया और पुलवामा में मारे गये सैनिकों की तस्वीरों और संदर्भों का किस तरह इस्तेमाल किया। यह सब मीडिया ने बड़ी कर्मठता से कवर किया और उस दौरान कवरेज के नियमों के सिलसिले में न तो सरकार ने और न चुनाव आयोग ने कोई एडवाइज़री जारी की। अयोध्या फ़ैसले के बाद टेलीविज़न की बहसों में टी वी एंकर यह कहते हुए बहुत कठिन परिश्रम कर रहे थे कि 'यह सर्वोत्तम हल है और कोर्ट का आदेश बहुत संतुलित' है। उन्होंने बार-बार इस सिद्धांत की चर्चा की कि 'यह सबके लिए स्वीकार्य' है। 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' जैसा मामला। फिर नरेंद्र मोदी के 'मन की बात' के ताज़ा कार्यक्रम में, प्राइवेट सहित सभी चैनलों ने (जो अन्यथा किसी ख़बर का प्रसारण नहीं कर सकते) उनके भाषण का प्रसारण किया। उसमें इस बात पर ज़ोर था कि कैसे पूरे देश ने इस फ़ैसले को स्वीकार किया।

'नमो टी वी' की शुरुआत किये जाने में विसंगति की चुनाव आयोग से की गयी शिकायतों की अनदेखी कर दी गयी। चुनाव ख़त्म होते ही 'नमो टी वी' दृश्य से ग़ायब हो गया। 20 अक्तूबर को देवबंद में भाजपा के नगर अध्यक्ष गजराज राणा ने हिंदुओं से धनतेरस पर बर्तनों की जगह तलवार ख़रीदने को

कहा, क्योंकि उन्हें भरोसा था कि अयोध्या पर फ़ैसले के सिलसिले में हालात बिगड़ सकते हैं। उन्होंने कहा था, उन्हें पूरा विश्वास है कि यह (फ़ैसला) राम मंदिर के पक्ष में होगा (आइएएनएस की रिपोर्ट), लेकिन इससे माहौल बिगड़ सकता है। भाजपा ने, बहुत आसानी से ख़ुद को इस बयान से अलग कर लिया। चुनाव आयोग ने उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के बेहद भड़काऊ बयान का संज्ञान बहुत ही विनीत भाव से लिया। आदित्यनाथ ने अप्रैल 2019 में चुनाव प्रचार के दौरान कहा था कि कांग्रेस और विपक्ष को 'अली' पर जबकि भाजपा को 'बजरंग बली' पर भरोसा है। उनके चुनावी रैलियों में बोलने पर केवल 72 घंटे का प्रतिबंध लगा।

मालेगांव विस्फोट की आरोपी प्रज्ञा ठाकुर को 2019 के लोकसभा चुनाव में टिकट दे दिया गया। मालेगांव विस्फोट में छह लोग मारे गये थे और कई घायल हुए थे। भाजपा सांसद प्रज्ञा ठाकुर ने हाल ही में लोकसभा में नाथूराम गोडसे को शहीद क़रार दिया। विपक्ष के दबाव के बाद उन्हें माफ़ी मांगनी पड़ी। हत्या और आपराधिक षडयंत्र के मामले में उन पर मुक़दमा लंबित है। अल्पसंख्यकों के लिए 'दीमक' जैसे अपमानसूचक शब्द का इस्तेमाल भाजपा नेतृत्व के सर्वोच्च पद से किया गया।

भाजपा सरकार ने लचीले और ग़ैर-लचीले मीडिया में साफ़-साफ़ बंटवारा किया है। लोकसभा चुनाव के बाद भाजपा मुख्यालय में हुई पार्टी की पहली पत्रकार वार्ता में मोदी ने मीडिया के किसी भी सवाल का जवाब नहीं दिया। प्रेस कांफ्रेंस को उस वक़्त के भाजपा प्रमुख अमित शाह ने संभाला। किसी भी सूरत में बहुत ज़्यादा सवाल नहीं लिये गये। उन्होंने (मोदी ने) जो एकमात्र इंटरव्यू दिया वह जनवरी 2019 में एएनआइ टी वी चैनल को दिया गया था, जिसके मौजूदा संपादक भाजपा से खुली सहानुभूति रखते हैं। दूसरा इंटरव्यू अप्रैल 2019 में अभिनेता अक्षय कुमार को दिया गया था, जिसमें उन्होंने आमों के प्रति अपने प्रेम की चर्चा की। यह भारतीय करदाताओं के ख़र्चे पर होने वाली जनसंपर्क (पीआर) की क़वायद थी।

सब कुछ स्पष्ट हो गया था। जिन्होंने सरकार विरोधी ख़बरें या संपादकीय लिखे उन्हें या तो सरकारी विज्ञापनों से पूरी तरह महरूम कर दिया गया या सरकारी विज्ञापनों के ठंडे बस्ते में जाना पड़ा। कुछ अन्य के ख़िलाफ़ प्रवर्तन निदेशालय के मामले बने और उन पर छापे पड़े। अगस्त में एन.डी.टी.वी. के संस्थापक प्रणॉय रॉय और उनकी पत्नी को धनशोधन के मामले में देश छोड़ने से रोका गया। जबकि दोनों ने भारत लौटने के वापसी टिकट भी दिखाये थे। राय दंपति का मानना है कि उनके ख़िलाफ़ भ्रष्टाचार का यह क़तई बेबुनियाद मामला है। तीन समाचार प्रकाशनों के सरकार से मिलने वाले विज्ञापन राजस्व में ज़बरदस्त गिरावट देखी गयी। उनमें से एक अंग्रेज़ी अख़बार, *हिंदू* ने रफ़ाल-दसॉल्ट समझौते पर खोजपूर्ण रपटों की सीरीज़ चलायी थी। सरकार ने इन सारे आरोपों को नकार दिया। इधर एक चलन उभरकर सामने आ रहा है। मीडिया में इसे लेकर पूरी तरह सन्नाटा है। मार्च में सौ से ज़्यादा अर्थशास्त्रियों और समाजविज्ञानियों ने पत्र लिखा कि सरकारी आंकड़ों को सामने लाने में कैसे टालमटोल की जा रही है और उन्होंने रोज़गार के आंकड़े जारी करने की मांग की। कुछ को छोड़कर ज़्यादातर मीडिया ने उस चिट्ठी की अनदेखी की। मीडिया की जो आक्रामकता पुलवामा हमले और उसके बाद हुए बालाकोट जवाबी हमले में दिखायी दी थी वह उस वक़्त पूरी तरह नदारद थी जब सरकार से विकास दर और गिरते उपभोक्ता ख़र्च के बारे में खुलासा करने का सवाल उठा।

इस तरह, अपने अकूत संसाधनों और कारपोरेट क्षेत्र से मुहैया कराये गये संसाधनों के साथ-साथ डरे हुए और जीहुज़ूरिया मीडिया के चलते, जो किसी भी सूरत में सरकार की आलोचना से परहेज़ करता है, भाजपा के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार के 'अच्छे दिन' चल रहे हैं। उदार लोकतंत्रों का एक प्रमुख लक्षण यह है वे वास्तविक नहीं, केवल दिखाऊ उदार होते हैं। उदार लोकतंत्र विकास की उपभोक्ता

संचालित व्यवस्था और पूंजीपति के सह-अस्तित्व का पूरा ध्यान रखते हैं, जिसमें अमल नहीं करने के इरादे के साथ उदार लगने वाले क़ानून भी बनाये जाते हैं। यह ऐसा तंत्र है जिसमें उदारवाद केवल उसी सीमा तक बर्दाश्त किया जाता है जहां तक कि वह यथास्थिति को चुनौती न दे या दक्षिणपंथी नीतियों द्वारा चुने गये रास्ते में कोई बाधा न खड़ी करे। यह केवल उस मुट्ठी भर संभ्रांत वर्ग के अनुकूल होता है, जो धन संचय के चक्र में उपलब्ध संसाधनों का इस्तेमाल कर अपना दबदबा बढ़ाता जाता है। दूसरे के भय को पोसने में ही भ्रष्टाचार की सफलता निहित होती है।

मो. 9818310554
अनु. : राकेश तिवारी,
मो. 9811807279

'भारत की राजनीति में भक्ति या आत्मसमर्पण या नायक पूजा दूसरे देशों की राजनीति की तुलना में बहुत बड़े स्तर पर अपनी भूमिका निभाती है। धर्म में भक्ति आत्मा की मुक्ति का मार्ग हो सकता है; लेकिन राजनीति में, भक्ति या नायक पूजा पतन का निश्चित रास्ता है और जो आख़िरकार तानाशाही पर खत्म होता है।'

--डॉ भीमराव आंबेडकर
25 नवंबर, 1949 को संविधान सभा में दिये भाषण से

आततायी मुहिम के नख-दंत-4

विवेक और वैज्ञानिक सोच पर हमला

डी. रघुनंदन

देश एक बार फिर बंटा हुआ है, हालांकि अभूतपूर्व कोरोना वायरस महामारी भारत की जनता के सामने सबसे पहली प्राथमिकता वाला मुद्दा बनकर उभर आयी है, सीएए-एनपीए-एनआरसी के मुद्दे पर हुआ तीखा ध्रुवीकरण अभी भी अधर में है और निस्संदेह, देर-सबेर वह महामारी की छाया से निकलकर दुबारा उभर आयेगा।

सीएए-एनपीए-एनआरसी के पारित और प्रस्तावित विधानों और कार्यक्रमों के ख़िलाफ़ भारत भर में अभूतपूर्व जनसंघर्ष देखने को मिले। इनके लिए 'ट्रिगर' का काम भेदभावमूलक नागरिकता संशोधन क़ानून ने किया, जिसमें इस्लाम को छोड़कर अन्य धर्मों के अवैध आप्रवासियों को नागरिकता मुहैया कराने का प्रावधान है, ऐसे आप्रवासियों को जो सिर्फ़ तीन मुस्लिम-बहुल पड़ोसी मुल्कों से आये हैं और जिनके आने का कारण, इस क़ानून के अनुसार, धार्मिक उत्पीड़न है। यह अपने-आप में तो भेदभावपूर्ण है ही, प्रस्तावित एनआरसी और एनपीआर के साथ रखकर देखने पर इसका भेदभाव विशेष रूप से प्रकट होता है। ऐसा न सिर्फ़ इसके ख़िलाफ़ विरोध-प्रदर्शन करने वालों की राय है, बल्कि अनेकानेक क़ानूनविदों, वैज्ञानिकों और विभिन्न अनुशासनों से जुड़े विद्वानों, मानवाधिकार कार्यकर्त्ताओं, अनेक दूसरे देशों और अंतरराष्ट्रीय निकायों का भी यही मानना है। सीएए-एनपीए-एनआरसी में सम्मिलित रूप से हमारे देशीय स्तर पर धार्मिक भेदभाव की शुरुआत करने और उसे भारत के शासन तथा सामाजिक ताने-बाने का अंतरंग हिस्सा बना देने की विस्फोटक संभावना है।

ये संघर्ष इस लिहाज से भी असाधारण थे कि इन्होंने न सिर्फ़ कुछ ख़ास नीतियों की मुखालफ़त की, बल्कि भारतीय संविधान के निहायत बुनियादी उसूलों और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र, स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की आज़ादी, भेदभाव का उन्मूलन, अवसर की समानता तथा सबके कल्याण के संवैधानिक मूल्यों के पक्ष में भी अपने मत का अभिकथन किया। अनेक विरोध-स्थलों पर संविधान की प्रस्तावना का पाठ किया गया जिसमें राष्ट्र को इन मूल्यों की राह पर ले चलने का संकल्प व्यक्त किया गया। भागीदारीपूर्ण लोकतंत्र और संवैधानिक मूल्यों के प्रति व्यक्त इस असाधारण जन-समर्थन ने पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा और सराहना हासिल की। ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी ने हिंदीभाषी इलाक़ों के विरोधस्थलों पर बारंबार सुनायी पड़ने वाले 'संविधान' शब्द को 2019 का 'वर्ड ऑफ़ द ईयर' घोषित किया।

मुखालफ़त करने वालों और संवैधानिक मूल्यों के दूसरे समर्थकों ने सीएए, एनआरसी और एनपीआर के संबंध-सूत्रों में एक और भी भेदभावपूर्ण और अस्तित्वमूलक ख़तरा बहुत साफ़ तौर पर देखा, ख़ास कर मुसलमानों के लिए। इस संबंध-सूत्र का कथन संसद में स्वयं गृहमंत्री ने किया था, जब उन्होंने यह 'क्रोनोलोजी' स्पष्ट की कि किस तरह पहले सीएए आयेगा, फिर एक आवश्यकतानुसार तैयार एनपीआर (जिसका चार्टर, नागरिकता रजिस्टर के साथ उसके संबंध का स्पष्ट उल्लेख करता है) और तब एनआरसी, जिसमें से एनपीआर दशकवार जनगणना के हिस्से के रूप में आगामी महीनों में शुरू होने जा रहा है।

इस खुली घोषणा से पहले भी कई महीनों से भाजपा नेता लगातार अवैध मुस्लिम आप्रवासियों का हौवा खड़ा करते आ रहे थे, जिसमें उन्हें न सिर्फ़ 'घुसपैठिया', बल्कि 'दीमक' और इस तरह की दूसरी संज्ञाओं से नवाज़ा जाता था। इस क्रोनोलोजी के महत्त्व का अनुमान हाल ही में मुकम्मल हुए असम के नागरिकता रजिस्टर से लगाया जा सकता है, जो उस असम समझौते के अनुसार 'विदेशियों' को चिन्हित और निष्कासित करने के लिए बनाया गया जिसमें 1971 के बाद असम में अवैध रूप से आये सभी लोगों की पहचान विदेशी के रूप में करने की बात थी।

जो नतीजा सामने आया, उसमें 'अवैध' के रूप में पहचाने गये बहुसंख्य लोग हिंदू (बंगाली हिंदू) निकले, जो कि विदेशी-विरोधी असम आंदोलन के मानदंडों पर सही था, पर भाजपा के मानदंडों पर नहीं, जिसके निशाने पर ख़ास तौर से मुसलमान थे। असम के भीतर, जहां भाजपा कुछ अन्य असमी-राष्ट्रवादी दलों के साथ सत्ता में है, भाजपा ने एनआरसी के तहत विदेशी पंचाट (फ़ॉरेनर्स ट्रिब्यूनल) के द्वारा घोषित परिणामों को ख़ारिज किया और उसकी समीक्षा की मांग की, जो कि दूसरी असमी-राष्ट्रवादी पार्टियों और ताक़तों को नागवार गुज़रा। इन असमी-राष्ट्रवादी ताक़तों, असम के दूसरे नृजातीय समुदायों, और असम के भीतर तथा बाहर मुस्लिम अल्पसंख्यकों ने सीएए-एनपीआर-एनआरसी को असम के नागरिकता रजिस्टर को संशोधित करने के भाजपा के ऐसे प्रयास के रूप में देखा जिसके माध्यम से अवैध ठहराये गये हिंदुओं को नागरिकता दी जा सके और सिर्फ़ मुसलमानों को चुन-चुनकर 'अवैध' के रूप में चिन्हित करते हुए बाहर निकाला जा सके या उससे पहले नज़रबंदी शिविरों के हवाले किया जा सके। इस इरादे को भी भाजपा नेताओं ने पूरे देश में, ख़ासतौर से पश्चिम बंगाल में 2020 में किये गये बड़े प्रचार-अभियानों में, नियमित रूप से यह घोषणा करते हुए एकदम साफ़ कर दिया कि 'किसी भी हिंदू को देश छोड़कर जाना नहीं पड़ेगा'।

यही कारण है कि सीएए-एनपीआर-एनआरसी को सम्मिलित रूप से भारतीय गणराज्य की धर्मनिरपेक्ष और ग़ैर-भेदभावमूलक बुनियाद पर हमले के रूप में, तथा मुसलमानों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनाने वाले 'हिंदू राष्ट्र' के भाजपा के लक्ष्य की दिशा में एक बड़े क़दम के तौर पर देखा गया। यह 'बहुसंख्यकवाद' इसके बाद और आगे बढ़ेगा और दूसरे अल्पसंख्यकों, ग़ैर-हिंदी भाषियों, दलितों इत्यादि को भी अपनी ज़द में लेगा।

तर्कशीलता अपने-आप में भाजपा-संघ परिवार का विरोध है

ये सारी बातें भारत के एक बहुत व्यापक हिस्से में, जिसमें तरह-तरह के लोग शामिल हैं, भली-भांति समझी जा चुकी हैं। अलबत्ता यह भी स्वीकार करना होगा कि एक ख़ासा बड़ा हिस्सा अभी भी भाजपा के शासन को अपेक्षाकृत हानिरहित मानता है और उसके मुस्लिम-विरोध को, भले ही वह कभी-कभी अतिरेक पर चला जाये, भारतीय राष्ट्र के प्रति मुसलमानों की संदिग्ध निष्ठा सरीखे कुछ 'वैध' सरोकारों पर आधारित मानता है। गहरे धंसे हुए ऐसे पूर्वग्रह ख़ासकर हाल के दशकों में बहुसंख्यक समुदाय में काफ़ी फैल गये हैं, हालांकि यह भी कहा जा सकता है कि वे लंबे समय से दबे पड़े थे, तथा भाजपा-संघ परिवार इसके साथ बड़ी चालाकी से खेलता और इन पूर्व-धारणाओं को हवा देता है, जैसा कि हम आगे थोड़े विस्तार से देखेंगे।

भाजपा-संघ परिवार सीएए-एनपीआर-एनआरसी का बचाव मुख्य रूप से विरोधियों और उनकी हिफ़ाज़त में खड़े लोगों पर हमले के माध्यम से, जिसका वह अभ्यस्त है, करता रहा है। संघ परिवार के बचाव में अनदेखी (मुख्य मुद्दे की), विस्थापन, विषयांतर और विलोपन जैसी उसकी चिर-परिचित युक्तियां शामिल हैं। उसका आख्यान तीन पहलुओं को एक-दूसरे से अलग-थलग करता है और लगातार इस बात पर

बल देता है कि सीएए नागरिकता देने के लिए है न कि छीनने के लिए, कि एनपीआर बस साधारण-सी गणना की एक क़वायद है जिसमें कोई दस्तावेज़ अपेक्षित नहीं हैं, और ऐसा कहते हुए वे एनआरसी को पूरी तरह से किनारे कर देते हैं या तो उसका ज़िक्र ही नहीं करते या वही सफ़ेद झूठ बोलते हैं जो दिल्ली के रामलीला मैदान में प्रधानमंत्री ने बोला था, कि 'सरकार में एनआरसी को लेकर कोई विचार-विमर्श नहीं हुआ है'।

विरोधियों पर होने वाले इस हमले में दो रुझान देखने को मिलते हैं : एक, मुद्दे का सांप्रदायीकरण करना और दो, सभी तरह के विरोधियों और मुसलमानों को एक खाने में रखकर उन पर 'एंटी-नेशनल' का लेबल लगा देना। जामिया मिलिया विश्वविद्यालय पर हमला, जेएनयू ('टुकड़े टुकड़े' गैंग के एक प्रतीक के रूप में) पर हमला, शाहीन बाग़ धरने पर अपने हमले को तीव्र हुए उसे 'गोली मारो' की ऊंचाई तक ले जाना, और उत्तर-पूर्वी दिल्ली के जनसंहार के रूप में उसका उपसंहार -- इनसे ये दोनों रुझान सामने आते हैं। इस तरह, सीएए-एनपीआर-एनआरसी की मुख़ालफ़त करने वाले दग़ाबाज़ मुसलमान और अन्य राष्ट्रविरोधी हैं, जो इसी कारण राज्य के दुश्मन और षड्यंत्रकारी हैं। भाजपा-संघ परिवार ने इस दलील को और आगे बढ़ाते हुए यह विस्मयकारी दावा किया कि संसद द्वारा पारित क़ानून का विरोध करना अपने-आप में विश्वासघात है। और सरल तरीक़े से कहा जाये तो भाजपा-संघ परिवार के नज़रिये का ही विरोध करना अपने-आप में आपत्तिजनक है, और उसके ख़िलाफ़ किसी भी तरह की तार्किक दलील वैध नहीं हो सकती।

आपके पास कैसे भी तर्क हों, ऊपर बतायी गयी चालों का इस्तेमाल करते हुए भाजपा-संघ परिवार किसी तरह की तर्क-विवेकयुक्त बहस में उतरने से इनकार करता है। दरअसल, वे विवेक के ही ख़िलाफ़ हैं।

भाजपा के वैचारिक प्रासाद की यह आधारशिला 2014 में उनके सत्ता में आने के बाद से बहुत स्पष्टगोचर रही है। यह समझना ज़रूरी है कि साक्ष्य-आधारित तर्क-वितर्क, जो कि वैज्ञानिक मिज़ाज का सार है, को नेस्तनाबूद करने की कोशिश भाजपा-संघ परिवार का पुराना और केंद्रीय एजेंडा रहा है। ऐतिहासिक रूप से ऐसा सभी फ़ासीवादियों और फ़ासीवाद-परस्त ताक़तों के साथ रहा है। लिहाजा भाजपा-संघ परिवार की कार्यसूची और विचारधारा के साथ संघर्ष करते हुए उनके प्रकट तर्कों और वितर्कों के पीछे देखा जाये, और निहित लक्ष्यों को समझा जाये।

तथ्य के रूप में मिथक

2014-15 के अपने शुरुआती दिनों से प्रधान मंत्री समेत भाजपा के मंत्रीगण प्राचीन भारतीय विज्ञान के बारे में अनोखे दावे करते आ रहे हैं। यह प्राचीन भारत उनकी नज़र में मुख्यधारा की वैदिक-संस्कृत परंपरा तक सीमित है। वे तमाम दूसरी दार्शनिक, वैज्ञानिक और गणितीय परंपराएं, जो व्यापक हिंदू परंपराओं का और पर्याप्त विकसित रूप में जैन तथा बौद्ध परंपराओं का हिस्सा हैं, उनकी वे अनदेखी करते हैं। भाजपा-संघ परिवार के समूहों, विद्वानों और बौद्धिकों ने अनेक लेख, किताबें और ब्लॉग्स लिखे हैं, और वेबसाइटें चलाते हैं उन सभी में ऐसे 'शोधों' के नतीजे पेश किये जाते हैं जो हिंदुत्व की पूर्व-धारणाओं को टेक देते हैं और, उनके दावे के अनुसार, उसे अधिक 'वैज्ञानिक' आधार प्रदान करते हैं। यह दावा किया गया है कि भारत के पास दुनिया के कई हिस्सों के मुक़ाबले कई हज़ार साल पहले से उन्नत वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीक थी मिसाल के लिए, प्लास्टिक सर्जरी, जिसकी वजह से गणेश भगवान में मनुष्य के शरीर पर हाथी का सिर बिलकुल ठीक से स्थापित है; आईवीएफ़ (इन-विट्रो फ़र्टिलाइज़ेशन यानी वैज्ञानिक उपकरण का इस्तेमाल कर होने वाली निषेचन की प्रक्रिया), जिसके कारण बिना दैहिक

संपर्क के भी कुंती को देवताओं से बच्चे पैदा हुए; इंटरनेट, जिसकी मदद से महाभारत में संजय दूर-स्थित कुरुक्षेत्र की घटनाएं अंधे धृतराष्ट्र को सुना पाया; 'आइंस्टीन से बेहतर' वैज्ञानिक सिद्धांत, इत्यादि। 2015 के इंडियन साइंस कांग्रेस में, जो कि एक बहु-प्रतिष्ठित आयोजन है, संघ परिवार के लोगों ने एक अतिरिक्त सत्र भारतीय वैज्ञानिक उपलब्धियों पर रखा, जिसमें अनेक अज्ञातनाम वक्ताओं ने मिथकीय पुष्पक विमान के हवाले से '8,500 साल पहले' भारत में मौजूद विमानन और स्पेस प्रौद्योगिकी पर अपने पर्चे पेश किये। ऐसे ही दावे अगली कई साइंस कांग्रेसों में दुहराये गये, जिसके कारण अनेक अंतरराष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिकों और नोबेल पुरस्कार विजेताओं को इसकी निंदा करते हुए प्रधानमंत्री को चिट्ठी लिखनी पड़ी। इसके बावजूद, पिछले एक-दो सालों से भारतीय साइंस कांग्रेसों का यह दुरुपयोग भले ही रुक गया हो, इस तरह के बयानों और दावों का दुहराया जाना अभी तक जारी है। कोरोना वायरस महामारी के बीच भी भाजपा के कई नेताओं और हिंदुत्व की बड़ी शख़्सियतों ने यह दावा किया है कि गो-मूत्र के पान से कोरोना वायरस के संक्रमण का इलाज और रोकथाम संभव है!

जब भारतीय वैज्ञानिकों और दूसरों ने अनेक आधारों पर इन दावों को प्रश्नांकित किया, तो उन्हें पश्चिमीकरण के शिकार, पूर्वग्रह-ग्रस्त, मैकाले-पुत्र और उपनिवेशित दिमाग़ वाला बता कर उन पर हमला किया गया और उन्हें 'एंटी-नेशनल' बताया गया। जिस व्यक्ति ने प्राचीन भारतीय राकेट-विद्या के बारे में दावे किये, उसने एक अज्ञात संस्कृत पाठ भी प्रस्तुत किया जिसके बारे में उसका दावा था कि वह प्राचीन पाठ उसके 'सपने में प्रकट हुआ' था। वह कई सालों तक चर्चा में रहा और वैज्ञानिकों द्वारा ख़ारिज कर दिया गया। बंगलौर के इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस के एयरोस्पेस साइंस और इंजीनियरिंग के प्रोफ़ेसरों ने, संस्कृत के विद्वानों के साथ मिलकर, पूरे पाठ को पढ़ा और फिर एक पर्चा प्रस्तुत किया जिसमें यह बताया गया था कि यह प्राचीन संस्कृत न होकर अपेक्षाकृत हाल की लिखी हुई पुस्तक है और इसमें एरोडायनेमिक्स के बुनियादी ज्ञान, मिसाल के लिए यह कि हवा से भारी सामग्री से बनी चीज़ उड़ कैसे सकती है, का भी अभाव है। इसे या तो हिंदुत्व के पैरोकारों ने अनदेखा किया या फिर भारत-विरोधी पक्षधरता और पश्चिम-समर्थक नज़रिया कहकर इस पर हमला किया गया।

इन सभी दावों के मामले में, विज्ञान-आधारित आलोचना या साक्ष्यों की मांग पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए हिंदुत्व समर्थकों ने साक्ष्य-आधारित तर्क-वितर्क की वैज्ञानिक पद्धति को सिर के बल खड़ा कर दिया!

कोई प्रति-तर्क संभव नहीं

अव्वल तो उन्होंने असम्मेयता का तर्क रखा, यह कहते हुए कि उन्हें 'पश्चिमी विज्ञान' के गुणों के आधार पर कुछ भी साबित करने की ज़रूरत नहीं, हालांकि यह तर्क भी क़ायदे से नहीं रखा गया। (विज्ञान के दार्शनिक थॉमस कुह्न ने 'असम्मेयता'(incommensurability) शब्द का प्रयोग यह बताने के लिए किया कि दो ऐसे भिन्न वैचारिक स्कूल हो सकते हैं जिनकी बुनियादें इतनी भिन्न हों कि एक की भाषा और नियमों का इस्तेमाल दूसरे को समझने के लिए न किया जा सके। इस अर्थ में कुछ दार्शनिकों ने यह विचार रखा है कि विज्ञान और धर्म असम्मेय हैं, मतलब यह कि विज्ञान की धारणाओं और पद्धतियों को धर्म की धारणाओं को समझने, साबित या ख़ारिज करने के लिए सरल तरीक़े से इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।)

दूसरे, इसी से जुड़ी हुई और ज़्यादा प्रचलित दलील है, आस्था की दलील, जिसके अनुसार, ये दावे अर्द्ध-धार्मिक पौराणिक ग्रंथों और संस्कृत पुस्तकों में आये हैं और यह इनकी तथ्यता को साबित करने के लिए काफी है, किसी और सबूत की कोई ज़रूरत नहीं।

तीसरे, उन्होंने अतार्किक और वैज्ञानिक रूप से अनिर्वहनीय 'अनुमान' की दलील पेश की, जिसके अनुसार अंतिम परिणाम के आधार पर इस प्राचीन भारतीय ज्ञान और प्रौद्योगिकी का अनुमान लगाया जा सकता है। मिसाल के लिए, कोई दूर स्थित युद्ध-क्षेत्र का आंखों देखा हाल और कैसे बयान कर सकता है, या एक गणेश भगवान के मानव-शरीर पर हाथी का सिर इतने दुरुस्त तरीक़े से और कैसे लगा हो सकता है? इत्यादि। इस दलील में मिथक को तथ्य की तरह लिया गया है, जैसे दूसरे नंबर की दलील में, और तब सभी तरह के तर्कों को धता बताते हुए 'अनुमान' को आरोपित किया गया है। आख़िरकार, इंटरनेट संजय के 'आंखों देखे हाल' के लिए एकमात्र संभव उपाय नहीं है, वह रेडियो, टेलीविज़न के माध्यम से या यहां तक कि टेलीपैथी के ज़रिये भी हो सकता है, अगर आप उसमें यक़ीन करते हों। चौथे, जब हिंदुत्व के अतिकल्पनाशील दावों को चुनौती दी जाती है, तब हिंदुत्व की ताक़तें वैज्ञानिकों और दूसरे आलोचकों से कहती हैं कि साबित करो कि ये दावे ग़लत हैं, कि जिस प्राचीन भारतीय (पढ़ें, हिंदू) ज्ञान या कलाकृतियों की बात की गयी है, उनका कोई वजूद नही था। इस तरह से न तो विज्ञान काम करता है, न ही तर्कशास्त्र। कोई भी यह दावा कर सकता है कि उसने सिर्फ़ एक ध्रुव वाला चुंबक देखा है, और अगर पूरा विज्ञान एक स्वर से भी इस तरह के चुंबक की संभावना से इनकार करे, तो वह दावेदार असम्मेयता की दलील के आधार पर कह सकता है कि यह सबूत अपने-आप में नाकाफ़ी है। हाल में हिंदुत्व के तरफ़दारों ने दावा किया कि प्रधान मंत्री ने लोगों से अपनी बालकनी में आकर ताली और थाली बजाने का जो आह्वान किया, उससे पैदा हुई आध्यात्मिक तरंगों में कोविद 19 वायरस को नष्ट करने की क्षमता है। तो क्या अब वैज्ञानिकों को अपना पूरा समय इसके सबूत इकट्ठा करने में लगाना चाहिए कि नहीं, ऐसा नहीं है? वह भी तब, जबकि सारे सबूत ऊपर उल्लिखित किसी एक या चारों आधारों पर ख़ारिज ही कर दिये जायेंगे?

दूसरे शब्दों में, हिंदुत्व के ख़िलाफ़ कोई भी दलील कभी भी सही नहीं हो सकती। कोई भी प्रति-तर्क निर्वहनीय नहीं है। सारे हिंदुत्ववादी दावे सही हैं, और इसीलिए वे सभी लोग जो इसका विरोध करते हैं, राजनीति-प्रेरित, पक्षपाती और 'एंटी-नेशनल' हैं।

इस तरह के विचारधारात्मक और राजनीतिक-रणनीतिक रवैये के साथ भाजपा-संघ परिवार ने, सत्ता में अपनी उपस्थिति का इस्तेमाल करते हुए, अपनी प्रिय पुराण-कथाओं के लिए 'साक्ष्य' गढ़ने का काम भी शुरू कर दिया है ताकि उन्हें इतिहास या तथ्य के रूप में पेश किया जा सके।

मिसाल के लिए, भारत के दक्षिणी कोने से श्रीलंका तक पानी में डूबी रॉक-फ़ार्मेशंस की नासा की तस्वीरों को भगवान राम के मिथकीय सेतु के 'साक्ष्य' के तौर पर खूब प्रसारित किया गया। इसे सिर्फ़ राम सेतु की पुराकथा को बल देने के लिए, या उस इलाक़े में एक नौकायन परियोजना को रोकने के लिए ही इस्तेमाल नहीं किया गया, बल्कि यह साबित करने के लिए भी किया गया कि *रामायण* की सभी दंतकथाएं वस्तुतः ऐतिहासिक तथ्य हैं। सिंधु घाटी सभ्यता का हिंदूकरण करने के लिए मिथकीय सरस्वती-सिंधु सभ्यता को आक्रामक तरीक़े से प्रचारित किया गया, इसके लिए तर्क की ज़बरदस्त खींचतान की गयी और तथाकथित अध्ययनों का हवाला देकर हरियाणा में एक ख़ास जगह पर मिथकीय सरस्वती के अस्तित्व को 'साबित' किया गया। एक लंबी नहर सचमुच खोदी जा चुकी है और उसमें पानी छोड़ा गया है ताकि उस मिथकीय नदी को 'पुनर्रचित' किया जा सके। गंगा के जादुई आरोग्यकारी गुणों, और योग, ध्यान, यज्ञ आदि की अद्भुत भौतिक तथा अतींद्रिय शक्तियों के संबंध में आधिकारिक रूप से स्वीकृत 'शोध' परियोजनाएं शुरू की गयी हैं। इन परियोजनाओं के लिए यह ज़रूरी नहीं कि नेतृत्वकारी शोधकर्त्ता कोई वैज्ञानिक या ख़ास तौर से दीक्षित व्यक्ति हो, वह कोई प्रैक्टिसनर वैद्य या योगगुरु, हो सकता है जिसे, अगर ज़रूरत हुई तो, किसी वैज्ञानिक का सहयोग मिल सकता है। अभी

पिछले ही महीने विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने देसी गायों के शारीरिक उत्पादों, जैसे मूत्र और गोबर, के विशेष (यहां तक कि जादुई?) गुणों के उद्घाटन के लिए एक शोध कार्यक्रम की शुरुआत की। वैज्ञानिकों की यह मांग सिरे से ख़ारिज कर दी गयी कि जिन अनोखेपन का दावा किया जा रहा है, उन्हें प्रथम दृष्टया मान लेने के बजाय पहले गहन शोध से उनकी जांच की जाये और हायब्रिड तथा देसी गायों से हासिल नतीजों की तुलना की जाये। दूसरे शब्दों में, वैज्ञानिक रवैया और साक्ष्य-आधारित तर्कना न सिर्फ़ ग़ैरज़रूरी हैं बल्कि अनपेक्षित भी हैं! अन्य क्षेत्र भी हैं जहां यह उभर कर आया है।

धारणा ही यथार्थ!

भाजपा सरकार और उससे जुड़े निगरानी समूहों ने मवेशियों की बिक्री और उनकी आशंकित हत्या तथा बीफ़ खाने के ख़िलाफ़ एक आक्रामक अभियान शुरू किया है, जिसमें मुख्यतः मुसलमान और दलित निशाने पर हैं। इस अभियान ने अनेकानेक पब्लिक लिंचिंग और मौतों को अंजाम दिया। साथ ही किसानों, मवेशी पालन, डेरी किसान, चमड़े का काम करने वाले ग्रामीणों और सामान्य रूप से चमड़ा उद्योग पर गंभीर नकारात्मक आर्थिक प्रभाव डाला है। इस नुक़सान के बारे में बताने वाले अध्ययनों और विशेषज्ञों की राय को ख़ारिज कर दिया गया।

उत्तर-पूर्व के कई हिस्सों और भारत में अन्यत्र भी खाये जाने वाले बीफ़ के ख़िलाफ़ हिंदुत्व के अभियान में जगह-जगह भीड़ की हिंसा देखने को मिली। इसका विस्तार शाकाहार के लिए अभियान में भी हुआ जिसे एक हिंदू आदर्श के रूप में पेश किया गया।

आहार-विशेषज्ञों की राय के ख़िलाफ़ अनेक भाजपा-शासित राज्यों में स्कूलों के 'मिड-डे मील' कार्यक्रम में भी शाकाहारी मेनू की शुरुआत हुई जिसमें अंडा तक नहीं होता। राष्ट्रीय विमान सेवा एयर इंडिया अब सिर्फ़ शाकाहारी भोजन देता है। यह भारत में ऐसा करने वाली अकेली विमान सेवा है। दिल्ली के नेशनल म्यूज़ियम ने हाल ही में सिंधु घाटी सभ्यता को लेकर एक पूरे हफ़्ते का शोध-आधारित, दिलचस्प उत्सव आयोजित किया जिसमें खाने के अवशेषों, बर्तनों और उपकरणों की पुरातात्विक खोजों के आधार पर कल्पनाशील तरीक़े से बनाये खाने भी शामिल थे। इसे कुछ भाजपा सांसदों की शिकायत पर रातों-रात एक शाकाहारी आयोजन में तब्दील कर दिया गया!

नृतत्वशास्त्रीय शोध बताते हैं कि भारत के 70 फ़ीसद से ज़्यादा समुदाय मांस खाते हैं, लेकिन भाजपा-संघ परिवार का रवैया विविधता के विचार के प्रति शत्रुतापूर्ण है और वे अपने नज़रिये के ख़िलाफ़ जाने वाली साक्ष्य-आधारित तर्कना का प्रतिरोध करते हैं, और यहां तक कि अपने आख्यान से समानता रखने वाली धारणा का, प्राचीन भारत को भी समेटते हुए 'एक वैकल्पिक वास्तविकता' का, निर्माण करते हैं। पाठकों को हिंदुत्व की ताक़तों और भारतीय तथा विदेशी दोनों तरह के इतिहासकारों के बीच का वह पुराना विवाद तो याद होगा ही जिसमें इतिहासकारों ने प्राचीन वैदिक और अन्य पाठों तथा साक्ष्यों के आधार पर यह कहा था कि प्राचीन भारत में हिंदू गोमांस खाते थे जिसे बौद्ध धर्म के दबाव में, और शायद उस समय के गोचारण समाज में गाय की बढ़ती दैवीय हैसियत के दबाव में छोड़ा गया। हिंदुत्ववादियों ने इससे सीधे-सीधे और आक्रामक तरीक़े से इनकार किया, भले ही साक्ष्य कुछ भी कहते हों, और आगे प्रो. डी एन झा तथा प्रो. वेंडी डोनिगर ओ' फ़्लाहर्टी की किताबों को प्रतिबंधित किया गया। साक्ष्य-आधारित तर्कना के प्रति भाजपा-संघ परिवार की शत्रुता, सरकार के सर्वोच्च स्तरों पर भी, अतिवाद की ओर जाती रही है।

नोटबंदी के बाद भाजपा सरकार ने इस उपाय के असर को प्रश्नांकित करने वाले सभी अकादमिक अध्ययनों और विशेषज्ञों की राय को ख़ारिज कर दिया। इस बात का कोई मतलब नहीं रहा कि जिस

नोटबंदी से काले धन के बड़े ख़जाने पकड़े जाने की उम्मीद थी, उसके बाद भी सर्कुलेशन में कुल नक़द उतना ही बना रहा। शोधार्थियों द्वारा पेश किये गये ठोस आर्थिक आंकड़ों के बावजूद सरकार अर्थव्यवस्था पर किसी तरह के नकारात्मक असर या रोज़गार में किसी तरह की गिरावट से इनकार करती रही। जीडीपी और अर्थव्यवस्था की वास्तविक वृद्धि में आयी गिरावट को लेकर भी सरकार का यही रवैया था। यहां तक कि प्रतिष्ठित शोध संस्थानों और सरकारी सांख्यिकीय संस्थानों के आंकड़ों से भी इनकार किया गया और उनकी रिपोर्ट दबा दी गयी, जिसके कारण राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय आर्थिक आंकड़ों की विश्वसनीयता को लेकर चिंताएं प्रकट की गयीं।

लेकिन भाजपा-संघ परिवार के लिए उनका अपना आख्यान और उस पर आधारित जन-धारणा का निर्माण साक्ष्यों के मुक़ाबले ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। उत्तर प्रदेश के पिछले चुनावों के दौरान एक भाजपा प्रत्याशी ने घोषणा की कि एक विशेष ज़िले में अल्पसंख्यकों के गिरोहों की धमकी के कारण हिंदुओं का पलायन हो रहा है। जब स्थानीय प्रशासन से लिये गये उलट आंकड़े उसे दिखाये गये, तो उसने बेझिझक कहा कि 'धारणा आंकड़ों से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।'

इस तरह, अगर साफ़-साफ़ दिखने वाले साक्ष्य पेश किये जाते हैं और वे भाजपा-हिंदुत्ववादियों के ख़िलाफ़ जाते या उनकी बातों को कमज़ोर करते हैं, तो उस साक्ष्य से सीधे-सीधे इनकार किया जा सकता है, या इन्हें एक झटके में मिटाया जा सकता है।

इस पागलपन में एक मॉडल है, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

लेकिन उससे पहले, यह बलपूर्वक कहे जाने की ज़रूरत है कि सभी आलोचनाओं की आधारभूत वैधता को नकारने वाला यह विचारधारात्मक रवैया सिर्फ़ छद्म-विज्ञान या छद्म-इतिहास तक ही सीमित नहीं है, और यह मौखिक या लिखित विमर्श तक भी सीमित नहीं है। उन आलोचनाओं को राज्य-सत्ता का इस्तेमाल करते भी दबाया जाता है और खुली धमकी, भाजपा-संघ परिवार के साथ जुड़ी ग़ैर-सरकारी ताक़तों की खुली हिंसा, हत्याओं और सुनियोजित 'दंगों' के माध्यम से भी दबाया जाता है।

आलोचनात्मक सोच पर हमला

2015 में हुई नरेंद्र दाभोलकर की हत्या ने यह सचाई दिखा दी कि हिंदुत्व की ताक़तें विवेक पर हमला करने और मिथकों तथा हिंदुत्ववादी आख्यानों की आज्ञाकारी मंज़ूरी को अमल में लाने के लिए किस हद तक जा सकती हैं। दाभोलकर को अक्सर विवेकवादी के रूप में पेश किया जता है; लेकिन वे न सिर्फ़ अंधविश्वासों और अविवेक के ख़िलाफ़, बल्कि साक्ष्य-आधारित तर्कना और वैज्ञानिक मिज़ाज के पक्ष में भी अथक अभियान चलानेवाले थे। उनके बाद और हत्याएं हुईं जिनसे हिंदुत्व की ताक़तों का यह संकल्प और स्पष्ट होता है। गोविंद पानसरे मारे गये, जो कम्युनिस्ट नेता थे और दाभोलकर की तरह ही अंधविश्वास-निर्मूलन अभियान में लगे हुए थे; प्रो. एम एम कलबुर्गी मारे गये, जिन्होंने 12 वीं सदी के जाति-विरोधी बाग़ी कार्यकर्त्ता बसवन्ना को एक नरम समाज-सुधारक के तौर पर पेश करने वाले हिंदुत्ववादी आख्यान का विरोध किया; पत्रकार गौरी लंकेश मारी गयीं, जिन्होंने आलोचकों का मुंह बंद करने की हिंदुत्ववादी कोशिशों के ख़िलाफ़ अभियान चलाया। इन सभी की हत्या संभवतः एक ही दक्षिणपंथी हिंदुत्व समूह के सदस्यों ने की।

ये अतिवादी उदाहरण लग सकते हैं, लेकिन आलोचनात्मक स्वरों और आलोचनात्मक सोच का दमन करने के लिए हिंसा का इस्तेमाल भाजपा-संघ परिवार और उससे संबद्ध समूहों की रोज़मर्रा की पद्धति बनती गयी।

आलोचनात्मक सोच, बहुलतावाद, लोकतांत्रिक बहसों, और सरकारी नीतियों तथा हिंदुत्व के आख्यानों

की आलोचना करने और उन्हें प्रश्नांकित करने वाले केंद्रों के रूप में विश्वविद्यालय इनका प्रमुख निशाना बनकर उभरे और अभी भी हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि हैदराबाद यूनिवर्सिटी, चेन्नई और मुंबई के आईआईटी, टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज़, दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी और हाल ही में जामिया मिलिया इस्लामिया और अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी भाजपा-संघ परिवार के ख़ास निशाने पर रहे हैं, और इनमें से आख़िरी तीन में तो पुलिस और मॉब का इस्तेमाल करते हुए हिंसक हमले करवाये गये।

हैदराबाद सेंट्रल यूनिवर्सिटी, जहां रोहित वेमुला की शहादत भी हुई, में चलने वाला संघर्ष दलितों और अन्य दमित समूहों के ख़िलाफ़ सांस्थानिक पक्षपात के विरोध में था। यहां आरएसएस के छात्र विंग एबीवीपी ने, जिसे केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री का खुल्लमखुल्ला सहारा मिला हुआ था, उच्च-जाति हिंदुत्व के मूल्यों को थोपने की कोशिश की और डराने-धमकाने का विषैला अभियान चलाया जिसके तहत रोहित का निलंबन हुआ और फिर उसकी त्रासद खुदकुशी की घटना हुई। आईआईटी-मद्रास में एक सेमीनार आयोजित करवाने के बाद एक आंबेडकरवादी छात्र समूह को प्रतिबंधित कर दिया गया। वहां के प्रशासन ने तथाकथित 'विवादास्पद' मुद्दों पर होने वाली सभी तरह की सार्वजनिक बहसों को प्रतिबंधित करने की भी पहल की और परिसर में ग़ैर-शाकाहारी भोजन पर भी रोक लगाने का प्रयास किया। आईआईटी मुंबई के परिसर में भी समकालीन सामाजिक मुद्दों पर खुली बहसों को प्रतिबंधित करने का प्रयास किया। सरकारी नीतियों के किसी भी विरोध को एंटी-नेशनल या राजद्रोह ठहराये जाने के ख़िलाफ़ जेएनयू परिसर में चला लंबा संघर्ष उस सार्वजनिक व्याख्यान शृंखला के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ जिसमें बड़े विद्वानों और जन-बुद्धिजीवियों ने भारत की संकल्पना पर और बहुलतावाद तथा आलोचनात्मक सोच का बचाव करते हुए प्रतिदिन खुले में व्याख्यान दिये। जनेवि छात्र संघ के तत्कालीन अध्यक्ष कन्हैया कुमार के ख़िलाफ़ राजद्रोह का मुक़दमा दायर किया गया था और 'आज़ादी' की थीम पर बुने हुए उसके नारों को भाजपा सरकार और हिंदुत्व की शक्तियों ने जानबूझकर इस तरह तोड़ा-मरोड़ा था कि वह अलगाववादी आह्वान की तरह लगे। 'आज़ादी' का नारा बेशक कश्मीर घाटी के आंदोलन से लिया गया था, पर कन्हैया ने इसे तानाशाही के ख़िलाफ़ एक आह्वान के रूप में रूपांतरित किया था। यह नारा तब से अनेक संस्करणों में अनेक मौक़ों पर दुहराया जाता रहा है और सीएए-एनपीआर-एनआरसी विरोधी आंदोलन में भी दुहराया गया।

भारत का युवा वर्ग विज्ञान, प्रौद्योगिकी और अन्य धाराओं में उन्नत ज्ञान विकसित करने की जो हसरत रखता है, उसके साथ ये स्थितियां क्या करती होंगी, यह समझा जा सकता है। कोई भी देश या समाज, स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा के अन्य संस्थानों तक, खोजबीन की मनोवृत्ति या आलोचनात्मक सोच का गला घोंट कर आगे नहीं बढ़ सकता।

निष्कर्षतः

कोई आश्चर्य नहीं कि भारत और भारत के बाहर का भी वैज्ञानिक समुदाय, जो आमतौर पर राजनीतिक बयानबाज़ी या अभियानों से दूर रहता है, इन चीज़ों पर क्षुब्ध है (सीएए-एनपीआर-एनआरसी समेत) और उसने कई बयानों के माध्यम से अपनी चिंताएं सार्वजनिक की हैं।

अमेरिका में, जहां आईटी के 10 में से 8 दिग्गज भारतीय मूल के हैं, गूगल के सुंदर पिचाई और माइक्रोसॉफ़्ट के सत्या नाडेला ने प्रेसिडेंट ट्रंप की आप्रवासन-विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ यह कहते हुए आवाज़ उठायी कि बहुलता और विविधता, आविष्कार और रचनात्मकता आर्थिक वृद्धि में मददगार होती है। इन्हीं लोगों ने सीएए-एनपीआर-एनआरसी के ख़िलाफ़ भी अपनी चिंताएं सार्वजनिक कीं जो कि भारत

में बैठे सत्ताधारियों को नागवार गुज़रीं।

भारत के वैज्ञानिक समुदाय के सामने और पीपुल्स साइंस मूवमेंट जैसे एडवोकेसी समूहों के सामने यह बिलकुल स्पष्ट है कि विज्ञान और सामान्य रूप से ज्ञान का सृजन बिना बहुलतावाद और खुले तथा आलोचनात्मक सोच वाले वातावरण के नहीं हो सकता। कल्पना कीजिए, क्या होता अगर गैलीलियो और ब्रूनो के समय का धमकी और सज़ा वाला माहौल क़ायम रहता, या अगर कोपरनिकस ने खगोल के हज़ार साल पुराने पृथ्वी-केंद्रित (अरस्तू वाले) मॉडल पर सवालिया निशान न लगाया होता। आज के ज्ञान युग में अगर आलोचनात्मक सोच और बहुलतावाद का दमन किया गया तो भारत का और इसके युवाओं का भविष्य गंभीर संकट में पड़ जायेगा।

और कोई भूल न कीजिए। भाजपा-संघ परिवार का केंद्रीय लक्ष्य ही साक्ष्य-आधारित तर्कना, आलोचनात्मक सोच, और विवेक पर हमला करना तथा एक पूरी तरह से अनुसर्ता, आज्ञाकारी, और विचारधारात्मक रूप से 'लाइन हाज़िर' सामाजिक आधार का निर्माण करना है, जिसके साथ एक आक्रामक, हिंसक हिरावल दस्ता हो और सभी एक विपक्ष-मुक्त राजनीति में हिंदुत्व की सरकार के लौह दंड से संचालित हों। क्या यह बहुत जानी-पहचानी बात लगती है?

द्वितीय विश्वयुद्ध के तुरंत बाद की बात है। अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया, बर्कले के विद्वानों के एक छोटे-से समूह ने एक मनो-सामाजिक अध्ययन शुरू किया। वे नाज़ीवाद की दहशत, और सैन्य बल के एक बड़े हिस्से तथा यहूदियों, जिप्सियों और अन्य अल्पसंख्यकों के साथ होने वाली चीज़ों से पूरी तरह वाक़िफ़ व्यापक जर्मन समाज की संलिप्तता, साथ ही युद्ध से कई साल पहले से इन सबके क्रमशः दानवीकरण से स्तब्ध थे। उन्होंने अपना अध्ययन यह समझने के लिए शुरू किया कि आख़िर हुआ क्या, और अडोल्फ़ हिटलर और उसकी नाज़ी पार्टी यह सब कैसे कर पायी? उन्हें यह खोज करनी थी कि क्या जर्मनी में नाज़ी एजेंडा को आगे बढ़ाने के लिए एक सहमत और निष्ठावान अनुयायी समुदाय बनाने की ख़ातिर एक ख़ास तरह का व्यक्तित्व गढ़ा गया? अगर हां, तो कैसे? और क्या उन प्रक्रियाओं को दूसरे समाजों में भी उजागर किया जा सकता है, मसलन उस समय के अमरीकी समाज में? मार्क्सवादी फ्रैंकफ़र्ट स्कूल के संस्थापकों में से एक, थियोडोर डब्लू अडोर्नो और तीन अन्य विद्वानों की लिखी, *द अथॉरिटेरियन पर्सनैलिटी* 1950 में प्रकाशित हुई और आगे के एक दशक से ज़्यादा समय तक बहुत प्रभावशाली रही।

मार्क्सवादियों समेत अनेक विद्वानों को जिस चीज़ ने आश्चर्य में डाला, वह थी, इस काम में परिमाणात्मक शोध प्रविधि की ओर भारी झुकाव, जिसमें एक विशाल आबादी सैंपल को विस्तृत प्रश्नावली दी गयी थी, और अंतःसंबंधों एवं निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए, किंचित गुणात्मक तथा अवधारणात्मक विश्लेषण के साथ, सांख्यिकीय पद्धतियों का उपयोग किया गया था। इसे मार्क्सवादियों ने फ्रैंकफ़र्ट स्कूल और आम तौर पर मार्क्सवादियों के अनुभववाद-विरोधी एवं सैद्धांतिक रुझान से विचलन की तरह देखा था। अलबत्ता, अडोर्नो और उनके सह-लेखकों ने स्पष्ट रूप से यह महसूस किया कि यह परिमाणात्मक तरीक़ा उन्हें पक्षपात के आरोपों से बचायेगा, जिसका ख़तरा अधिक सैद्धांतिक-विश्लेषणात्मक तरीक़े के साथ रहता है।

लेकिन विडंबनापूर्ण ढंग से, इस अध्ययन के निष्कर्षों और प्रविधि को अनेक विद्वानों ने दोषपूर्ण बताया। उनकी राय यह थी कि इसमें पहले से न्यस्त पक्षपात और पूर्व-निर्धारित विचार हैं। आज के नज़रिये से, इस अध्ययन का यह दोष भी बताया जा सकता है कि इसमें पारंपरिक फ्रायडीय समझ और शैशवकालीन मातृक-पैतृक प्रभाव का सैद्धांतिक आधार लिया गया है, जबकि अभी की समाज-मनोवैज्ञानिक समझ संभवतः बाद के विकास-चरणों पर अधिक बल देगी जो वयस्क अवस्था में समाजीकरण की व्यापक

प्रक्रियाओं के दौर में आते हैं।

बावजूद इसके, उस अध्ययन के मुख्य विचार आज भी प्रतिध्वनित होते हैं, यहां तक कि भारत में भी। मिसाल के लिए, इस अध्ययन ने पाया कि अथॉरिटैरियन (निरंकुश सत्तावादी) व्यक्तित्व तानाशाही विचारों और पूर्वग्रहों के प्रति पहले से ही समर्पित होता है, और उसे कई विशेषताओं के स्तर पर समझा जा सकता है, जो मैंने आज के संदर्भ से ग्रहण करते हुए, लेकिन उसके साथ अनुकूलित करते हुए भी, पाठकों के लिए व्याख्यायित करने की कोशिश की है। ये विशेषताएं हैं : परंपरावाद (पारंपरिक मूल्यों को पर्याप्त महत्त्व देना), सत्तावादी समर्पण (समूह में उपस्थित सत्ता की हस्तियों के सामने), सत्तावादी आक्रामकता (उनके प्रति जो ऐसी सत्ता और पारंपरिक मूल्यों का विरोध करते हैं), बौद्धिकता-विरोध, एंटी-इंट्रासेप्शन (कला-कौशल और रचनात्मक कल्पनाशीलता का विरोध), अंधविश्वास, रूढ़ धारणाएं (स्टीरियोटाइप), ताक़त और 'सख़्ती' (जो प्रभुत्व, आक्रामकता आदि से संबंधित हो), विघटनकारी प्रवृत्ति और सिनिसिज़्म (सहकारी मानव प्रकृति के प्रति शत्रुता), प्रोजेक्टिविटी (विदेशियों और 'दूसरों' को ख़तरनाक समझने की धारणा), षड्यंत्र सिद्धांतों (कांस्पीरेसी थ्योरीज़) की ओर रुझान, और अवचेतन संवेगों का प्रक्षेपण, तथा सेक्स को लेकर अतिवादी सरोकार।

पाठक संभवतः इन प्रवृत्तियों और व्यक्तित्व गुणों से मिलती-जुलती चीज़ों की शिनाख़्त संघ परिवार और संबंधित हिंदुत्ववादी ताक़तों में कर पायेंगे। इसे ही विस्तार दें, तो भाजपा-संघ परिवार का विवेक पर, साक्ष्य-आधारित तर्कना और वैज्ञानिक मिज़ाज पर हमला, इन विशेषताओं की एंटी-थीसिस, यानी एक आलोचनात्मक सोच वाले इंसान, की रचना या उसके फूलने-फलने को रोकने का प्रयास जान पड़ेगा। आलोचनात्मक चिंतन के ख़िलाफ़ उनके हमले की भाषा, प्रविधि और प्रतीक-विधान भी इन्हीं सत्तावादी-टाइप विशेषताओं को सींचने और बल देने में जुटे हुए हैं। सबसे पिछड़े हुए सामाजिक-धार्मिक व्यक्तित्वों और संरचनाओं, जैसे साधु-संतों और संप्रदायों के बाबाओं को दिया जाने वाला उनका समर्थन; खाप और अन्य जाति पंचायतों, जो समुदाय के सदस्यों पर संकीर्ण मूल्य लादते हैं, को दिया जाने वाला समर्थन; यहां तक कि उन 'सेक्युलर' सांस्थानिक प्राधिकरणों को दिया जाने वाला समर्थन जो महिलाओं पर पारंपरिक ड्रेस-कोड, सेल-फ़ोन के इस्तेमाल पर पाबंदी, घर या हॉस्टल लौटने के समय की पाबंदी जैसी चीज़ें लागू करते हैं ये सब इस पैटर्न में फ़िट बैठते हैं।

इन बातों का सीधा-सा निष्कर्ष यह है कि विवेक के ख़िलाफ़ संघ परिवार का अनवरत और अडिग अभियान नव-फ़ासीवादी सत्तावादी समाज की दिशा में एक अभियान है। इसका यह भी मतलब है कि भाजपा-संघ परिवार की मुख़ालफ़त के प्रयास को इस पहलू पर केंद्रित होना चाहिए और साक्ष्य-आधारित तर्कना तथा वैज्ञानिक मिज़ाज के पोषण को एक बड़े लक्ष्य के रूप में देखना चाहिए, न कि इस या उस अंधविश्वास और पौराणिक धारणा को ही जस का तस मान लेना चाहिए। उनके उद्देश्य दिन-ब-दिन स्पष्टतर होते जा रहे हैं। उसी तरह हमारे भी होने चाहिए।

मो. 9810098681

अनु. : संजीव कुमार

मो. 9818577833

आततायी मुहिम के नख-दंत-5

बड़े व्यावसायिक घराने और भाजपा

सुरजीत मजूमदार

नवउदारवाद की शुरुआत के बाद, 2014 के लोकसभा चुनावों के साथ ही, राज्य और बड़े व्यावसायियों के संबंध का एक नया दौर शुरू हो गया। बड़े व्यावसायिक घरानों के हित सरकार के सांप्रदायिक व सत्तावादी एजेंडा के साथ दृढ़ता से जुड़ गये और जो साधन व्यावसायिक घरानों से राजनीति को मिले, उसका लाभ मुख्य रूप से सरकार को प्राप्त हुआ।

1990 के दशक में, नव उदारवाद के आगमन के साथ ही ढांचागत रूप से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी जिसमें निगमीय हितों का राज्य पर पहले की अपेक्षा अधिक नियंत्रण स्थापित हो गया था। उदारवाद और अर्थव्यवस्था के खुलने का अर्थ ही था आर्थिक मामलों में सरकार के हस्तक्षेप का सीमित होना, अतः निजी पूंजी आर्थिक वृद्धि और विकास की मुख्य परिचालक बन गयी और राज्य को मजबूरी में ऐसे उपाय अपनाने पड़े जिससे निजी पूंजी के निवेश को प्रोत्साहन मिले और उसकी लाभप्रदता सुनिश्चित हो। दूसरे शब्दों में, राज्य का हस्तक्षेप मुख्य रूप से निजी पूंजी के पक्ष में ही होना था जिसका निहितार्थ था कामगारों, किसानों व आम जनता के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया। इसका नतीजा यह हुआ कि भारत के चुनावी लोकतंत्र के बावजूद जिससे 1991 के बाद सरकारों में कई परिवर्तन हुए क्योंकि जनता अपनी स्थिति से परेशान थी, आर्थिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया लगातार चलती रही। थोड़े से लोगों की ज़्यादा से ज़्यादा आर्थिक उन्नति होती रही, जबकि अधिकांश जनता वेतन में कमी, कृषि संकट और रोज़गार के अवसरों में लगातार कमी से त्रस्त थीं इसका एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि शेष अर्थव्यवस्था की तुलना में निगमीय क्षेत्र में अभूतपूर्व वृद्धि हुई और कॉरपोरेट लाभों में तो और भी ज़्यादा, क्योंकि उदारवादी नीतियों से भारत के कॉरपोरेट क्षेत्र और मध्यवर्ग के कुछ भागों को भी बहुत अधिक लाभ हुआ और भारत के समाज में इन दोनों का ही सामाजिक प्रभाव इनकी संख्या से कहीं अधिक है। इसीलिए उदारवाद का आगमन इतना स्थायी सिद्ध हुआ कि भारतीय राज्य ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

उदारवाद और निजीकरण की प्रक्रिया, न केवल सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों, बल्कि उन उद्यमों की भी जिन पर पहले सार्वजनिक क्षेत्र का प्रभाव था, के कारण भ्रष्टाचार के नये रास्ते खुले और उसके अवसरों में भी वृद्धि हुई। सार्वजनिक परिसंपत्तियों के निजी क्षेत्र में हस्तांतरण या अनेक क्षेत्रों में, जैसे कि दूरसंचार, ऊर्जा, खनन, पेट्रोल व गैस, बैंकिंग, बीमा, एयरलाइंस आदि में निजी क्षेत्र के प्रवेश और फिर नियमन का नतीजा यह निकला कि राज्य को निजी हितों की रक्षा के लिए अपनी निर्णय-प्रक्रिया में जोड़-तोड़ करने का विस्तृत आधार प्राप्त हुआ। इससे बहुत बड़े स्तर पर भ्रष्टाचार और क्रोनी पूंजीवाद को प्रोत्साहन मिला जिससे सदी के अंत के कुछ दशकों में, एक के बाद एक घोटाला होता रहा। अधःसंरचना (इनफ्रास्ट्रक्चर) के विकास में सार्वजनिक व निजी क्षेत्र की साझेदारी अपनाने से और वास्तविक परिसंपत्ति के अंशतः सट्टा-प्रेरित प्रसार से, इस प्रक्रिया को और भी बल मिला। व्यवसाय और राजनीति की दुनिया

आपस में इतनी जुड़ गयी कि धन कमाने की प्रक्रिया सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गयी।

नव-उदारवाद से पोषित आर्थिक वृद्धि का मार्ग, जो सस्ते श्रम के अत्यधिक शोषण पर आधारित था, उसमें इसी कारण अंततः संकट पैदा हो गया। कृषि व ग़ैर-कृषि क्षेत्रों में, रोज़गार के अवसर ढूंढ़ने वालों की संख्या उन्हें पाने वालों की संख्या से कहीं अधिक थी, इसलिए सस्ते श्रम की लगातार आपूर्ति सुनिश्चित थी। इसके फलस्वरूप, बढ़ते हुए उत्पादन की मांग कम रही व जनसंख्या के ऊपर के हिस्सों (आय की दृष्टि से) तक सीमित रही। ऐसी आर्थिक वृद्धि को बनाये रखना कठिन हो गया जिसके अभिन्न अंग थे कॉपोरेट निवेश में वृद्धि और अधिकाधिक वास्तविक परिसंपत्ति यानी फ़्लैट निर्माण क्योंकि इनसे मिलने वाली मुद्रा की सहायता से फ़्लैट/दुकान ख़रीदने वालों की संख्या बहुत कम थी। इसका विशेष कारण यह भी था कि भारत अपने सस्ते श्रम के बावजूद अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में प्रतिस्पर्धा में कहीं ठहरता नहीं था, इसीलिए वह निर्यात-आधारित संवृद्धि का मार्ग नहीं अपना सकता था। बल्कि उसे आयातों से कड़ी स्पर्धा का सामना करना पड़ता था। अतः निगमीय निवेश और विनिर्माण की गतिविधि को बनाये रखने की अक्षमता ने मांग की समस्या को और भी जटिल कर दिया क्योंकि ये दोनों प्रकार के व्यय मांग उत्पन्न करने वाले थे। इस दशक के आरंभ में, असमानता-आधारित आर्थिक संवृद्धि के परिणाम खुले तौर पर सामने आये जिससे आर्थिक वृद्धि दर कम होने लगी, लेकिन सरकार ने इसे छुपाने के लिए एक नयी जी.डी.पी. (सकल घरेलू उत्पाद) शृंखला जारी की। इसके परिणामस्वरूप लाभ की वृद्धि दर तेज़ी से गिरी और इसका समाधान ढूंढ़ने की लालसा ने बड़े व्यावसायिक घरानों को, मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा की गोद में पहुंचा दिया।

बड़े बिजनेस घरानों के दृष्टिकोण के चलते, उनकी बिलकुल यह इच्छा नहीं थी कि अपने लाभ के संकट के समाधान के लिए वे सस्ते श्रम की स्थिति को समाप्त करें। बल्कि ज़्यादा लाभ की लालसा में वे श्रम पर ज़्यादा नियंत्रण और प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। इसी प्रकार वे बिना कोई क़ीमत अदा किये बहुमूल्य भूमि भी चाहते थे। भारत के कॉरपोरेट यह नहीं चाहते थे कि अधिक सार्वजनिक व्यय के वित्त-प्रबंध के लिए उन पर ज़्यादा कर लगाये जायें, बल्कि वे अपना लाभ बढ़ाने के लिए करों में कटौती चाहते थे। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करने से मांग बढ़ सकती थी, लेकिन वे शिक्षा, स्वास्थ्य, अधःसंरचना जैसे क्षेत्रों को निजी पूंजी के लिये खुलवाना चाहते थे ताकि उनसे भी लाभ कमा सकें। इसी प्रकार कॉरपोरेट यह भी नहीं चाहते थे कि किसानों को लाभप्रद क़ीमतें व अन्न पर सब्सिडी दी जाये। यदि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि हो भी, तो वे चाहते थे कि यह बीमा आदि क्षेत्रों में हो जो जनता के पैसे को व्यावसायिक घरानों को हस्तांतरित कर सके या उन्हें मिलने वाली सब्सिडी के रूप में हो। आम तौर पर उनकी सोच यह थी कि सामाजिक क्षेत्र और कल्याणकारी कार्यों पर ख़र्च करने से, अर्थव्यवस्था में सस्ते श्रम को बनाये रखने में ख़तरा है, भारत के बड़े व्यावसायिक घरानों का इस प्रकार के सार्वजनिक व्यय के प्रति बहुत ही शत्रुतापूर्ण रवैया था। एक ओर तो कॉरपोरेट क्षेत्र का यह रवैया था, दूसरी ओर आर्थिक गतिविधियों में धीमी वृद्धि के कारण राज्य को राजस्व-उत्पत्ति में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था।

इस सबका परिणाम यह निकला कि इस दशक में शक्तिशाली हितों द्वारा आर्थिक नीतियों को उस दिशा में धकेलने की पुरज़ोर कोशिश की गयी, जिससे उस कामगार जनता का संकट और भी बढ़ गया जिसका अपने सीमित साधनों पर नियंत्रण तेज़ी से कम हो रहा था। इससे मांग की कमी और उसके फलस्वरूप लाभ के संकट का तो कोई समाधान नहीं हुआ, बल्कि कॉरपोरेट के हित में आर्थिक सुधारों' की मांग और बढ़ गयी। इसके फलस्वरूप कॉरपोरेट हितों और जनता को न्यूनतम सहायता देने में सामंजस्य स्थापित करना और भी मुश्किल हो गया, उसके रोज़गार और आय के संकट का समाधान करना

तो दूर की बात थी। बल्कि इसका अनिवार्य परिणाम या कामगार जनता के हितों पर और भी ज़्यादा तेज़ प्रहार और यह यू.पी.ए. सरकार के अंतिम तीन वर्षों में उसके निष्पादन में प्रतिबिंबित हुआ, जिससे 2014 में मोदी की जीत की पृष्ठभूमि बनी।

2008 के वैश्विक संकट ने नव-उदारवादी आर्थिक नीतियों के प्रभुत्व को अस्थायी रूप से समाप्त किया और सरकारों ने मांग में वृद्धि करने के लिए करों में कटौती और व्यय में बढ़ोतरी की। इसके फलस्वरूप सार्वजनिक ऋण के स्तरों में वृद्धि हुई और अंतर्राष्ट्रीय वित्त के विरोध के कारण सरकारें फिर मितव्ययिता की नीतियों पर वापस आ गयीं। यही कहानी यू.पी.ए. के शासन काल में भारत में दोहरायी गयी। 2004 में वित्तीय दायित्व और बजट प्रबंधन क़ानून के पास होने के बाद राजकोषीय घाटे और सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में लगातार कमी की गयी और 2007-08 तक यह अनुपात बहुत निचले स्तर पर आ गया। आर्थिक संकट के बाद के प्रोत्साहक नीति समूह के चलते, वित्तीय घाटे में वृद्धि के लिए करों में छूट ज़्यादा ज़िम्मेदार थी, न कि व्यय में वृद्धि। बहरहाल, 2011-12 में ये प्रोत्साहक नीतियां वापस ली गयीं और यू.पी.ए.-द्वितीय के शासनकाल की यह मुख्य विशेषता थी। हालांकि बिजनेस-पत्रकारिता ने सरकार पर अपव्ययी होने का दोष लगाया, लेकिन वित्तीय घाटे को कम करने के लिए यू.पी.ए. सरकार ने राजकोषीय घाटे को कम करने के लिए करों में वृद्धि की बजाय व्यय पर नियंत्रण करने का रास्ता अपनाया। यू.पी.ए. ने मनरेगा जैसी योजनाएं शुरू करने पर अपने बारे में जो भाषणबाज़ी की, उसके विपरीत आम आदमी के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाले ख़र्चों, जैसे कृषि व ग्रामीण विकास, उर्वरक, अन्न पर सब्सिडी तथा सामाजिक क्षेत्र पर व्यय में भारी कटौती की। इस स्थिति तथा भ्रष्टाचार घोटालों के चलते, चुनावों में जनता के पास परेशान होने का प्रत्येक कारण था। मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा ने इसी असंतोष को अपने 'अच्छे दिन' लाने और विकास करने के वायदे से भुनाया। इस असंतोष से फ़ायदा उठाने की प्रक्रिया में जो महत्वपूर्ण कारक था, वह था कॉरपोरेट भारत द्वारा अपनी वित्तीय शक्ति और संचार-साधनों की सहायता से मोदी द्वारा सत्ता-प्राप्ति के लिए एकजुट समर्थन। बिजनेस-हितों द्वारा दिये जाने वाले असाधारण समर्थन का कारण आम जनता के समर्थन के कारण से बिलकुल भिन्न था। बड़े कारोबारी इस बात से नाखुश थे कि यू.पी.ए. की राजनीतिक क्षमता उतना करने की नहीं थी जितना वे चाहते थे और उन्हें लगता था कि मोदी का निर्णायक नेतृत्व आर्थिक सुधार' करने में अधिक सफल होगा जिससे उनके लाभ के संकट का समाधान होगा। इस प्रकार आर्थिक विभाजन के दोनों ओर के वर्गों के मिलन ने मोदी को संसद के स्पष्ट बहुमत से प्रधानमंत्री की कुर्सी तक पहुंचा दिया।

एक बार जब भाजपा सत्ता में आ गयी, तो इसने अपने नियंत्रण को मज़बूत करना शुरू किया और भारत के बड़े कारोबारियों ने भी, कभी स्वेच्छा से और कभी डर के मारे, शासक पार्टी की दिशा में ज़्यादा वित्तीय सहायता दी। भाजपा निश्चित रूप से देश की सबसे बड़ी दौलतमंद पार्टी बन गयी और एक नये प्रकार का भ्रष्टाचार पनपने लगा, जिसमें इस तथ्य ने कि पैसा पार्टी के पास गया, न कि सीधे नेता के हाथ में, ने इस पैसे के वास्तविक चरित्र को छुपाने में सहायता की। चुने हुए बिजनेस घरानों को कितने फ़ायदे पहुंचाये गये, यह उनके समर्थन में हुए पक्षपात से स्पष्ट है। भाजपा की राजनीति का मुख्य लक्षण था, न केवल चुनावों में बल्कि लगातार प्रचार की लड़ाई में, धनशक्ति और प्रचार माध्यमों का विस्तृत प्रयोग, पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं का विशाल संगठन चलाना और विरोधी पार्टियों के सदस्यों को ख़रीदना। 'न खाऊंगा, न खाने दूंगा' के नारे का बिलकुल यह अर्थ नहीं है कि बिजनेस की दुनिया और राजनीति के बीच का अपवित्र संबंध अब अतीत की वस्तु हो गया है, बल्कि अब यह आम हो गया है।

भाजपा की सांप्रदायिक राजनीति, राज्य के ढांचे पर इसके नियंत्रण और बड़े कारोबारियों के समर्थन ने मिलकर, इसे कॉरपोरेट के हितों को साधने वाली नीतियों को अपनाने और यू.पी.ए. की अपेक्षा उनके

परिणामों को ज़्यादा अच्छी तरह संभालने की क्षमता दी है। पहली मोदी सरकार को तेल की अंतर्राष्ट्रीय क़ीमतों में गिरावट का लाभ भी फ़ौरी तौर पर मिला जिससे सरकार को तेल पर कर लगाकर अपना राजस्व बढ़ाने और कठिन निर्णयों को स्थापित करने की सुविधा हो गयी। बेशक भाजपा ने ऐसी पुरानी योजनाओं को लागू करने की राजनीति अपनायी जिससे उसका दयालु और निर्धन समर्थक चेहरा सामने आया। इस सबके कारण उसे 2019 के चुनावों में हार की संभावना पर विजय पाने में सहायता मिली। बहरहाल, इससे कड़वी आर्थिक सच्चाई में कोई परिवर्तन नहीं हुआ; बल्कि भाजपा की राजनीति और अर्थशास्त्र ने नोटबंदी, वस्तु व सेवा कर (जी.एस.टी.) तथा पशु-व्यापार में बाधा जैसे कई परिणामों को जन्म दिया जिससे नव-उदारवादी विकास पथ की नीति को और भी बल मिला। ज्यों ही मोदी सरकार ने अपना दूसरा कार्यकाल शुरू किया, अर्थव्यवस्था के और भी बिगड़ने के लक्षण सामने आने लगे। बेरोज़गारी और आजीविका के संकट बेशक और भी गहरे हो रहे हैं और सरकारी आंकड़ों को न जारी करके उन्हें छुपाने की कोशिश की जा रही है। बहरहाल, इसका दूसरा पहलू यह है कि लाभ कमाने का संकट भी बढ़ रहा है जिससे भारत के बड़े कारोबारियों के कई हिस्सों को बहुत नुक़सान हो रहा है। इन परिस्थितियों में यह देखने वाली बात है कि भाजपा जन-भावना को अपने पक्ष में बनाये रखने में कहां तक कामयाब रह सकती है? वह जिस ढांचे पर खड़ी है, वह कहां तक क़ायम रहता है और क्या आर्थिक बदहाली की वास्तविक्ता को बदल सकता है?

मो. 9891568324
अनु. : चंद्रप्रभा
मो. 9873578855

आजकल तो सारा संसार, बिना अपवाद के, दो पक्षों में बंट गया है -- एक ओर वे लोग हैं, जो व्यक्तियों के आर्थिक स्वार्थों को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं, अर्थात् जो जाने या अनजाने, प्रकट या अप्रकट रूप से पूंजीवाद के पोषक हैं, दूसरी ओर वे हैं, जो समाज का कल्याण चाहते हैं, और उसके लिए साम्यवाद का समर्थन करते हैं।

-- राहुल सांकृत्यायन, *दस्तावेज़* से

बेसहारा मज़दूरों की गांव वापसी पर छह कविताएं

25 मार्च से लागू की गयी देशव्यापी तालाबंदी के तुरत बाद दूसरे दिन सुबह से ही बेरोज़गारी और निर्धनता की बेबसी के कारण अपने घर, अपने गांव, अपने अंचल की ओर पैदल जाते लाखों मज़दूरों का महानगरों से पलायन भारत के तथाकथित विकास का असली चेहरा दुनिया के सामने रख देता है। प्रधानमंत्री मोदी ने राज्यों के मुख्य मंत्रियों तथा तमाम विपक्षी दलों से राय मशविरा किये बग़ैर ही 21 दिनों के लॉकडाउन का ऐलान कर दिया। सिर्फ़ चार घंटों का समय दिया गया। कल-कारख़ाने बंद, धंधा-रोज़गार बंद...दिहाड़ी कामगार बेचारे क्या करते? गांव वापसी के अलावा कोई विकल्प नहीं सूझा। फ़रमान जारी करते वक्त़ इतनी बड़ी आबादी पर आने वाली विपदा का कोई अनुमान ही नहीं था। इनकी गांव वापसी के दृश्य संचार माध्यमों के द्वारा अंकित किये जाने लगे और दिखाये गये। कुछ मीडिया कर्मियों एवं हिंदी के प्रमुख कवियों ने अपनी कविताओं में भावात्मक संवेदना से भरपूर उन मज़दूरों की बेचारगी और पीड़ा को व्यक्त किया। विष्णु नागर, नवल शुक्ल, संजय कुंदन, धीरेंद्र तिवारी और देवी प्रसाद मिश्र ने इसी बदहाली को अपनी काव्य संवेदना से गहरी अर्थवत्ता प्रदान करते हुए इन मज़दूरों की व्यथा और निस्सहाय स्थिति को अपनी अपनी कविताओं में व्यंजित किया है और कुछ खौलते सवाल भी उठाये हैं। इनके साथ *द वायर* की मीडियाकर्मी एवं 'जेंडर स्टडीज़' की शोध छात्रा सृष्टि श्रीवास्तव ने अपनी कविता पर अपनी आवाज़ में ही इस परिदृश्य को व्यंजित करने वाला मार्मिक वीडियो बनाया जिसे *द वायर* ने जारी किया। संजय कुंदन की कविता पर अजित अंजुम ने भरपूर फुटेज के साथ वीडियो बनाया है। देवी प्रसाद मिश्र की कविता का ऑडियो शशि भूषण की आवाज़ में बना। इन सभी छह कविताओं में प्रस्तुत दृश्यावली और उठाये गये सवाल विचलित कर देने वाले हैं। ये सभी कविताएं 26 से 28 / 29 मार्च के बीच सृजित हैं। इन रचनाकारों ने अपनी ये रचनाएं *नया पथ* में प्रकाशित करने के लिए दीं, हम उनके आभारी हैं।

यहां यह बताना ज़रूरी है कि अब तक इन पैदल चलने वाले कामगारों के बीच से लगभग बहुत से लोग थकान, भूख, पुलिस बर्बरता, बीमारी या भारी वाहनों से कुचले जाने के कारण मौत का शिकार हो चुके हैं। इनके परिवारजनों के प्रति संवेदना या कोई राहत देने का कोई समाचार अब तक नहीं मिला है।

यह उल्लेखनीय है कि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई एल ओ) ने यह आकलन किया है कि भारत के असंगठित क्षेत्रों में मेहनत-मज़दूरी करने वाले 40-45 करोड़ लोग कोरोना महामारी के दौर में या बाद में भयंकर ग़रीबी के गर्त में गिर जाने वाले हैं। सं.

2020 में गांव की ओर

विष्णु नागर

जैसे आंधी से उठी धूल हो
लोग शहर से गांव चले जा रहे हैं
जैसे 1947 फिर आ गया हो
लोग चले जा रहे हैं
भूख चली जा रही है
आंधी चली जा रही है

गठरियां चली जा रही हैं
झोले चले जा रहे हैं
पानी से भरी बोतलें चली जा रही हैं
जिन्होंने अभी खड़े होना सीखा है
दो क़दम चलना सीखा है
जिन्होंने अभी-अभी घूंघट छोड़ना सीखा है
जिन्होंने पहली बार जानी है थकान
सब चले जा रहे हैं गांव की ओर

कड़ी धूप है, लोग चले जा रहे हैं
बारिश रुक नहीं रही है
लोग भी थम नहीं रहे हैं
भूख रोक रही है
लोग उससे हाथ छुड़ा कर भाग रहे हैं
महानगर से चली जा रही है उसकी नींव
उसका मूर्ख ढांचा हंस रहा है

उसका बेटा चला जा रहा है
मेरी बेटी चली जा रही है
आस टूट चुकी है
आंखों में आंसू थामे
चले जा रहे हैं लोग
बदन तप रहा है
लोग चले जा रहे हैं
चले जा रहे हैं कि कोई
उन्हें देख कर भी नहीं देखे
चले जा रहे हैं लोग
आधी रात है
आंखें आसरा ढूंढना चाहती हैं
पैर थकना चाहते हैं
भूख रोकना चाहती है
कहीं छांव नहीं है
रुकने की बित्ता भर ज़मीन नहीं है
लोग चले जा रहे हैं

सुबह तब होगी
जब गांव आ जायेगा
रोना तब आयेगा

जब गांव आ जायेगा
थकान तब लगेगी
बेहोशी तब छायेगी
जब गांव आ जायेगा
हाथ में बीड़ी नहीं
चाय का सहारा नहीं होगा
800 मील दूरी फिर भी
पार हो जायेगी
गांव आ जायेगा

एक नरक चला जायेगा
एक नरक आ जायेगा
अपना होकर भी
जो कभी अपना नहीं रहा
वह आसमान आ जायेगा
गांव आ जायेगा

एक दिन फिर लौटने के लिए
गांव आ जायेगा
फिर आंधी बन लौटने के लिए
गांव आयेगा
मौत आ जायेगी
शहर की आड़ होगी
गांव छुप जायेगा।

मो. 9810892198

जा रहे हम

संजय कुंदन

जैसे आये थे वैसे ही जा रहे हम
यही दो-चार पोटलियां साथ थीं तब भी
आज भी हैं
और यह देह
लेकिन अब आत्मा पर खरोंचे कितनी बढ़ गयी हैं
कौन देखता है

कोई रोकता तो रुक भी जाते
बस दिखलाता आंख में थोड़ा पानी
इतना ही कहता -
'यह शहर तुम्हारा भी तो है।'

उन्होंने देखा भी नहीं पलटकर
जिनके घरों की दीवारें हमने चमकायीं
उन्होंने भी कुछ नहीं कहा
जिनकी चूड़ियां हमने 1300 डिग्री तापमान में
कांच पिघलाकर बनायीं

किसी ने नहीं देखा कि एक ब्रश, एक पेचकस,
एक रिंच और हथौड़े के पीछे एक हाथ भी है
जिसमें खून दौड़ता है
जिसे किसी और हाथ की ऊष्मा चाहिए

हम जा रहे हैं
हो सकता है / कुछ देर बाद
हमारे पैर लड़खड़ा जायें
हम गिर जायें
खून की उल्टियां करते हुए

हो सकता है हम न पहुंच पायें
वैसे भी आज तक हम पहुंचे कहां हैं
हमें कहीं पहुंचने भी कहां दिया जाता है

हम किताबों तक पहुंचते-पहुंचते रह गये
न्याय की सीढ़ियों से पहले ही रोक दिये गये
नहीं पहुंच पायीं हमारी अर्ज़ियां कहीं भी
हम अन्याय का घूंट पीते रह गये

जा रहे हम
यह सोचकर कि हमारा एक घर था कभी
अब वह न भी हो
तब भी उसी दिशा में जा रहे हम
कुछ तो कहीं बचा होगा उस ओर
जो अपना जैसा लगेगा।

मो. 9910257915

हम निगरानी में हैं

नवल शुक्ल

जब ढाई मिनट एक बड़ा समय था
तब ढाई महीने तक मसखरी थी और चुप्पी
अब हर ढाई घंटे पर मृत्यु का लेखा जोखा है।

ढाई महीने में कितने मास्क बनाये जा सकते हैं
जांच के उपकरण जुटाये जा सकते हैं
सफ़ाई कर्मी, डॉक्टर, नर्स, पुलिस और प्रशासन के लिए
ज़रूरी या कामचलाऊ तैयारियां की जा सकती हैं
मृत्यु के आंकड़ों में बदलते आदमी को
आदमी की मौत मरने की सूची में रखा जा सकता है।

यह सवाल किससे किया जा सकता है
कि इसके लिए कुछ नहीं चाहिए था आंख और जज़्बे के सिवा
ढोंग को त्यागने और संवेदनशीलता के अलावा
और कुछ नहीं चाहिए था
बस हमें नागरिक मानना चाहिए था।

हम निरक्षर भी थे तो हमारा सहज ज्ञान अपार था
सीधी, सहज और सच्ची बातों को सुनने
वैसा व्यवहार करने
और मनुष्य मति में रहने की
हमारी लंबी परंपरा थी
वह आज भी अक्षुण्ण है।
हम अपने ही देश में रहे और ख़तरे से अनजान रहे
हम अपने ही देश के बीराने में
जहां तहां पाये जा रहे हैं
अपनी पोटली संभाले
अपना ठौर खोजते हुए।

हम भरोसेमंद नहीं रहे या कि नागरिक नहीं रहे
यह किसे पता होगा, इस पर बात होगी
पर हम निरापद नहीं हैं
हम निगरानी में हैं, यह सबको पता है।

क्या हमारा भविष्य निगरानीशुदा भविष्य होगा
क्या हमारा समय बदल रहा है
जिसमें से सरकती जा रही हैं हमारी बनायी जगहें
क्या हम अपनी ही जगहों पर हैं हतप्रभ
क्या सभी दीवालें टूट गयीं कि टूटने को हैं
क्या हम जीने के लिए फिर से परिभाषित होंगे
स्वीकार, अस्वीकार या दरकिनार की तरह।

सब कुछ खुला हुआ है, दिखायी देता हुआ पारदर्शी
जो सिर्फ़ भूख नहीं, लाचारी और बेबसी से भी कुछ अधिक है
नागरिकता, स्वतंत्रता और परस्पर का आख़िरी समय बीत रहा है
कुछ है सर्वाधिक दख़ल और अधिकार सा कुछ है
कुछ संप्रभु सा कुछ नियामक सा कुछ है
हमें खाद पानी की तरह देखता हुआ।

मो. 9425636550

महामारी

धीरेंद्र तिवारी

घर के अंदर रहो
और दुनिया के बारे में सोचो।
कोरोना वायरस का टीका आज नहीं कल खोज लिया जायेगा।
लेकिन उससे अधिक भयावह
बीमारी है, निर्धनता।
इस निर्धनता का वायरस खोजो।
क्योंकि कोई महामारी हो
मरते ग़रीब ही हैं।
क्योंकि कोई महामारी न हो, तब भी
मरते ग़रीब ही हैं।
किसी न किसी वजह से
मरते ग़रीब ही हैं ।

जो बच गये होते हैं, वे अभागे
निर्धनता के अनगिनत दुख उठाये
जीते हैं, सालों साल।
और थोड़े से लोग इन्हीं के श्रम से

होते रहते हैं निरंतर मालामाल।

खोजो, इस सिसकती निर्धनता
और बजबजाती संपन्नता का
ठीक ठीक वायरस खोजो।

घर में रहो, लेकिन
दुनिया के बारे में सोचो ।

मो. 8126477516

अगर हमने तय किया होता कि हम नहीं जायेंगे

देवी प्रसाद मिश्र

(यह कविता लाखों श्रमजीवियों के साथ चार कवियों संजय कुंदन, विष्णु नागर, नवल शुक्ल और धीरेंद्र तिवारी के लिए जिनके प्रति मैंने फ़ोन पर बेहतरीन कविताएं लिखने के लिए कृतज्ञता ज़ाहिर की। यह कविता उन चार उत्कृष्ट कविताओं की संवेदना और समझ में एक और पक्ष को जोड़ने की विनम्रता भर है -- देवी प्रसाद मिश्र)

अगर हमने तय किया होता कि हम वापस नहीं जायेंगे
तो हम पूछते कि देश के विभाजन के समय जैसे इस पलायन में
कौन किस देश से निकल रहा था और किस देश की तरफ़ जा रहा था-
हैव और हैवनॉट्स के हैबतनाक मंज़र में।

तब हम पूछते कि हम युद्ध के हताहत शरणार्थी थे
या स्वतंत्रता, समानता, और बंधुत्व का वादा करने वाली
संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकता।

तब हम पूछते कि सौ करोड़ और पांच सौ करोड़ के
प्रतिष्ठान और स्थापत्य की रक्षा के लिए हमें
गार्ड और गेटकीपर के तौर पर एक दिन के लिए
दो और तीन सौ रुपये क्यों दिये जाते थे।

अगर हमने तय किया होता कि हम नहीं जायेंगे तो हम बताते
कि मेज़ पर किताब रखकर पढ़ने से कम बड़ा काम नहीं है मेज़ बनाना।

तब हम पूछते कि सिर पर ईंट ढोना

एक अच्छे घर में रहने की हक़दारी और दावेदारी
को किस तरह कम कर देता है।

तब हम बताते कि शहर की रौशनी को ठीक करने के बाद
अपने घर के अंधेरे में लौटते हुए
हमारा दिल कितना फटता था
और यही लगता था कि सारे शहर की बत्ती की सप्लाई प्लास से काट दें।

तब हम बताते कि घर लौटकर टीवी पर हम
अंगिया चोली वाला भोजपुरी गाना या सपना चौधरी की कमर नहीं देखना चाहते थे
हम भोजपुरी और हरियाणवी में देखना चाहते थे सलीम लंगड़े पे मत रो।

तब हम बताते कि चैनलों और अख़बारों में प्रियंका-जोनास, शिल्पा शेट्टी राज कुंद्रा, सोनम कपूर-आनंद आहूजा की निस्सार पेड इंस्टाग्राम प्रेमकथाओं और तैमूर, रूही और यश की आभिजात्य मासूमियत से हम ऊबे हुए हैं। और क्यों लापता हैं नीम के नीचे खलिहान में किये गये हमारे प्रेम के वृत्तांत और काजल लगे धूल में सने हमारे बच्चों की दरिद्र अबोधताओं के काले सांवले विवरण घेरती जाती इस चमकीली गिरावट में।

मां क़सम, हम अपने चीथड़ों से चमकते परिधानों को लज्जित कर देते।
हम सरकार को अनफ्रेंड कर देते।

हम अमिताभ बच्चन से कहते
कि सत्ता की थाली मत बजाओ
बाजा मत बनो, अकबर बनो, कैंड़ेदार इलाहाबादी बनो
इलाहाबादी असहमति की अकड़, मनहूसियत और मातम।

तब हम नितिन गडकरी से कहते कि चचा,
यह सावरकर मार्ग हमें हमारे विनाश की तरफ़ ले जाता है
हम नहीं जाने वाले इस हेडगेवार पथ पर।

अगर हमने तय किया होता कि हम गांव नहीं जायेंगे तो हम बताते कि हमारे बच्चे स्कूल जा सकते हैं, हमारी पत्नी कहानी पढ़ सकती है, हम छुट्टी ले सकते हैं और हम यमुना के तट पर पिकनिक के लिए जा सकते हैं अगर उसके काले जल से शाखाई हिंदुत्व के घोटाले की बू न आ रही हो तो।

अगर हमने तय किया होता कि नहीं जायेंगे हम तब हम यह गाना गाते :

भूख ज़्यादा है
मगर पैसे नहीं हैं

सभ्यता हमने बनायी
खिड़कियां कीं साफ़ हमने
की तुम्हारी बत्तमीज़ी माफ़ हमने

जान लो ऐसे नहीं वैसे नहीं हैं
भूख ज़्यादा है मगर पैसे नहीं हैं

डस्टबिन हमने हटाये
वह वजह क्या जो हमें कमतर दिखाये
क्यों लगे वे, आदमी जैसे नहीं हैं
भूख ज़्यादा है मगर पैसे नहीं हैं

अगर हमने तय किया होता कि हम नहीं जायेंगे तो हम पूछते कि क्यों
अख़बार बांटने वाले के घर का चूल्हा जल जाये तो ग़नीमत
जबकि ख़बर का धंधा करने वाला अरबों के धंधे में लिथड़ा होता है
और रोज़ थोड़ा थोड़ा धीमा धीमा देश जलाने का काम करता रहता है।

अगर हमने तय किया होता कि हम नहीं जायेंगे तो हम नोबेल पाने वाले अर्थशास्त्री अभिजीत बनर्जी से पूछते कि सारे मामले को जो है सो है और थोड़ा-बहुत रद्दोबदल वाले अंदाज़ में ही क्यों देखते हो- क्यों सही बात नहीं कहते कि यह ढांचा खो चुका है अपनी वैधता।

मो. 9560976818

ये कौन हैं

सृष्टि श्रीवास्तव

ये कौन हैं ये कौन हैं जो आते हैं हमारे बड़े शहरों को शहर बनाने
वो सड़कें, दफ़्तर, संसद, स्कूल बनाने,
जिनमें इनके बच्चे कभी न पढ़ पायेंगे
इन स्कूलों में पढ़कर आप और हम जो कुछ बने
ये बच्चे नहीं बन पायेंगे
ये जानते हैं ये सब, फिर ये क्यों आते हैं
इन्हें आना ही पड़ता है।

वो सड़कें बनाने, फ़्लाइओवर बनाने
जिस पर आप और हम रोज़ निकलते हैं अपनी मंज़िलों की ओर
तेज़ रफ़्तार से, कभी लॉन्ग ड्राइव पर भी जाते हैं,
हमारी कार और कैब किसी मोड़ पर मिलती है
इनकी साइकिलों और ठेलों से,
कभी-कभी कुछ बच्चे आ भी जाते हैं
हमारी कार के शीशे साफ़ करने, या पेन बेचने
सिग्नल पर गुलाब, पेन, रूमाल और तिरंगा बेचने के लिए
क्यों आते हैं ये लोग, इन शहरों में
इन्हें आना ही पड़ता है।

ये कौन लोग हैं जो 400 रुपये में ऑटो
और 300 रूपये में ई-रिक्शा किराये पर लेते हैं
और फिर आपकी मैट्रो के बाहर खड़े होकर
आपको बैठाने के लिए आपस में झगड़ते हैं
जो सबसे कम दाम लगाये, हम उसपे बैठते हैं
ये 14 घंटे इन शहरों की सड़कें नापकर, किराया देकर,
सीएनजी निकाल कर कमा पाते हैं बस 100-150 रुपये
इतने से पैसों के लिए ये क्यों आते हैं
सब छोड़कर
अपना गांव और घर
गांव में इतना भी कमाना अब मुमकिन नहीं
इसलिए ये आते हैं
इन्हें आना ही पड़ता है।

ये रखते हैं आपके घर का ध्यान,
बनाते हैं आपका खाना
जिससे आप दफ़्तर जा सकें
ये लोग बनाते हैं दफ़्तर जहां इन्हें कभी कोई नौकरी नहीं मिलेगी,
ये बनाते हैं बड़े-बड़े निजी अस्पताल जहां इन्हें कभी इलाज नहीं मिलेगा
ये बनाते हैं संसद जहां इनके ख़िलाफ़ क़ानून बनेंगे,
फिर भी ये यहां आते हैं और ये सब बनाते हैं,
क्योंकि इन्हें आना ही पड़ता है।
अगर हज़ारों किलोमीटर पैदल लौटती इनकी तस्वीर
हमें अचानक आज बहुत विचलित कर रही है तो
हम जान लें ये भी कि ये यहां अपनी मर्ज़ी से नहीं आये थे

न ही किसी बुलेट ट्रेन पर बैठकर
न ही किसी ट्रेन और बस की सीट पर आराम से बैठकर
ये आते हैं किसी तरह जनरल डिब्बों में सामान की तरह ठुसकर
ट्रेन के दरवाज़ों पर लटककर
और अगर ग़लती से स्लीपर डिब्बे में चढ़ जायें तो जुर्माना देकर
ये बस आते हैं
इन्हें आना ही पड़ता है।

इनके पास 'वर्क फ्रॉम होम' करने के लिए
वर्क और होम दोनो नहीं हैं
इनके पास 21 दिन घर की लक्ष्मण रेखा न लांघने का विकल्प नहीं है
ये रोज़ कमाने-खाने वाले लोग हैं
इनके पास वो कमरे नहीं हैं
जहां बैठकर ये चूज़ कर सकें कि क्या करना है
या कुछ नहीं भी करना है
ये तो बस काम करने और दो वक़्त का खाना जुगाड़ने के लिए आते हैं
इन्हें आना ही पड़ता है

अगर हफ़्ता भर घर में रहना बहुत भारी लगा हो
तो एक बार महीनों से ही कर्फ़्यू में रह रहे कश्मीर के बारे में सोचिए
अगर कुछ दिनों का क्वारेंटाइन सेंटर नामुमकिन लगा हो
तो एक बार डिटेंशन सेंटर का डर सोचिए
अगर कुछ भी काम नहीं है करने को
तो इन लोगों के बारे में सोचिए
उस स्कूल में आपने जो संविधान पढ़ा है
उसी के बारे में सोचिए
अगर ट्रैफ़िक पर पेन आपने इनसे ख़रीदा है तो कुछ उनके बारे में लिखिए
और बताइए हमें
कहां से आते हैं, क्यों आते हैं
किन हालात में आते हैं और ऐसे पैदल चलके क्यों जा रहे हैं...

मो. 9560210332

तीन कविताएं

मंगलेश डबराल

1. जो डराता है

जो हमें डराता है
वह कहता है डरने की कोई बात नहीं है
मैं किसी को डरा नहीं रहा हूं
जो हमें डराता है
वह हवा में अपनी उंगली तान कर कहता है
किसी को डरने की ज़रूरत नहीं है
वह अपनी मुट्ठियां भींच कर हवा में लहराता है
और कहता है तुम डर तो नहीं रहे हो

जो हमें डराता है
वह अपनी तीखी ठंडी आंखों से हमें घूरता है
और देखता है कौन-कौन डर रहा है
लोग जब डरने लगते हैं वह ख़ुश होने लगता है
और हंसते हुए कहता है डरने की कोई वजह नहीं है
जो हमें डराता है
वह ख़ुद डर जाता है
जब वह देखता है कि कोई डर नहीं रहा है

2. पुराना अपराधी

पुराना अपराधी पुराना हो चुका है
अपनी पुरानी देह के साथ वह एक पुराने बंगले में रहता है
अब नये अपराधी आ गये हैं पुरानों से ज़्यादा कुटिल और खूंख़्वार
उनका स्वागत किया जा चुका है
उन्हें सारी चाबियां सौंपी जा चुकी हैं
पुराना अपराधी कहीं पीछे छूट गया है

जैसे उत्सव के बाद छूट जाते हैं प्याले प्लेटें और गिलास
पुराना अपराधी अपनी मूंछों के नीचे हाथ रखता है
और अकेलेपन का कवच पहन लेता है
वह चाहता है कि इतिहास में एक रहस्य की तरह दर्ज हो जाये
एक गुत्थी जिसे सुलझाने के लिए
शोध किये जायें पत्रकार किताबें लिखें
उसे ऐसा संत माना जाये जिसे समझा ही नहीं गया
लेकिन इतिहास उसकी नींद को खटखटाता है
उस पर दीवारें पलस्तर और ईंटें गिराता है
गुंबद ढहते हुए आते हैं और धूल उठती रहती है

वह इस दुःस्वप्न से उठ कर धूल झाड़ कर खड़ा होता है
और साफ़ कपड़े पहन लेता है
वह अपने पुराने बंगले का मुआयना करता है
जिसकी दीवारें भुरभुरा रही हैं पलस्तर झड़ रहा है
वह सोफ़े पर बैठ जाता है और सोचता है
नये अपराधियों को उसकी कोई फ़िक्र नहीं है
लेकिन पुराने अपराधी ज़रूर भरोसा बंधाने आयेंगे

3. मुक्तिबोध स्मृति-1

मैं तुमसे कभी मिल नहीं पाया
मेरे साथ के बहुत से लोग तुमसे नहीं मिल पाये
हम सिर्फ़ उस अंधेरे से मिले
जो तुम्हारे जाने के बाद और ज़्यादा अंधेरा था
हम उस विकराल जुलूस से मिले जो मृत्यु-दल की तरह था
कहीं ज़्यादा विकराल
हमने डोमा जी उस्ताद को देखा
जो उस शोभा-यात्रा में आगे-आगे चलता था
बल्कि कई डोमा जी उस्ताद थे छोटे-छोटे उसके बगलगीर
और कोई था जो दिखायी नहीं देता था
सिर्फ़ सुनायी देता था
ज़िंदगी के अंधेरे कमरों में बेचैन
चक्कर लगाता था वह बार-बार लगातार
लेकिन उसे दर्ज करने वाला अब कोई नहीं था

मो. 9910402459

दो कविताएं
कुलदीप कुमार

1. कौन?

मुझे अब
कुछ भी विचलित नहीं करता
न तुम्हारा आना
न तुम्हारा जाना
न तुम्हारा मौन
जो मुझे देखकर पूछता है
कौन?'

मैं ख़ुद भी अक्सर यही पूछता हूं
किसी भी दिशा से उत्तर नहीं आता

कौन हूं?

भारतीय हूं तो मेरा भारत कैसा है?
कहां है?
उसका चेहरा जो पहले नज़र आता था साफ़-साफ़
अब इतना धुंधला-सा क्यों दिखता है?
वाल्मीकि को फिर से
डाकू क्यों कहा जा रहा है?
कालिदास के मुंह पर इतनी कालिख
क्यों पुती हुई है?
व्यास और गणेश में क्यों नहीं बन रही?
राधा से मिलने जाने पर
कृष्ण क्यों फिर से कंस के कारागृह में
पहुंचाये जा रहे हैं?
चीरहरण के बाद
द्रौपदी पर ही अभियोग क्यों लग रहे हैं?

मैं लोकतंत्र का स्वाधीन नागरिक हूं
अगर इस पर विश्वास करूं
तो मन में सवाल उठता है कि
मेरी संसद कैसी है?
कहां है?
क्या कर रही है?
इतनी ख़ामोश और अदृश्य क्यों है
कि उसे खोजना पड़ रहा है?

कभी मुझे अपने कवि होने पर
गर्व था
अब तो हमेशा शंका से घिरा रहता हूं
हूं या नहीं हूं?
अगर सचमुच हूं तो फिर
कोई ऐसी कविता क्यों नहीं लिखता
जो देशवासियों के दिल में उतर सके
उनके दिल में कुछ हलचल तो मचा सके?

लिखूं कैसे?
मैं खुद ही विचलित नहीं होता
किसी भी घटना से
न तुम्हारे आने से
न तुम्हारे जाने से
न तुम्हारे मौन से
न तुम्हारे 'कौन' से

अब तो दिल में फांस की तरह
हर क्षण करकती ये बातें
इतनी छोटी लगती हैं
कि
शर्म आती है
जहां अपने ही देश में लोग यातना शिविरों में
मरने के लिए ठूंसे जा रहे हैं
किसी की कोई पहचान नहीं बची है
जहां गांधी देशद्रोही और गोडसे देशभक्त है
वहां मैं अपने ही
टुच्चे से दर्द में उलझा हुआ हूं!

हालत तो यह है कि
अब
दिल भी
उसी को माना जाता है
जिसे कुछ भी छूकर
न गुज़र सके
किसी मुझ जैसे का गुज़र जाना भी!

2. रावण

अम्मा बताया करती थीं

रावण इसलिए नहीं मारा गया
क्योंकि उसने सीता का अपहरण किया
बल्कि इसलिए मारा गया
क्योंकि वह स्वर्ग तक
सोने की सीढ़ी लगाना चाहता था
और चराचर सृष्टि पर
राज करना उसका सपना था

अम्मा का कहना था
सब कुछ पाने की हवस ही
रावण को ले डूबी
वरना सीता का हरण तो कोई ऐसी
बड़ी बात नहीं थी
इंद्र समेत अनेक देवताओं ने
ऋषि-मुनियों ने
न जाने कितने बलात्कार किये

राम ने भी लक्ष्मण से
रावण की सुंदर-सलोनी बहन के नाक-कान कटवा कर
उसे जीवन भर के लिए कुरूप बना दिया था
क्या गुज़री होगी
बेबस शूर्पणखा पर?

प्रेम का ऐसा घृणित प्रतिदान
कभी सुना है?

रावण ने तो सीता को छुआ तक नहीं

महान पंडित, अप्रतिम वीणावादक, अतुलित बलशाली योद्धा
सत्ता के मद में चूर
रावण!

अपनी सोने की लंका
खुद ही दुर्दम्य लालसा की आग में राख कर दी
हनुमान तो केवल निमित्त थे
लालसा के बारूद में चिंगारी फेंकने वाले

अम्मा यह भी कहती थीं

सब कुछ पाने की लालसा रखने वाले को
कुछ भी नहीं मिलता
उल्टे
जो उसके पास है
वह भी चला जाता है

राम से तो सब सीख लेने का नाटक करते हैं
लेकिन रावण से कोई सीख नहीं लेता
उसी के रास्ते पर चलते हैं
हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल, जॉर्ज बुश, ओसामा बिन लादेन
विश्वयुद्ध, फ़िलिस्तीन, इराक़, सीरिया, अफ़ग़ानिस्तान
सभी में दशानन का अट्टहास गूंज रहा है

साधु का रूप बनाकर
रावण ने सीता को हरा था
अब तो वह साधु के साथ-साथ
राम का रूप भी बनाने लगा है

कौन वध करेगा उसका?

उसकी सर्वग्रासी लालसा!

मो. 9810032608

तीन कविताएं

लीलाधर मंडलोई

1. ये कंठ से उठती नागरिक आवाज़ें

ये कंठ से उठतीं नागरिक आवाज़ें हैं
महज़ नारे नहीं
सुनो ग़ौर से
इन आवाज़ों में
हिंदू-मुस्लिम और दीगर विभाजन नहीं

किसी विभाजन के ख़िलाफ़
इन आवाज़ों में
संविधान का आदर्श है

सुनो ग़ौर से
ये आवाज़ें कर सकती हैं
नेस्तनाबूद
तुम्हारे राष्ट्रवाद के ख़्वाब को।

2. मेरे प्रेम की नागरिकता

जो सच है वही सच
कोई बंद राजनीतिक रास्ता
जुमे की नमाज़ से जुड़ जाये
यह मुमकिन है
मेरे मन से नहीं

मेरे प्रेम की नागरिकता
भगवा नहीं है
वह रूमी, खुसरो की है
जिसमें इंसानियत का गान है

हिंदू सजातीय और मुसलमान का नहीं

मैं तमाम लोगों से हाथ जोड़कर कहता हूं
अगर सड़कों पर निकले हो
तो भूलकर हिंसा और राजनीति
मांगो सिर्फ़ और सिर्फ़
प्रेम के संविधान में
प्रेम की नागरिकता

इस नागरिकता को खोना
दुनिया में मनुष्यता को
द्रौपदी की तरह दांव पर लगाना है

३. सबसे अधिक ज़रूरत

जबकि इस समय सबसे अधिक ज़रूरत है
आंखों को धोखादेही से बचाने की
बदज़ुबानी से बरकने और
दूर होते शख़्स को आगोश में भर लेने की

जब सबसे ज़्यादा ज़रूरत है
फ़रेबी सत्ता के तिलिस्म तोड़ने की
कुहासे से आगे सच को पहचानने की और
प्यार से नफ़रत को जीत लेने की

जबकि सारे इंतज़ार सूखते पत्तों में
तब्दील हो रहे हैं और
नये पत्तों की आमद संदेह में है
हरे के बिना इस कायनात का सोचो

ख़ुदा के वास्ते लौट आओ अधबीच से
बिन तुम्हारे सम पर आता नहीं कोई राग
कोई चित्र पूरा नहीं होता
कोई आंदोलन कभी पूरा नहीं होता

कोई झूठ सच में आकार नहीं लेता

मो. 9818291188

दो कविताएं

जयप्रकाश कर्दम

1. वे हुक्मरान हैं

वे हुक्मरान हैं
वे जो चाहे कर सकते हैं
दिन को रात
रात को दिन बता सकते हैं
हामी भी भरवा सकते हैं
जन-मानस से
अपने शब्द, कृत्य और निर्णयों पर
प्रचार का पूरा तंत्र है उनके पास
खुद को सही
सिद्ध और प्रचारित करने का
वे खेलते हैं दिमाग़ों से
क़ब्ज़ा करते हैं दिमाग़ों पर
वे जानते हैं कि
दिमाग़ ही है सारी रार
तक़रार और ख़ुराफ़ातों की जड़
दिमाग़ ही करता है
विज्ञान, तर्क, धर्मनिरपेक्षता और
लोकतंत्र की बातें
दिमाग़ ही करता है
समानता, स्वतंत्रता, न्याय और
मानव-अधिकारों की बातें
दिमाग़ ही रट लगाता है
संविधान और संवैधानिक मूल्यों की
दिमाग़ ही समझता है
सत्ता की कुटिलताओं को
और करता है विरोध

नागवार गुज़रता है सत्ता को
अपना विरोध
देशद्रोही लगते हैं उसे
अपने प्रति असहमति जताने वाले
कुचलते हैं बेरहमी से
असहमति के स्वरों को और
ठहराते हैं उसको भी जायज़
नादान हैं सत्ता से असहमति जताने वाले
उसकी नीतियों का विरोध करने वाले लोग
नहीं समझते इतनी सी बात कि
असहमति से नहीं चलता देश
सहमत होना पड़ेगा सबको
देश के लिए
जो असहमत होंगे
नहीं बंद करेंगे अपनी
असहमति की आवाज़
बंद कर दी जायेगी उनकी आवाज़
देश की ख़ातिर
ज़बरन
और उसके ज़िम्मेदार हुक्मरान नहीं
वे लोग खुद होंगे
जो नहीं चलेंगे सत्ता के साथ
समर्थन नहीं करेंगे
सत्ता की नीतियों और कार्यक्रमों का
साथ नहीं देंगे
सत्ता के झूठ का
नहीं कहेंगे रात को दिन
और दिन को रात।

2. जामिया की लड़कियां

निहत्थी ललकार सकती हैं
हथियारबंद पुलिस को
उसके जुर्म और ज़्यादतियों के ख़िलाफ़
रोक सकती हैं ज़बरन घुसने से
हॉस्टल के अंदर
अड़ जाती हैं चट्टान सी
उनकी बंदूक़ों के सामने

जामिया की लड़कियां
धर्म और संप्रदाय की सीमाओं को
धता बताकर
हाथों में तिरंगा थामे
निकल पड़ती हैं सड़कों पर
कंपकंपाती ठंड से मुक़ाबला करती हुई
करती हैं मार्च
उठाती हैं आवाज़
अन्याय के विरुद्ध
हिंसा नहीं करती
स्वागत करती हैं फूल भेंट करके
उन पर बेरहमी से
लाठी बरसाने वाली पुलिस का
करती हैं ड्यूटी पर तैनात
पुलिसकर्मियों की भूख-प्यास की परवाह
देती हैं उन्हें खाना और पानी
उदाहरण बनती हैं
प्रेम और सद्भाव का
जामिया की लड़कियां
अड़ती हैं, लड़ती हैं
बचाने को संविधान
बचाने को देश
बचाने को मनुष्य और
मानव-अधिकार।

मो. 9871216298

तुम कहां के हो?

हरीश चंद्र पाण्डे

पूछ ही लेते हैं
दो लोग जब पहली बार मिलते हैं

'आप कहां के हुए?' या
'आपका घर?'
जैसे 'आपका शुभ नाम?'

यही होता आया है
सौजन्य टूटा या परंपरा जो कहिए
अबकी ऐसा नहीं हुआ
उससे जब पूछा गया, 'तुम कहां के हो?'
उसने कहा, 'जहां का मैं हूं
वहां एक छोटी नदी बहती है
वहां का मूल निवासी है
या फिर उसके पड़ोसी– पहाड़, जंगल

नदी, पेड़-पौधों को फलता-फूलता देख बहती रहती है
नदी को देख पेड़-पौधे फलते-फूलते रहते हैं
हम सब इन सबको देखकर बड़े हुए हैं
पर इनकी तरह न मेरा उद्गम है, न मेरी जड़ें
मैं पीढ़ियां बदल-बदलकर घूमता रहता हूं

मेरे दादा कहते थे हमारे पूर्वज कानपुर के आसपास से आये थे
मेरे पड़ोसी पंत कहते हैं हम तो महाराष्ट्र से आये हैं
गांव में एक दुकान ठाकुर साहब की है
वे कहते हैं–हम तो भई राजस्थान से आये हैं
उनके दोस्त राणा साहब कहते हैं हम राजस्थानी नहीं नेपाली राणा हैं

उसने कहा, मैंने गांव में घर बनाने वाले ओड़ से कभी पूछा नहीं उसके पूर्वजों के बारे में
एक दिन शब्द के रूप में मिल गया एक ओड़ निर्मला पुतुल की संथाली कविता में
मैंने चूड़ी की दुकान वाले अब्दुल से भी यह सब नहीं पूछा

गांव के उन दो परिवार वालों के बारे में क्या कहूं—जो दूर से ही पहचान लिये जाते हैं
जिनके बाल सुनहरे और बहुत घुंघराले हैं
इन्हें अपनी दो-तीन पीढ़ियों से पीछे का कुछ भी मालूम नहीं
हां, राहुल सांकृत्यायन इन्हें देखकर ज़रूर कह गये
ये मध्य एशिया से आये हुए आर्य हैं

उसने कहा, जब मैं थोड़ी ऊंचाई से अपने गांव को देखता हूं तो वह
एक छतनार पेड़-सा दिखता है
उसके घर जैसे शाख़ों पर बैठे चहकते पंछी हैं

वह हुलसकर मोबाइल निकालकर अपने गांव को दिखाने लगा
लेकिन नज़र कमज़ोर होने के कारण मैं ठीक से देख न सका उसका गांव
मेरे धुंधलेपन को देखकर उसने अपने गांव की तस्वीर को ज़ूम किया

गांव की तस्वीर फैल रही थी
वह एक गांव दिखा रहा था। मैं एक देश देख रहा था
उसने मुझसे ही पूछ लिया
'तुम कहां के हो?'

मो. :9455623176

शाहीन बाग़ की औरतें

चैतन्य मित्र

वो निकल आयी हैं घरों से बाहर
वैसे नहीं, जैसे अपने अंडों को उठाये निकल आती हैं चींटियां
वैसे भी नहीं,
जैसे अपने बच्चों को सीने से चिपकाये निकल आती हैं बंदरियां
वो तो आयी हैं उमड़ती-घुमड़ती बंधी नदी के विद्रोह सी
तनी मुट्ठियां हवा में लहराते
अपने बच्चों के मुक्तिराग में अपनी आवाज़ मिलाते
सत्ता की बंदिशों को तोड़ते-छोड़ते
शाहीन बाग़ की औरतें

उनके हाथों में इंक़लाबी असबाब है
उनकी आंखों में सवालों का सैलाब है
उनके होंठों पर ज़ुल्मतों का जवाब है
उनके हर जिस्म में बसता इंक़लाब है

वो जो मांएं हैं
उनके नौनिहाल आज दूध-बिस्किट नहीं मांग रहे
वो आज़ादी के तराने गा रहे हैं
सर्द हवाओं की सिहरन में उनकी उंगलियां साज़ बनी हैं
वर्षों से हासिल दर्द की कराहें
आज सरगमी आवाज़ बनी हैं

तुम सदियों बीतें चंगेज़ी लम्हें याद करो
कभी कली/तो कभी गुलिस्तां बरबाद करो
वो भूल आयी हैं सारी तक़रारें मुल्क के सवालात में
साझा संघर्ष व साझी शहादत के ख़यालात में
अपने अंदर के मुहब्बती जज़्बात को
उन्होंने सड़कों पर कोलतार सा पसार दिया है

घर-आंगन के तंग दायरे को आसमान सा विस्तार दिया है
सुन सकते हो तो सुनो
गुन सकते हो तो गुनो
टीस जो बजती रही मुल्क के ज़ख़्मों में
आज ढल रही है आज़ादी के नग़्मों में

साधो, यह घात नहीं
जंगे मुकम्मल आज़ादी की शुरुआत है
उनके दर्दीले रदीफ़-काफ़िये में मेरी-तेरी भी बात है

आओ, साथियो, आओ!
जुल्मतों के इस दौर में जनता को जनता के साथ होना है
जात-धर्म तो सत्ता का रोना है...
चीख़-चीख़ कर पुकार रही हैं
विभाजनकारी दीवारें तोड़ते-फोड़ते
शाहीन बाग़ की औरतें।

अपने वजूद का ऐसा एहसास ग़ज़ब है
सत्ता की तपिश में पिघलकर
लहू में बदलते जज़्बात का यह इज़हार ग़ज़ब है
तुम उन्हें जात-धर्म के दायरे में समेटने का जतन करते रहो
अपनी ऊंचाइयों का ख़ुद ही पतन करते रहो
वो तो बहुवर्णी हैं जादूगरनी हैं
तुम गोली चलाओगे
वो तुम्हारे कारतूसों को सुर्ख़ गुलाबों में बदल देंगी
वो जब दुखराग गाती हैं / वक़्त की भुजाओं में फड़कन होती है
उनके गगनभेदी नारों से पैदा कंपन से
दरअसल हवाओं में धड़कन होती है

सचमुच, जो है / सब अद्‌भुत है—अद्वितीय है
न ऐसा सोचा गया / न ऐसा समझा गया
कि कल की पर्दानशीं
एक दिन बदलाव की इबारतें लिख देंगी
परंपराओं की बर्फ़ीली सिल्लियां तोड़ते-तोड़ते
शाहीन बाग़ की औरतें

मो. 9608072335

तीन कविताएं

विवेक निराला

1. शायद

रामदास को पता था
कि उसकी हत्या होगी।
शायद उसे न पता रहा हो
शायद हत्यारे को पता रहा हो
शायद रघुवीर सहाय को पता रहा हो
या प्रधानमंत्री को।

शायद तुम्हें पता हो
कि अभी यहां से जाने के बाद
तुम्हारे साथ क्या होगा
हमारे साथ क्या होगा
शायद सभाध्यक्ष को पता हो
या संचालक को।

शायद आप में से किसी को पता हो
शायद रक्षामंत्री को
शायद गृहमंत्री को
अब मुख्यमंत्री को तो ज़रूर पता होगा
उनके सूबे की बात जो ठहरी!

यह जो शायद है
इसमें थोड़ा सा यक़ीन है
संदेह है, अनुमान है
एक राष्ट्रगान और एक संविधान है
मगर, कवि की अब भी ख़तरे में जान है।

2. तथ्य

एक आदमी अपने चार बीघा
खेतों में हाड़ तोड़ मेहनत
के बाद हासिल कर्ज़ अपने झोले में
सहेजे आत्मघात की तरफ़
चला जा रहा है।

एक औरत अपने लंबे
विश्वास से बाहर
लुटती-पिटती लौट रही है
भीतर के दुःखों को सम्हालती।

एक बच्चा जो
कूड़े में खेल रहा था
बम फटने से मारा जाता है
जेब में तीन चिकने पत्थर लिये।

एक लड़की जो
दुनिया में आने की सज़ा
पाती है और नीले निशान
अपनी फ़िरोज़ी फ्रॉक से छिपाती फिरती है।

क्या फ़र्क़ पड़ता है–
हमारे समय का बीज वाक्य है
यह हमारे समय का
अंतिम सत्य।

मगर, सोचो तमाम गाजे-बाजे, विज्ञापन और
इक्कीस तोपों की सलामी से
कब तक बचेगा
तुम्हारा चौड़ा सीना
तुम्हारा बेशर्म आधिपत्य।

3. हमारे समय के हत्यारों ने

हमारे समय के हत्यारों ने
एकल को सामूहिक किया

और हत्यारों के समूह का विकास हुआ।

उन्होंने हत्या को
कला में बदल दिया
और कला को हत्या में
बदल देने के तरीक़े बताये।

हथियारों को मशीन में
और मशीनों को बंदूक़ों में
बदलते हुए उन्होंने हत्या को
और भी ज़्यादा वैज्ञानिक बनाया।

फिर, वे शास्त्र लेकर आये
उन्होंने हत्या की पूरी परंपरा की
आधुनिक व्याख्या की
हिंसा की दार्शनिक दलीलें दीं
बर्बरता को सांस्कृतिक कर्म बताया।

इस तरह,
हमारे समय के हत्यारों ने
अपने लिए हत्या को वैधता दी।

मो. 9415289529, 8726755555

दो कविताएं

संतोष चतुर्वेदी

1. एक अकेला शब्द

मुझे शब्दों की शक्ति पर यक़ीन है
वे एक अहसास की तरह आते हैं
और अंदर तक गुदगुदा जाते हैं

अनाज की तरह ही
इधर शब्द भी प्रदूषित हुए हैं
मेरे गांव के एक किसान ने
अनुभव की झुर्रियों के हवाले से यह बात करते हुए बताया
अक्सर शब्दों का सूर्य लफ़्फ़ाज़ी के धुंध में
खो सा जाता है
इसे बादलों के साथ सूरज की लुकाछिपी की तरह
नहीं देखा जा सकता

मिलावटी शब्द टिकाऊ नहीं हो सकते
वे न तो थोड़ी सर्दी बर्दाश्त कर सकते हैं
न ही थोड़ी सी उमस

मैं अक्सर उन शब्दों से मिलता हूं
जो खेती किसानी
और मेहनत मजूरी में विश्वास करते हैं
और जिनकी बदौलत यह दुनिया
इतनी ख़ूबसूरत दिखती है
यह कम सुकून की बात नहीं
कि यक़ीन आज भी बचा हुआ है
बीज की तरह

रोटी आज भी दुनिया का
सबसे सार्थक शब्द है

जिसे सुन कर उमड़ आती है भूख
और लार हिलोरें मारने लगती है

एक अकेला शब्द
काफ़ी है भरोसे के लिए
इसे इस तरह भी पढ़ा जा सकता है
कि शब्दों के बिना
बातों की फ़सल नहीं उगायी जा सकती।

2. एक अकेला जाने कब से

यह फ़िल्म नहीं बल्कि एक ख़ौफ़नाक मंज़र है
किसी उर्वरता की उम्मीद मत कीजिए
यहां की समूची ज़मीन ही बंजर है

समझ नहीं आ रहा मुझे
किस बिना पर इसे खेल कहा जा रहा है
इंसानियत के सारे उसूलों को ताक पर रखा जा रहा है

दो प्रतिद्वंद्वी जूझ रहे हैं जिस तरह
रक़ीब भी तो नहीं लड़ते उस तरह

लात, दांत, घूंसा, मुक्का
कुर्सी, मेज़, सारा नुस्ख़ा
एक दूसरे पर हो रही ज़ोरो आज़माइश
और और की हो रही
जनता की फ़रमाइश

एक अकेला जूझ रहा है
तन से, मन से, धन से, सब से
एक अकेला जूझ रहा है
युद्ध भूमि में जाने कब से

न कोई दया, न कोई संवेदना
चारो तरफ़ है बस अजीब सी उत्तेजना

मो. 8887570655

तीन कविताएं

बसंत त्रिपाठी

1. देश का नेता कइसा हो?

देश का नेता कइसा हो?
अग्गड़ बग्गड़ बोल-बोलकर कान पका दे।
जहां ज़रूरी वहां किंतु चुप्पी ही साधे।
बखत बखत परिधान बदल फ़ोटू खिंचवाये।
आलोचन-विवेक के आगे भंइसा हो।
देश का नेता अइसा हो।

देश का नेता कइसा हो?
हांफ रही जनता के आगे देश बिछावे।
संन्यासी का बाना धर बंदूक चलावे।
धरम करम के धंधे को नज़दीक से जाने।
भगतों की श्रेणी में बगुला जैसा हो।
देश का नेता अइसा हो।

देश का नेता कइसा हो?
दिल दिमाग़ हो खोखल लेकिन ज्ञान से अकड़े।
मौक़ा गर मिल जाये तो सुंदर बाला जकड़े।
बरस मास दिन छन बीते की निंदा गाये।
धन कुबेर के लौह बक्स का पइसा हो।
देश का नेता अइसा हो।।

देश का नेता कइसा हो?
पुलिस कोर्ट सेना को अपनी जेब में राखे।
विरोधियों को चुन-चुनकर जेहल भिजवाये।
जन के मन को कुचल-कुचलकर ख़त्म करा दे।

लागन में हिटलर के नाती जइसा हो।
देश का नेता अइसा हो।

2. शुक्रिया

ईश्वर का शुक्र है
कि मैं भारत में रहता हूं

हे महाप्रतापी ईश्वर, शुक्रिया
कि मेरा घर
कश्मीर या उत्तरपूर्वी प्रांतों में नहीं है
तुझे याद होगा कि पंजाब में न रहने का शुक्रिया
मैं पिछली सदी में ही अदा कर चुका हूं

शुक्रिया कि तूने मुझे मध्यवर्गीय जीवन दिया
और अनंत अवसरों को भोगने का विशेषाधिकार भी

शुक्रिया कि आलू उगाना
मेरे हिस्से नहीं आया
पंगत के बाहर बैठ
कभी नहीं खाया
जंगल पर्वत नदी को
रिसोर्ट में रहकर गाया

मैं शुक्रगुज़ार हूं
कि तूने मुझे औरत नहीं बनाया

ईसाई और ख़ासकर मुसलमान न होने का
सबसे अधिक शुक्रिया
इन दिनों मुसलमान होने की यातना
तो तुम जानते ही हो

वह ईश्वर से मुख़ातिब था
लेकिन ईश्वर का चेहरा
शर्म से झुका हुआ था
उन सबके बारे में सोचते हुए

जो इस देश में रहने के लिए
उसे कभी शुक्रिया नहीं कहेंगे।

३. तानाशाह का निर्देश

कश्मीर हमारा है
कश्मीरी नहीं
पाकिस्तान चाहे तो ले जाये उन्हें

बस्तर की खानें हमारी हैं
इसलिए प्रिय आदिवासियो,
तुम चीन या जेल
दोनों में से कोई एक चुन लो

स्त्रियो
रसोईघर से बाहर
कुछ सोचने की भी मत सोचो
यदि आज़ादी चाहिए तो वह केवल
बलात्कार की शर्त पर ही मिलेगी

यद्यपि हम सब इक्कीसवीं सदी में हैं
लेकिन याद रखो
इसका टैक्स
तुम्हें और केवल तुम्हें
आजीवन भरना है
ज़रूरी हुआ तो जीवन देकर भी।

मो. 9850313062

दो कविताएं

अंशु मालवीय

1. मॉब लिंचिंग के लिए अर्ज़ी

मुझे महसूस करने दो
कि मधु हूं मैं...
मेरा चेहरा
किसी पेड़ की गांठ की तरह सख़्त
और चिहराया हुआ है
मेरे जुड़े हुए हाथ
पीले सूखे पत्ते की तरह कांप रहे हैं
मुझे घेरकर
ख़ुशी में किलकारी मारती भीड़ के
रक्तिम दांत
और मोबाइल के फ़्लैश चमक रहे हैं
एक मुट्ठी चावल की चोरी का इल्ज़ाम है मुझ पर
पर भूख से नहीं मरूंगा मैं
मुझे हिंसा की भूख मार देगी।
मुझे महसूस करने दो
कि मधु हूं मैं...

मुझे महसूस करने दो
कि पहलू ख़ान नाम है मेरा
मैं भीड़ के तेज़ बढ़ते क़दमों के सामने
घिसट रहा हूं...एक चुल्लू पानी की अरदास करता
ता हद्दे नज़र फैले हुए खेत दश्ते क़रबला है
हुकूमते यज़ीद में मज़्लूमों को हराम है पानी
मैं पानी मांगता हूं...भीड़ ख़ून थूकती है
हलक़ में कांटे हैं पर...प्यास से नहीं मरूंगा मैं

मुझे इन आंखों में बगूलों की तरह उमड़ती
लहू की प्यास मार देगी।
मुझे महसूस करने दो
कि पहलू ख़ान नाम है मेरा...

मुझे महसूस करने दो
कि मरे मवेशी की खाल उतारने वाला किशोर हूं मैं
मुझे नंगा कर पेड़ से बांध
खाल उतारी जा रही है मेरी
तने की छाल की तरह
इतना नंगा हूं कि खाल भी उतर गयी है...लेकिन
लज्जा इस द्विजराष्ट्र का
नंगा नाच मार देगा।
मुझे महसूस करने दो
वही किशोर हूं मैं...
नाम कुजात है

मुझे महसूस करने दो
कि आरा के तमाशों में नाचने वाली ग़ैर इज़्ज़तदार औरत हूं मैं
गलियों में भाग रही हूं भयभीत
जैसे बारिश के पानी के थपेड़ों पर
काग़ज़ की नाव भागती है...डर से लथपथ
भंवर में डूबने को तैयार...लेकिन
डूब कर नहीं मरूंगी मैं
मुझे ये वीर्य प्लावित समाज मार देगा

मुझे महसूस करने दो
मुझे महसूस करने दो
मुझे महसूस करने दो

अदना सा कवि हूं मैं
कहन मेरी ओछी है
शब्दों के भयानक अकाल से गुज़रता मैं
कुंठित होकर
दुःसाहसिक अनुभवों की ओर भागता हूं...
मॉब लिंचिंग के लिए मेरी अर्ज़ी कुबूल हो साहेब!
मुझे महसूस करने दो

कि भीड़ से डरकर भाग रहा हूं मैं...

मैं महसूस करना चाहता हूं
जैसे करता है विवेक भय से दुम दबाये टांगों के बीच
मुंह से झाग फेंकता घिरा हुआ
अंधविश्वासी भीड़ के चक्रव्यूह में

मैं महसूस करना चाहता हूं
जैसे करता है सत्य   घुटनों से पेट दबाये
रीढ़ में ठंडक महसूस करता
आख़िरी हमले के इंतज़ार में

मैं महसूस करना चाहता हूं
जैसे करती है शांति   अपने बदन के चीथड़े समेटती
लिजलिजी मौत के साये में

मैं महसूस करना चाहता हूं
जैसे करता है ईमान
नमक के दरबार में   अपने घावों को पेश करते हुए

मुझे महसूस करने दो
कि अहसास की इस जम्हूरियत का
                आख़िरी शहरी हूं मैं
मेरे साथ ही ख़त्म हो जायेगी यह जम्हूर...
...मॉब लिंचिंग के लिए मेरी अर्ज़ी क़ुबूल हो साहेब!

2. युद्ध के लिए अर्ज़ी

पेट कहता है
        हमारी नागरिकता भूख है
हाथ कहते हैं
        हमारी नागरिकता काम है
कहता है माथा
        हमारी नागरिकता सम्मान है
इस शोर से
        प्रमाद से
संशय में न पड़ें महाबली...

राष्ट्र की नागरिकता युद्ध है
युद्ध घोषित करें राजन!

यक़ीन जानिए
भूखे पेट की खाल
ढोल पर मढ़ी ऊंट या बकरे की खाल से
ज़्यादा गूंज पैदा करती है।

कटे हुए हाथों का बंदनवार
पत्तियों से ज़्यादा शुभ होता हैं
और...
तानाशाह के पैरों पर माथा रगड़ती
जनता का दृश्य
ईश भक्ति से ज़्यादा
विभोर करता है।
फिर कैसी दुविधा
कैसा दुचित्तापन
बड़बोले उद्‌बोधनों के पीछे छुपा
कैसा लिज़लिज़ा कायरपन...

देखिये न!
आपके दुआरे पर
युद्ध विधवाएं
खेत विधवाएं
लिंचिंग विधवाएं
सीवर विधवाएं
आंचल फैलाये
कातर स्वर में पुकार रही हैं
युद्ध की शिक्षा दें प्रभु!

हम इतने स्वार्थी नहीं
कि आपके टैंकों के गुज़रने के लिए
अपने बच्चों की लाशों से
सड़क न बना सकें...
हम इतने निकम्मे नहीं कि
हथियारों की पवित्र पुकार
अनसुनी कर दें!

जैसे आपकी नागरिकता
        बहता हुआ रक्त है
हमारी नागरिकता युद्ध है
युद्ध के लिए हमारी अर्ज़ी स्वीकार करें राजन!
हम आपके युद्ध कोष में
        अपना सामूहिक विवेक दान करते हैं...

मो. 9170911718

फ़ार्म-4

(प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 डी के अंतर्गत अपेक्षित *नया पथ* रजिस्टर्ड पत्रिका से संबंधित स्वामित्व आदि का विवरण)

1. *प्रकाशन का स्थान*	:	ख़सरा नं 258, लेन नं 3, चंपा गली, वेस्ट एंड मार्ग, सैदुल्लाजाब, साकेत मैट्रो के पास, नयी दिल्ली-110030
2. *प्रकाशन की आवर्तता*	:	त्रैमासिक
3. *मुद्रक का नाम*	:	चंचल चौहान
क्या भारतीय हैं?	:	हां
पता	:	ख़सरा नं 258, लेन नं 3, चंपा गली, वेस्ट एंड मार्ग, सैदुल्लाजाब, साकेत मैट्रो के पास, नयी दिल्ली-110030
4. *प्रकाशक का नाम*	:	चंचल चौहान
क्या भारतीय हैं?	:	हां
पता	:	ख़सरा नं 258, लेन नं 3, चंपा गली, वेस्ट एंड मार्ग, सैदुल्लाजाब, साकेत मैट्रो के पास, नयी दिल्ली-110030
5. *संपादक का नाम*	:	चंचल चौहान
क्या भारतीय हैं?	:	हां
पता	:	ख़सरा नं 258, लेन नं 3, चंपा गली, वेस्ट एंड मार्ग, सैदुल्लाजाब, साकेत मैट्रो के पास, नयी दिल्ली-110030

6. *उन व्यक्तियों के नाम और पते जो पत्रिका के मालिक और कुल प्रदत्त पूंजी के एक-एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार हैं* : जनवादी लेखक संघ, ख़सरा नं 258, लेन नं 3, चंपा गली, वेस्ट एंड मार्ग, सैदुल्लाजाब, साकेत मैट्रो के पास, नयी दिल्ली-110030

मैं चंचल चौहान एतद् द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही हैं।

(हस्ताक्षरित)
चंचल चौहान

घास

देवेंद्र चौबे

एक

मैं घास हूं
जिसे रौंदा जाता है रोज़
अनगिनत पैरों तले
दब जाता हूं मैं असहाय देखता हूं चारों ओर
झुकी थकी हुई आंखों में दिखती है नफ़रत
एक तूफ़ान आता है मेरे भीतर
और फिर तनकर खड़ा हो जाता हूं मैं
यह सिलसिला जारी है सदियों से

दो

लोग कहते हैं घास संतति है --
उन पूर्वजों की
जिन्हें कभी आतताइयों की फ़ौज ने रौंद दिया था
नदी पार करते हुए चौसा के मैदानों में
जहां कभी लड़ी थीं मगध साम्राज्य की सेनाएं
बंगाल जाते हुए मुग़लों की सेनाओं के ख़िलाफ़
सूरी ने रचा था एक व्यूह
कथकौली में हुआ था हैक्टर मुनरो के साथ
महासंग्राम
लाल हो गयी थी किसानों की धरती
बदलने का सपना देखा था एक तानाशाह ने
धान के खेतों में उगाये थे कंक्रीट के जंगल
ताकि नष्ट हो जायें हम और हमारी संततियां

तीन

पर मैं उसी धरती की घास हूं
जिसे कई बार

उखाड़ा गया, सुखाया गया, जलाया गया
नष्ट कर दिया गया सामूल
पर कर्मनाशा की बूंद ने बिखेर दिया था हमें
धरती के कोने कोने में
उग आयीं हमारे पूर्वजों की संततियां बनकर दूब
मैं जानता हूं हम फिर उखाड़े जायेंगे
सुखाये और जलाये जायेंगे
नोंचे और खसोटे जायेंगे हमारे पंख
थकी और उदास आंखें फिर होंगी निराश
लेकिन क्या करें हम और हमारी नयी संततियां
कैसे नष्ट करें अपनी जड़ों को
हम उग आते हैं
इस दुनिया के गीत गाने
शीत बसंत की बातें करने
तितलियों के संग फूल बनकर
थकी हारी आंखों में चमक लाने
हम धरती पुत्र सदियों से खड़े हैं
हमारी जड़ें फैली हैं हर जगह।

करवट लेता यह इतिहास
फिर से लिखा जायेगा
कहानी फिर से कही जायेगी कि
कभी हम भी खड़े थे गंगा के उन रेतीले घाटों पर
इतिहास कभी मरता नहीं है
कथाएं कभी ख़त्म नहीं होतीं
संततियां आती हैं लौट कर बार बार

चार

लोग कहते हैं --
हमारी जड़ें फैली हैं
उन मैदानी इलाक़ों में
जहां आज भी खेतों में उगती हैं फ़सलें
लाठी, भाला, तलवार, बरछी, कारतूस की
खिलते हैं फूल लाल अड़हुल के
उगते हैं पेड़ बरगद के
हमारी धार कभी मरती नहीं।

मो. 9868272999

दो कविताएं

बली सिंह

1. आये प्रेत बड़े व्यापारी

ये किसी के पास
कुछ रहने नहीं देंगे,
लगता है जैसे
सब कुछ छीन लेंगे।
लोगों का बचा खुचा दाम,
काम वालों से उसका काम,
यहां तक कि बेकारों से उनका चाम,
ये किसी के पास
उसका नाम
तक रहने नहीं देंगे,
लगता है जैसे सब कुछ छीन लेंगे।

ये सदियों के भूखे हैं,
सदियों से लगी है इनको प्यास,
लोगों से उनके ताल,
जंगल, आकाश और पाताल,
यहां तक कि पहाड़ों का जान-ओ-माल,
ये किसी के पास
उसकी आस
तक रहने नहीं देंगे
लगता है जैसे सब कुछ छीन लेंगे।

ये संसार के सबसे दुखी जीव हैं,
इनकी पीड़ा है अबूझ,
लोगों से उनकी निडरता और विश्वास,
खाना पीना ख़ास,

यहां तक कि हास-ओ-परिहास,
ये किसी के पास
उसकी सूझबूझ
तक रहने नहीं देंगे,
लगता है जैसे सब कुछ छीन लेंगे।

2. सुना है

आसमान में
चांद-तारे भी
नहीं दिखे आज!
सुना है
नागरिकता का
नया कोई क़ानून आया है।
सड़कें और गलियां
भर गयी हैं तमाम!

सुना है
लोगों का
नया कोई जुनून आया है।
बाहर ही
कटेंगी सर्द रातें अब!

सुना है
छात्रों का
नया कोई इम्तिहान आया है!
कपड़े पहनो
संभल कर अब!

सुना है
पहचान का
नया कोई फ़रमान आया है।

मो. 9818877429

तीन कविताएं

महेंद्र सिंह बेनीवाल

1. नफ़रत

नफ़रत ही नफ़रत है
चारों ओर
किसी की जात से
किसी के धर्म से
किसी की भाषा से
तो किसी के कर्म से
कहीं इसका क्षेत्र
आधार हो जाता है
तो कहीं कोई ग़रीब होने से
नफ़रत का शिकार हो जाता है
कहीं खान-पान इसका कारण बनता है
कभी लिंग भेद
इसका उदाहरण बनता है
इस नफ़रत की वजह से
यहां हिंसा व्याप्त है
भाषा में, व्यवहार में
स्त्री पुरुष तक के प्यार में।

2. चुप्पी

वे चाहते हैं
मुर्दा समाज बनाना
हर बोलती आवाज़ को
दबाना
उगते सूरज को डुबाना
और जागते हुओं को सुलाना
ताकि फैल जाये
बियाबान जंगलों की चुप्पी

चारो ओर
जैसी सदियों तक इतिहास में रही
जहां लगे थे हर जगह ताले
और इन तालों को लगाकर
अंधे बहरे हो गये थे
आंख-कान वाले
जहां न कोई आंख देखती देखी गयी
और न कोई जुबान बोलती सुनी गयी

३. रोटी

वे नहीं बना सकते
रोटी के लिए कोई क़ानून
क्योंकि रोटी उनकी निगाह में
समस्या नहीं है
भले ही इस देश में
भात-भात करती हुई लड़की
भूख से मरती है

उनका कहना है
भला इसमें सरकार क्या कर सकती है?
जिसका जन्म हुआ
उसकी मृत्यु तो निश्चित है
उनके अनुसार
भूख मृत्यु का कारण नहीं
सिर्फ़ बहाना है
और बहाना तो
कोई भी हो सकता है
मसलन कोई बीमारी या बमबारी!

कोई कहीं भी किसी वक्त़ मारा सकता है
सब मृत्यु की लाइन में ही तो लगे हैं
कई बार तो यह लाइन ही
बहाना बन जाती है
चाहे वह लाइन नोटबंदी की हो
या नागरिकता के प्रमाणपत्र बनवाने की।

मो. 8368510267

तीन कविताएं

सुदेश तनवर

1. चुपचाप

वे
सड़क पर नहीं उतरे
उन्होंने कोई हंगामा नहीं किया
न रातोंरात आये फ़रमानों पर
न औचक लादे गये लगानों पर

भोंपू
देख, सुन रहा था
भौं-भौं भी कर रहा था
उसके चीख़ने की आवाज़
कान फाड़ रही थी।

कचहरियां मजबूर
शर्मिंदा थीं!

संविधान लोकतंत्र
लकवाग्रस्त हो गये
राज़दार, एक एक कर
गहरी नींद सो गये

सड़कें सूनी हैं
गलियां औचक!

बस्तियों में
बिन बारिश के
मकान चू रहे हैं

कहीं कोई चुपचाप
रांपी में धार लगा रहा है
तीरों को एक आंख से नाप रहा है

हल की फाली को रेंती से तैयार कर रहा है
कोई रंदा घिस रहा है!

कहीं कोई मशाल
उठ रही है

धीरे धीरे धीरे!

2. बूचड़खाना

तुमने
मेरी मिट्टी को
बूचड़ख़ाने में तब्दील कर दिया है!

जहां कटती है
हर बोलने वाली आवाज़
कहीं हाथ कहीं पांव

तुम
उनकी आंखें निकालकर देखते हो
कहीं उनकी अंतड़ियां
तो कहीं न बताने वाले हिस्सों के
तुम छिछड़े उड़वाते हो

तुम!
मांस नहीं खाते हो
बस उन्हें चुपचाप कटते देख
मंद मंद मुस्काते हो

पहले
तुम्हारी संख्या
कुछ सैकड़ों में थी
आज हज़ारों में पहुंच गयी है

तुमने कुंद कर दिये हैं
तमाम छोटे-बड़े संस्थान!

कुछ को बेच दिया है
कुछ को ख़रीद लिया है

कुछ को तहस-नहस कर दिया है

जिन्हें
जनता की आज़ादी के
तराने बनना था
वे गीत तुम्हारा यशगान कर रहे हैं
कुछ शब्द
जिन्हें अन्याय के ख़िलाफ़
लामबंद होना था
तुमने अपने पाले में कर लिये हैं

सब शांत हैं
उदास हैरान भयभीत!

3. क्लिक

एक क्लिक
लोग लाइन हाज़िर कर दिये गये
सैकड़ों बेवजह मारे गये।

संस्थान क़ैद कर लिये गये
कुछ नये निर्देशित होने लगे
आदेश, एकपक्षीय आने लगे
लाखों लोग बेघर, नज़रबंद हो गये
हांफता लोकतंत्र लड़खड़ाने लगा।

एक क्लिक होगी
जनता का सारा जमाख़र्च
कंप्यूटर में क़ैद हो जायेगा
यह धरती बंदूक़ों बमों मिसाइलों के
हवाले कर दी जायेगी

इसलिए कि
ये क्लिक बेजान हैं
सिर्फ़ तुम्हारी उंगलियां पहचानती हैं!

मो. 9999093364

तीन कविताएं

मणि मोहन

1. यह प्रार्थना का समय नहीं

यह प्रार्थना का समय नहीं है
नेपथ्य से
किसी बच्चे के रोने की आवाज़ आ रही है
चीख़ें सुनी जा सकती हैं
किसी स्त्री की
किसी के घिसटने की आवाज़ आ रही है
कोई दर्द से कराह रहा है
आसपास कहीं
हवा में तैर रही हैं सिसकियां
मनुष्य के लिए
यह प्रार्थना का समय नहीं
देखो ! देखो उस दरख़्त पर
कैसे समाधिस्थ होकर
लटके हुए हैं चमगादड़ !!!

2. एक अनगढ़ सा सपना

वे पत्थर तोड़ रहे थे
लोहा पीट रहे थे
अनाज से भरे हुए बोरे उठा रहे थे
रिक्शे और ठेले चला रहे थे
धरती जोत रहे थे
और पसीना बह रहा था
उनके जिस्म से लगातार...
इतना पसीना
इतना पसीना
कि उसके दरिया की लहरों में

डूबने लगीं विशाल इमारतें
कल-कारख़ाने
बही-ख़ाते, बैंक, थाने, अदालतें और कारागार
डूबने लगीं
संसद और विधानसभाएं
इतना पसीना!
कि मच गया हाहाकार
इतना पसीना!
इतना पसीना!

3. बस एक लय

वे पूछते हैं
क्या हासिल होगा
इस प्रतिरोध से ... ?
मैं कहता हूं
बस एक लय
प्रतिरोध की ...
जो रूठ सी गयी थी
कहीं कहीं से
टूट सी गयी थी ...
बस एक लय !

मो. 9425150346

तुम्हारी अम्मी

सपना चमड़िया

फ़ोन पर बेतरह
कांपती तुम्हारी आवाज़
फिर मैंने देर नहीं की
पहली ही बस पकड़कर
अंधेरे ही घर से
निकल आयी थी
पर देर हो चुकी थी
मैं बस से भी तेज़
रफ़्तार दौड़ती आयी थी
दुआओं के पहिये पांवों में पहन
पर बदकारियों का हमला मुझसे जीत गया
कमरे पर सब कुछ था
तुम नहीं थे।
अपमान से भीगा तुम्हारा तकिया
डर की सिलवटों से सिमटी चादर
सीढ़ियों पर पड़ी, छूटी एक पांव की चप्पल
घसीटे जाने की रगड़ लिये
एक़दम वैसे ही निशान मेरे
पेट पर आज भी नुमायां हैं
जब दर्द से मरते हुए
मैंने तुम्हें जन्म दिया था।
बहुत लंबे समय की मेहनत
बीती थी, जो बेतरह उल्टियां करते हुए

गर्भ का भार उठाये
घर-बाहर का सारा काम करते हुए
दुनिया को अपनी जगह पर टिकाये हुए।
आज वो सारा भार सीने की तरफ़ आकर

जमा हो गया है
और तुम्हारी रुंधी हुई आवाज़
मेरे गले में ऐसे अटक गयी है
जैसे मछली की फांस
धीरे-धीरे मेरी आवाज़ को गुहार
से चीख़ में बदलते हुए।
तुम्हारे टूटते हुए
अंतिम अल्फ़ाज़ को
मैंने सुनने की क्षमता
बना लिया है
अब उसके बिना कोई भाषा, कोई शब्द, कोई वाक्य
समझ ही नहीं आता मुझे।

बहुत आसान नहीं होता
और ना ही होता है बहुत महान
किसी को जन्म देना
बस एक औरत की मेहनत होती है
खुद में रखने की
बोझ उठाने की
दर्द को आज़माने की
दो एक दिन नहीं, कई हफ़्ते और महीनों
साबुत गुज़र आने की
बस एक औरत की मेहनत होती है
और दुनिया की किसी सभ्यता में
मेहनत के वज़न का कोई शब्द
अब तक ईजाद नहीं हुआ है।
मैंने अपनी दूरी ताक़त से तुम्हें ढूंढ़ा
तुम वहां नहीं थे
कमरे में नहीं, छत पर नहीं
ज़मीन पर नहीं, जंगल में नहीं।
और किसी सूचना में नहीं
दी जाने वाली किसी इत्तला में नहीं।
तुम्हारे नाम के हिज्जे थे
तुम्हारे नाम का उच्चारण था,
तुम्हारे नाम की नफ़रतें थीं
तुम्हारे नाम की राजनीति थी
पर तुम कहां थे?
कहां थे तुम मेरे जीते-जागते?

जैसे तुम गये वैसे कोई कभी जाये नहीं
विदा लेने का यह कोई तरीक़ा नहीं।
इस तरह चुप कर दिये जाने का
यह कोई इंसानी सलीक़ा नहीं।
गांव-घर दर-ब-दर
तुम्हें ढूंढ़ती मैं
अभिशप्त
भारत-माता की जय
और
बंदे मातरम् में उलझायी जाती रही।
चुप रहे बड़े-बड़े हुक्मरान
जासूसी संस्थाओं ने
न्याय के मनसबदारों और सुरक्षा जवानों ने
डर और भय की निकाली तलवारें
चुप की मांदों का बड़े पैमाने पर किया
जाता रहा इंतज़ाम
लेकिन इन्हीं के बीच, इन्हीं के विरुद्ध
उठती रहीं तुम्हारे हमसफ़र
तुम्हारे दोस्तों की आवाज़ें
यह ठीक है कि कई रातों से मैं
सोयी नहीं, भरपेट खाया नहीं।
पर भिंची हुई नींद में भी
मेरी मुट्ठियां उस दिन से उठी हुईं
वही मुट्ठियां जिनसे मैं
परात भर आटा सानती थी
लकड़ी की थापी से कपड़े धोती थी।
और चाय के लिए अदरख कूटती थी।
यक़ीन करो साहेब, यक़ीन करो।
इन्हीं तपी हुई मुट्ठियों से
थामूंगी मैं हथौड़ा
और तुम्हारे ताबूत में
अंतिम कील
मैं ही जड़ूंगी।

मो. 9968851201

घर अपना

विनीताभ

मैं कई दिनों से सोच रहा हूं
रात रात भर जाग कर परेशान हो रहा हूं

नींद में जागने
और जागते में सोने का शिकार हो रहा हूं
ऐसा मेरे साथ हो रहा है

मुझसे मेरे घर का पता पूछा जा रहा है
यही मेरी चिंता का सबब है
मैं किस घर को अपना बताऊं
उस ननिहाल को,
जहां मैं पैदा हुआ
मौसी की बांहों में झूलता
नानी की गोद में खेलता
खरगोश की मानिंद नन्हीं नन्हीं आंखों-से
दुनिया के रिश्तों को पहचानने का प्रयास करता रहा
या फिर ददिहाल को
जहां मैंने दादा के कंधे पर सवार हो
अपना गांव-जवार देखना शुरू किया
ठेहुना के बल घुसकते-घुसकते
तलमलाते अपने पैरों पर चलना सीखा
या फिर उन जगहों को
जहां मैंने स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई करते
एक छोटे से कमरे में रहते
यार बहस करते दोस्तों से बतियाते-
चाय की चुस्कियां लेते
गर्ल्स हॉस्टल की तरफ़ कनखियों से देखते
जीवन के उन्नीस-बीस बरस गुज़ारे

नौकरी की तलाश करते करते
दर दर भटकते
अब इस शहर में आया हूं
यहां दफ़्तर में बारह चौदह घंटे बिताते
फ़ाइलें निपटाते
ऊपर के आदेश मानते
कम्प्यूटर पर उंगलियां दबाते
परिवार का पेट पालने वास्ते

इस शहर ने
मुझसे मेरा बचपन छीन लिया है
यौवन का लहरना लील लिया है
परिचितों की नयी टोली बना दी है

इस शहर ने
मेरे मित्रवत संबंधों को
कृत्रिम और बाज़ारू बना दिया है
इसी शहर में
पत्नी व बच्चों का आशियाना बनाने
रिश्तेदारों में रसूख़ जताने
कार्यालय में गर्वीली छवि दिखाने
पुश्तैनी घर जन्मडीह से रिश्ते पर
पूर्णविराम से पहले एक कौमा लगाने
राष्ट्रीय राजमार्ग से सटे,
नवनिर्मित आलीशान अपार्टमेंट में
एक फ़्लैट बुक कराया
पत्नी और बच्चे ख़ुश हो उसे अपना घर बताते हैं
लोगों के पूछने पर, असमंजस के बावजूद
होंठों पर हल्की मुस्कान लाता हूं
अपने फ़्लैट का पता बताता हूं
लेकिन अब
जब आस्तीन के सांप मुझसे पूछते हैं
मेरा घर-मेरा मूल
मैं लगातार दिमाग़ पर ज़ोर डालता हूं
बेचैन हो ढूंढ़ने लगता हूं
अपना घर अपना शहर।

मो. 7488543849

देश का संविधान

सीमा संगसार

एक मुश्किल व निर्मम समय में
जब देश के सैनिक
अपनी बंदूक़ें तानकर
बरसा रहे होंगे गोली
अपने ही शहर में
एक लड़की
पढ़ रही होगी
अपने देश का संविधान
बड़ी ही तन्मयता से
अपनी टांगों का लेग क्रॉस बनाकर
शांति से बैठते हुए...

जब सब कुछ धुंधला हो गया होगा
सड़कें, कारख़ाने, स्कूलों के अहाते और पुस्तकालय
उस धुंधलके में जब दिखता हो
सिर्फ़ लाल लहू किशोरियों का
ख़ून से लिथड़े क्षत-विक्षत शव
जिसमें घुट रहा हो दबा-दबा सा कुछ
वह लड़की तब पढ़ रही होगी
अपने देश का संविधान
अपने गले में दुपट्टा बांध कर...

संविधान को गढ़ने वालों ने
यह भी कहा था कि
इससे पहले कि संविधान की धज्जियां उड़ जायें
हमें उसे संभालकर रखना होगा
और करना होगा उसका पुनर्पाठ समय-समय पर

ताकि जीवित रहे हमारी आने वाली पीढ़ी
अपने देश के संविधान के साथ...

वह लड़की तब भी पढ़ेगी
अपने देश का संविधान
कि उसके देश का संविधान ही उसका प्रेम है
जिसे बचाने के लिए उसे पढ़ना होता है बार-बार
उसकी रूह में उतरने के लिए
वह अपने सीने से लगाती है अपने देश के संविधान को
और चूम लेती है उसके कवर पेज को
जैसे एक प्रेमी ने सीने से लगकर चूमा हो अपनी प्रेयसी का माथा...

मो. 8434811917

सिर्फ विश्वास और अंधविश्वास ख़तरनाक है। यह मस्तिष्क को मूढ़ और मनुष्य को प्रतिक्रियावादी बना देता है। जो मनुष्य अपने को यथार्थवादी होने का दावा करता है, उसे समस्त प्राचीन रूढ़िगत विश्वासों को चुनौती देनी होगी। प्रचलित मतों को तर्क की कसौटी पर कसना होगा। यदि वे तर्क का प्रहार न सह सके, तो टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेंगे। तब नये दर्शन की स्थापना के लिए उनको पूरा धराशायी करके जगह साफ़ करना और पुराने विश्वासों की कुछ बातों का प्रयोग करके पुनर्निमाण करना। मैं प्राचीन विश्वासों के ठोसपन पर प्रश्न करने के संबंध में आश्वस्त हूं। मुझे पूरा विश्वास है कि एक चेतन परम आत्मा का, जो प्रकृति की गति का दिग्दर्शन एवं संचालन करता है, कोई अस्तित्व नहीं है। हम प्रकृति में विश्वास करते हैं और समस्त प्रगतिशील आंदोलन का ध्येय मनुष्य द्वारा अपनी सेवा के लिए प्रकृति पर विजय प्राप्त करना मानते हैं। इसको दिशा देने के पीछे कोई चेतन शक्ति नहीं है। यही हमारा दर्शन है। हम आस्तिकों से कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

-- भगत सिंह, 'मैं नास्तिक क्यों हूं', 27 सितंबर 1931
लाहौर के अख़बार, *द पीपल* में प्रकाशित

मॉब लिंचिंग

टेकचंद

अब हत्या करने को
एकांत, गुप्त, निर्जन या
रहस्यमयी जगह की दरकार नहीं
सरेआम, सरेराह, सरेबाज़ार
हत्या की जा सकती है...
मरने वाले का अपराधी होना
या ख़ानदानी दुश्मनी होना
ज़रूरी नहीं..
किसी की जाति, दाढ़ी, टोपी, रंग, भाषा या खाने-पहनने पर
या चेहरा पसंद ना आने पर भी
मारा जा सकता है
भीड़ बनकर भीड़ में मिलकर, रामदास की हत्या करने
हत्यारा अब ना गली से आयेगा,
ना गली में जायेगा
वह पहले से ही
इर्द-गिर्द होगा रामदास के...
हत्या कर वहीं जश्न मनायेगा, फ़िल्मायेगा...
देशभक्ति के नारे लगायेगा,
धर्मसत्ता की ध्वजा थाम,
शान से लहरायेगा
स्वतंत्रता सेनानियों की तरह
जेल गया भी तो
समाज उसका मुक़दमा लड़ेगा
लौटेगा विजेता की तरह
जैसे एवरेस्ट या चांद पर
देश का झंडा फहराकर लौटा है...
धर्म पोषित राज्य
उसके मामले को,

रफा-दफ़ा कर देगा
फिर कोई नयी हत्या
जन मन से पुरानी हत्या को
लुप्त कर देगी...
हत्या को मॉब लिंचिंग बता
अख़बार ख़ूब बिकेंगे,
टी.वी. चैनल उस दौरान
बटोर रहे होंगे टीआरपी,
ज्योतिष, हॉरर शो और पड़ोसी मुल्क से
घृणा को देशभक्ति में तब्दील करते
सदी का महानायक तेल बेच रहा होगा
प्रधानमंत्री ठीक उसी वक़्त,
सात समंदर पार,
किसी शासक से हाथ मिला रहे होंगे,
रक्षा सौदों को मंजूरी देते
बुद्ध और गांधी को जुगाल रहे होंगे
विदेशी कहेंगे...
गांधी के देश से, गांधी के राज्य से
कोई हथियार ख़रीदने आया है
यहां मगर देशवासी
मॉब लिंचिंग कर रहे होंगे...
पता नहीं किस देश की
रक्षा रचना कर रहे हैं हम?
पता नहीं कैसे देश में रह रहे हैं हम?

मो. 9650407519

सपने

रानी कुमारी

मंदिर और मस्जिद के बीच
दूरियां घटती क्यों नहीं हैं?
क्रिश्चियन कॉलोनी में
मंदिर, मस्जिद और बीच में
बहता गंदा नाला
दड़बेनुमा इन छोटे-छोटे कमरों की
खिड़कियों से नज़र आते
मंदिर, मस्जिद और नाला
साथ ही अनचाहे आती है
शंख-घंटियों, अज़ान की आवाज़
और नाले की बदबू
इन छोटे-छोटे सीलन भरे कमरों में,
युवाओं के बड़े-बड़े सपने पलते
गिरते-पड़ते-संभलते
अपने सपनों को,
मन और आंखों में संजोये हैं
पता नहीं...
ये सपने पूरे होंगे
या फिर
मंदिर और मस्जिद के बीच
गंदे नाले में बह जायेंगे!

मो. 8447695277

अखंड भारत

उपासना गौतम

अब हम उनके निशाने पर हैं
पता नहीं कब, कहां, कैसे, किस जगह
मिटा दिया जाये हमें
हक़ की बात कहने के जुर्म में
बिलकुल उसी तरह
जैसे चलती रही है सदियों से हमें मिटाने की क्रिया-प्रक्रिया
बावजूद इसके
तुम्हारे अखंड भारत के स्वांग का
नहीं बनना है मूक दर्शक

अखंड भारत...
यह नारा उतना ही बड़ा उपहास है
जितना कि किसी मोबाइल या किसी गाड़ी का सस्ता होना
और दाल रोटी पर महंगाई का बढ़ना
जितना कि भूख से मरते असंख्य लोगों की मौत को
किसी बीमारी से मृत घोषित कर देना
जितना कि शहर में ऊंची-ऊंची इमारतों में पामेलियन कुत्तों को पालने के इतर
मलिन बस्तियों की नालियों के कीचड़ में सुअरों की थूथन
जितना कि गोदामों में अनाज का सड़ना
और दूसरी तरफ़ रोटी के लिए नंग-धड़ंग बच्चों का फुटपाथ पर बिलखना
जितना कि देश को मां का दर्जा देना
और उसी मां को नंगा कर अपने मुनाफ़े के लिए भोगना
जितना कि कमज़ोरों के लिए क़ानून का बनना
और किसी दबंग के पक्ष में फ़ैसला सुना देना
जितना कि औरतों को देवी की पदवी देना
और उसी देवी पर आये दिन हिंसा करना
हां...बिलकुल
यह उतना ही हास्यास्पद है
जितना कि जातियों में इंसानों का बंटवारा

जितना कि किसी एक जानवर को मां की संज्ञा देकर
इंसानी ज़िंदगी के मायनों को ख़त्म करना
जितना कि धर्म के नाम पर बस्तियों को क़ब्रिस्तान में तब्दील कर
लाशों पर खड़े होकर
धर्म को राजनीति बना लेना
और भगवा चोला पहन कर
दलित बस्तियों में आग लगा कर
हिंदू-हिंदू, भाई-भाई का थोथा प्रचार करना
वाक़ई यह बड़ा ही पैशाचिक उपहास है
और इस उपहास पर ठहाके नहीं निकलते
अंगारे निकलते हैं
हमारी आंखों से
हमारी ज़ुबां से
हमारी कलम से

अब हम उनके निशाने पर हैं
क्योंकि
हमारी हर अभिव्यक्ति
एक गूंज है
लगातार किये जा रहे
उत्पीड़न के विरुद्ध।

मो. 9527903458

ढपलिया

सुरेंद्र कुमार पांडेय

धुनों को रौंदना,
हुक्म को थोपना,
घात लगा गीतों को दबोचना,
जन कलम की स्याही को,
ख़ाकी से पोंछना,
मसला अरसा पुराना है,
राजा को हमेशा,
नौकर को दबाना है!
ढपली, मृदंग, ताल और धुनें,
यों ही बनायी जायेंगी,
रात लंबी ही सही,
रात काली ही सही,
ऐ दोस्त,
ढपलियां फिर भी बजायी ही जायेंगी!
जेल की दीवारें कितनी ही मज़बूत,
हवाओं के साथ-साथ,
पुरानी मेड़ों को तोड़,
ये अपना बसंत लायेंगी,
हर बार जगह-जगह,
यों ही हड़कंप मचायेंगी!
यों ही हड़कंप मचायेंगी!

मो. 9818390399

काफ़ी मनुष्य होने के संस्मरण

देवी प्रसाद मिश्र

कमला का नाम कमरुन्निसा था, लेकिन इस बात का पता उस ब्राह्मण परिवार को नहीं था जहां कमरुन्निसा खाना बनाया करती थी। पता उस दिन चला जब वह खाना बनाने के दौरान मोबाइल फ़ोन को लाउड स्पीकर 'मोड' पर करके किसी से बात कर रही थी और उधर से कोई 'कमरू कमरू' कर रहा था। परिवार के लोगों को जब यह पता लगा कि कमला कमरुन्निसा है तो उनकी समझ में यह नहीं आया कि क्या किया जाये। वह कमला जो बेहतरीन खाना बनाती थी, क़रीने से पानी देती थी, काग़ज़ जैसी पतली रोटियां बनाती थी, और चावल ऐसा कि दाना दाना अलग। कमला ने घंटी कभी तेज़ नहीं बजायी, दरवाज़ा आहिस्ता से बंद किया, आटा गूंथने के पहले लाइफ़बॉय से हाथ धोया और खाने की मेज़ बहुत जतन से साफ़ की। एक बर्तन से दूसरे बर्तन के टकराने की आवाज़ को कमरुन्निसा ने ग़ायब कर दिया था। अब बड़ा सवाल यह खड़ा था कि ब्राह्मणत्व को दूषित करने की कौन सी सज़ा कमरू को दी जाये। उस कमरू को जिसे घर के हर मर्द -- एक पिता, तीन बेटों, बेटों के दो मामा और ताऊ और तीन चाचाओं ने पकड़ने, चूमने और बांहों में भरने की कोशिश की थी और कमरू ने हर एक से कहा था कि मेहनत करके रोटी कमाना चाहती हूं, रखैल और वेश्या बनकर नहीं। प्रेम करने के लिए पति है जो घर में मेरी तरह ही खटकर पहुंचता है। जो बात उसने नहीं कही वह यह कि ख़तना के वक़्त पति के शिश्न में चीरा जो लगा तो संक्रमण हो गया और सर्जरी के बाद लिंग बहुत छोटा हो गया लेकिन छोटे शिश्न वाले आफ़ताब ने शादी से इंकार नहीं किया यह सोचकर कि कुछ हो ही जायेगा। लेकिन हुआ कुछ नहीं और कमरुन्निसा ने यह जानने समझने और कुछ ही दिन साथ रहने के बाद सोचा कि शौहर वह अच्छा है अगर मर्द वह न भी हो तो। तो चलेगा। क्योंकि साथी चाहिए इसलिए आफ़ताब चाहिए। इसके बाद इच्छाओं का कारोबार भी चल निकला। कि जैसे वे समलैंगिक हों। लेस्बियन। इस तरह एक थकी देह दूसरी थकी देह को संभालती रही। इच्छाएं भी संभल गयीं। साथी भाव वाले उन प्रेमानुभवों का असर यह रहा कि चुभने वाले, भाले या मिसाइल या माइक जैसे आकार वाले शिश्न को लेकर कमरू विरत होती रही। त्रिपाठी मामा वग़ैरह के पाजामे और जांघिये से बाहर आते नक़ाबपोश एरेक्शन पर वह विहंसती थी। कि वाह रे महराज! इतना पोथी पत्रा, इतनी नियम संहिता! लेकिन कितना छद्म और कितना पाखंड! कमरू का बहिनापा कामनाओं की लपट

को कितनी खूबी से बुझाता था, इसका पता पांडेय परिवार के लगभग हर विकल लेकिन निरुपाय पुरुष को था जो घर में कमला के लिए एक छिपी हुई खुखरी लेकर घूमता था। लेकिन उस खुखरी से कमरुन्निसा को हलाल नहीं किया जा सका। कमरुन्निसा के मुसलमान होने का हल्ला सबसे ज़्यादा परदादी ने मचाया। आंगन में सारे लोगों ने कमरू को घेरा तो कमरू ने कहा कि बचे हुए पैसे नहीं, पाखंड को प्रणाम करने आयी हूं। सारे लोगों ने एक दूसरे को अपराधियों की तरह देखा। परदादी ने कहा कि खाने की मेज़ को जिस तरह से तुम साफ़ करती थीं लग जाता था कि अपने अपराध का कोई निशान तुम नहीं छोड़ोगी। लेकिन पकड़ी गयीं। कमरू ने कहा कि मेरा अपराध ब्राह्मण न होने का अपराध है और आपके पाप ब्राह्मण होने के अपराध हैं। बेहतरीन बावर्ची और मनुष्य होने का पुरस्कार कमला को नहीं मिला। बहुत पतनशील होने का दंड पांडेय परिवार को नहीं मिला। एक ऐसे समय में कि जब शहरों के नाम बदले जा रहे थे कमला ने रोज़ी रोटी के लिए नाम बदला और नौकरी खोने और अपमानित होने की सज़ा पायी। लेकिन कमरुन्निसा की कहानी में उस समय ख़तरनाक मोड़ आ गया जब पांडेय परिवार की एक लड़की पहले लाचार हुई और उसके बाद बीमार। उसने किसी और के हाथ का खाना खाने से इंकार कर दिया। तेज़ बुख़ार में वह बड़बड़ाती कि तुमने मेरी साथिन और रोटी छीन ली। कमला को बहुत ढूंढ़ा गया लेकिन वह नहीं मिली। लड़की को जिसका नाम अनंता था बचाने की बहुत कोशिश की गयी लेकिन वह नहीं बची। बहुत दिनों बाद यह पता लगा कि कमला का नाम न तो कमला था और न कमरुन्निसा। उसका नाम कैथरिन था जो एक संथाल आदिवासी परिवार से ईसाई बनी थी और उसका संथाल नाम नीमड़ी था जो उसकी मां ने दिया था और इसलिए कि जब भी खोजो वह दूर नीम के नीचे मिलती थी जबकि स्कूल का उसका नाम निहारिका था जो उसके पिता ने रखा यह देखकर कि नीमड़ी जिस चीज़ को भी निहारती थी, बहुत देर तक देखती थी। उसके पिता को यह नहीं मालूम था कि निहारिका का शब्दकोशीय मतलब होता है दूर बाहरी अंतरिक्ष में धूल और गैस का बादल। नेबुला। पांडेय परिवार को भी एक दिन यह पता लगा कि जब जातियां नहीं थीं तो ब्राह्मण होने के बहुत पहले दूर अंतरिक्ष में वे काफ़ी मनुष्य थे।

मो. 9560976818

दो ग़ज़लें
वक़ार सिद्दीक़ी

1

जब भी सीने में कोई आह दबा दी जाये
फिर कहां जाये कोई किस को सदा दी जाये

जिन के दिल टूटे हैं हालात के टकराने से
उन की आंखों में भी उम्मीद जगा दी जाये

भीख की रस्म हो या जिस्म फ़रोशी का चलन
हर बुरी रस्म ज़माने से मिटा दी जाये

शहर में थाना भी है, जेल भी, क़ानून भी है
हम तो तब जानें कि क़ातिल को सज़ा दी जाये

फिर नये अज़्म से निकले हैं जवाने-वतन
रास्ते रोके जो दीवार गिरा दी जाये

आग लगती हो मुहब्बत के चमन में जिन से
ऐसी अफ़वाहों को हरगिज़ न हवा दी जाये

ज़िंदगी कोई नयी राह दिखाये शायद
क्यों न ख़्वाबों की ये चिलमन ही हटा दी जाये

2

आज सरमाये के चौपट सारे धंधे हो गये
देखते ही देखते बाज़ार मंदे हो गये

सामने कुछ भी हो लेकिन उनको दिखता ही नहीं
क्या कहें उन को कि जो आंखों के अंधे हो गये

सांस भी लेने में दम घुटता है इस माहौल में
इस क़दर आलूदगी है, ज़ेहन गंदे हो गये

कोई तो सच्ची हिकायत आप ही सुनवाइए
सुनते-सुनते झूठे क़िस्से कान बहरे हो गये

कोई तो ख़ूबी, कोई तो वस्फ़ है उसमें जनाब
जब से देखा है उसे, हम उस के बंदे हो गये

जाने क्या देखा भरे बाज़ार में सब ने वक़ार
जितने दीदावर थे, वो सारे ही अंधे हो गये

मो. 8989133543

कहा जा सकता है कि, अब धर्म और ईश्वर उतने ख़तरनाक चीज़ नहीं हैं, किंतु बात क्या वैसी है? क्या धर्म के विषवाले दांत तोड़ दिये गये? कम-से-कम भारत तो इस समय में इसके मारे परेशान है। बराबर धर्मांध लोग ख़ून-ख़राबा करते जा रहे हैं। आप कहेंगे - यह धर्म का दोष नहीं, यह तो प्रभुता और धन के लिए हो रहा है। यह बिल्कुल ठीक है। ईश्वरवादियों के बड़े बड़े युद्ध के भीतर भी प्रभुता और धन का लोभ ही काम कर रहा था। प्रभुता और धन के लोभ की, वस्तुतः वह उपज है भी; तो भी साधारण जनता के सामने उसे बड़े सौम्य और मोहक रूप में रखा जाता है। चाहे आप कितना ही परिष्कृत करना चाहें, उसे शुद्ध से शुद्ध बना दें, धर्म पुराने का पूजक और भविष्य की प्रगति का विरोधी रहेगा ही। वह तो श्रद्धा और भक्ति के नाम पर हमारे गले में मुर्दा बांधने का ही प्रयत्न करेगा।

-- राहुल सांकृत्यायन, दस्तावेज, पृ. 20

तरमीम-ए-दस्तूर

चंचल चौहान

जो तक़्सीम करे वो तरमीम-ए-दस्तूर
हमें मंज़ूर नहीं
पूरा मुल्क हुआ मुख़ालिफ़ निज़ाम मग़रूर
हमें मंज़ूर नहीं
सब्जबाग़ दिखला, हासिल की जो अक्सरियत
उसी की मय का नशा चढ़ गया जो भरपूर
हमें मंज़ूर नहीं
आज़ादी की क़द्रें, ना आईन महफ़ूज़
वहशी निज़ाम समझे कि ये अवाम मजबूर
हमें मंज़ूर नहीं
हिटलरशाही की करतूतें अब जगज़ाहिर
हसीं वतन के जिस्म पे नफ़रत के नासूर
हमें मंज़ूर नहीं
गली सड़क बाग़ों में गूंजे क़ौमी नारे
यह मुश्तरका तहज़ीब करो दिलों से दूर
हमें मंज़ूर नहीं
शाहीन बाग़ की ख़्वातीन बेटियां ख़फ़ा
इस जज़्बे का आज जो हो न सके मशकूर
हमें मंज़ूर नहीं
सिर्फ़ शहरियत मज़हब मुद्दे, जाहिल निज़ाम
मरें मुफ़लिसी में वतन के किसान मज़दूर
हमें मंज़ूर नहीं
तुल्बा अदीब ओ दानिशवर फ़नकार उठे
रुजअत पसंद[1] करें मादरे वतन बेनूर
हमें मंज़ूर नहीं
वतनपरस्तों को अब है आईन बचाना
मुल्क में ज़हनी गुलाम समझें इसे फ़ितूर
हमें मंज़ूर नहीं
इस यज़ीद[2] पर अब भोले दिल क्यों यक़ीं करें
अंधा बहरा शाह हो कितना ही मशहूर
हमें मंज़ूर नहीं
रूहे गांधी जो जवां दिलों में है चंचल
नफ़रत के करोना वायरस से हो माज़ूर[3]
हमें मंज़ूर नहीं

چنچل چوہان

ترمیمِ دستور

جو تقسیم کرے وہ ترمیم دستور
ہمیں منظور نہیں۔
پورا ملک ہوا مخالف نظام مغرور
ہمیں منظور نہیں۔
سبز باغ دکھلا حاصل کی جو اکثریت
اسی کی مے کا نشا چڑھ گیا جو بھرپور
ہمیں منظور نہیں۔
ازادی کی قدریں ، نہ آئین محفوظ
وحشی نظام سمجھے کہ یہ عوام مجبور
ہمیں منظور نہیں۔
ہٹلرشاہی کی کرتوتیں اب جگظاہر
حسیں وطن کے جسم پہ نفرت کے ناسور
ہمیں منظور نہیں۔
گلی سڑک باغوں میں گوں جے قومی نعرے
یہ مشترکہ تہذیب کرو دلوں سے دور
ہمیں منظور نہیں۔
شاہین باغ کی خواتین بیٹیاں خفا
اس جذبے کا آج جو ہو نہ سکے مشکور
ہمیں منظور نہیں۔
صرف شہریت مذہب مدے، جاہل نظام
مریں مفلسی میں کسان مزدور
ہمیں منظور نہیں۔
طلبا ادیب و دانشور فنکار اٹھے
رجعت پسند کریں مادرِ وطن بے نور
ہمیں منظور نہیں۔
وطن پرستوں کو اب ہے آئین بچانا
ملک میں ذہنی غلام سمجھیں اسے فتور
ہمیں منظور نہیں۔
اس یذید پر بھولے دل کیوں یقیں کریں
اندھا بہرا شاہ ہو کتنا ہی مشہور
ہمیں منظور نہیں۔
روحِ گاندھی جو جواں دلوں میں ہے چنچلؔ
نفرت کے کرونا وائرس سے ہو معذور
ہمیں منظور نہیں۔

मो. 9811119391

1 प्रतिक्रियावादी 2 एक तानाशाह 3 विकलांग

तेरी ज़िद है तो...ये भी इक दिन बदलेंगे

सागर सयालकोटी

तेरी ज़िद है तो
ये धरती, अंबर, तारे
ये काले फ़ैसले सारे
तेरी ज़िद है तो, ये भी इक दिन बदलेंगे

हवाओं के रुख़
क़फ़स-ओ-कहर, ये नादिरशाही
ये हिटलर, फ़िर्ओन
के सर पे जो ताज
तेरी ज़िद है तो, ये भी इक दिन बदलेंगे

ज़ालिम कोई भी देर तक नहीं रहता
सुर्ख़ आफ़ताब को भी
ग़ुरुब होना पड़ता है
वो शाम भी आख़िर आयेगी
तेरी ज़िद है तो, ये भी इक दिन बदलेंगे

ये मज़ाहिब, ये फ़िरक़े
ये बुत नफ़रतों के
ये तब्लीग़ झूठे जो सारे
बनाये गये हैं
तेरी ज़िद है तो, ये भी इक दिन बदलेंगे

इक दिन लाज़िम वो आयेगा
ये तख़्त हिलाये जायेंगे
ये ऐशोनशात फ़िरंगी के
नेज़ों पे नचाये जायेंगे

तेरी ज़िद है तो, ये भी इक दिन बदलेंगे

ये दौलत ये शोहरत के झगड़े
मज़लूम के दम से चलते हैं
और मज़लूम ही कुचला जाता है
अब ख़ैर नहीं ज़ालिम तेरी
हर चाल तेरी हम बदलेंगे
तेरी ज़िद है तो, ये भी इक दिन बदलेंगे

मो. 9876865957

आने वाला ख़तरा

रघुवीर सहाय

इस लज्जित और पराजित युग में
कहीं से ले आओ वह दिमाग़
जो खुशामद आदतन नहीं करता

कहीं से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले में कुछ नहीं मांगती
और उसे एक बार आंख से आंख मिलाने दो

जल्दी कर डालो कि फलने फूलने वाले हैं लोग
औरतें पियेंगी आदमी खायेंगे-- रमेश
एक दिन इसी तरह आएगा-- रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जायेगी-- रमेश
क्रोध होगा पर विरोध न होगा
अर्ज़ियों के सिवाय-- रमेश
ख़तरा होगा ख़तरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा-- रमेश

तीन नज़्में

बल्ली सिंह चीमा

1. औरतें

ये अभावों से उलझती काम करती औरतें
अब अंधेरे में मशालें बन जलेंगी औरतें।

ज़िंदगी, बच्चे, रसोई, खेत तक सीमित नहीं,
ज़िदगी को और भी विस्तार देंगी औरतें।

गोलबंदी कर रही हैं लड़ रही अन्याय से,
ज़िदगी को अब नया आकार देंगी औरतें।

जिंस मत समझो इन्हें अबला नहीं ये नारियां,
हर पुरानी बात से जमकर लड़ेंगी औरतें।

कारख़ानों और खेतों में घरों में गा उठीं,
गूंगे जीवन को नयी आवाज़ देंगी औरतें।

मौन रहकर सहने या सुनने के दिन तो लद गये,
बात हक़ इंसाफ़ की जमकर करेंगी औरतें।

'उठ मेरे हमराही मेरे साथ चलना है तुझे',
अपने जीवन साथियों को अब कहेगीं औरतें।

आंचलों से परचमों का काम लेना है इन्हें,
इंक़लाबी राह पर मिलकर चलेंगी औरतें।

2. कौन है यह माफ़िया

हर जगह छाया हुआ है कौन है यह माफ़िया?
रहबरों जैसा है वो बतला रहा है मीडिया।

एक बिल्डर, इक ज़मीं का, एक नशे का माफ़िया,
और कितने माफ़िया हैं जानता है मीडिया।

जंगलों को खा गया, नदियों के पानी पी गया,
फिर भी भूखा ही लगे है कौन है यह माफ़िया?

हाथ बांधे सच खड़ा है देख मेरे सामने,
झूठ को बतला रहा है कौन है यह माफ़िया?

बस्तियों को रौंद कर बसते शहरों को तोड़कर
कोठियां बनवा रहा है कौन है यह माफ़िया?

सो रहा क़ानून उसकी जेब में आराम से,
पुलिस को धमका रहा है कौन है यह माफ़िया?

३. तय तो यही हुआ था

गुंडों की सरकार न होगी, तय तो यही हुआ था,
महंगाई की मार न होगी, तय तो यही हुआ था।

भूखी होगी ना आबादी, तय तो यही हुआ था,
घर घर पहुंचेगी आज़ादी, तय तो यही हुआ था।

नारी पे अत्याचार न होगा, तय तो यही हुआ था,
देश में भ्रष्टाचार न होगा, तय तो यही हुआ था।

जात पांत सब मिट जायेंगे, तय तो यही हुआ था,
ऊंच नीच भी घट जायेगी, तय तो यही हुआ था।

सब बच्चे स्कूल जायेंगे, तय तो यही हुआ था,
एक सी शिक्षा सब पायेंगे, तय तो यही हुआ था।

न होंगे अब राजा रानी, तय तो यही हुआ था,
सस्ता होगा बिजली पानी, तय तो यही हुआ था।

ना दंगे ना कोई लड़ाई, तय तो यही हुआ था।
साथ रहेंगे भाई भाई, तय तो यही हुआ था।

मो. 07452970255

दो ग़ज़लें

महेश कटारे सुगम

1.

हां, उभरकर आ गया गुस्सा हमारे गांव का
है खड़ा तनकर हर इक तबक़ा हमारे गांव का

दर्द का इक दौर सा उट्ठा सियासी रूह में
आज जब हर आदमी सनका हमारे गांव का

हिल गया सारा प्रशासन आ गया भूकंप सा
पड़ गया प्रतिरोध अब महंगा हमारे गांव का

सोचने वालों ने सोचा ही नहीं है आज तक
ज़ख़्म कितना हो गया गहरा हमारे गांव का

बढ़ गयी बेचैनियां सोयी हुई सरकार की
आंख में जब पड़ गया तिनका हमारे गांव का

भाव मिलने तक नहीं बेचेगा वो अपनी फ़सल
कह रहा था आज ही सुखिया हमारे गांव का

हो गया डीज़ल बहुत महंगा करें तो क्या करें
किस तरह मिट पायेगा सूखा हमारे गांव का

भूल से जिस पे भी पड़ जाये दबंगों की नज़र
बच नहीं पाता वही बकरा हमारे गांव का

खोल दी सरकार ने इक देसी दारू की दुकान
हो गया वातावरण गंदा हमारे गांव का

आठ सालों से मुक़दमा चल रहा है खेत का
पेशियों पर जा रहा लंगड़ा हमारे गांव का

बिन दवा बेबस तड़पने के लिए मजबूर था
मर गया कल शाम को धन्ना हमारे गांव का

बंध रहे स्कूल में अब जानवर सरपंच के
बिन पढ़े, लाचार हर बच्चा हमारे गांव का

ज़ोर यह जब से चुनावों का बढ़ा है दोस्तो!
बढ़ गया है बेबजह झगड़ा हमारे गांव का

नाश्ता न भी मिले इक बार तो चल जायेगा
ज़िंदगी जैसा बना गुटखा हमारे गांव का

पेय जल तक है नहीं शौचालयों की क्या कहें
स्वच्छता अभियान यों चलता हमारे गांव का

शांति, सुख, समृद्धि की ख़ातिर कभी मशहूर था
नाम मिट्टी में मिला सारा हमारे गांव का

2.

बड़े अजीब तुम्हारे ये क़ैदख़ाने हैं
तुम्हारी धूप तुम्हारे ही शामियाने हैं

खुशी के रंग चमकते तुम्हारी आंखों में
हमारे सामने फैले कबाड़ख़ाने हैं

तुम्हारे पास तो रानाइयां हैं दौलत की
हमारे पास मुसीबत के वारदाने हैं

तुम्हारी कोई भी मर्ज़ी नहीं चलेगी अब
समय की धार में वो बह चुके ज़माने हैं

हमारे प्यार का मैदान अब करो ख़ाली
सुगम कपोत यहीं से हमें उड़ाने हैं

मो. 8770380598, 9713024380

दो ग़ज़लें

मुमताज

1

चोर-उचक्के लंदी-फंदी देश के चौकीदार हो गये
सर से पांव तलक झूठे हैं, सच के पैरोकार हो गये

राष्ट्रवाद की परिभाषा के उनके अपने मापदंड हैं
जिनको ये मंजूर नहीं हैं वो सारे ग़द्दार हो गये

सुनो! तुम्हार कच्चा चिट्ठा जनता को मालूम है सब
तुम साहिल बनने आये थे, तुम कैसे मंझधार हो गये

राम तुम्हारी नहीं बपौती, राम हमारे भी पुरखे हैं
सर आंखों पे आपकी श्रद्धा हम उसका विस्तार हो गये

भूत रफ़ायल का अब उनके सिर पर चढ़कर बोलेगा
तर्क-कुतर्क की बात नहीं है मुद्दे भ्रष्टाचार हो गये

चाय यहां पे बिकते-बिकते कॉफ़ी तक आ पहुंची है
अब वो कॉफ़ी हाउस के सुनिये! ख़ुद ही दावेदार हो गये

अब तो बंगाली बाबा की ही भभूत पे नज़रें हैं
ज्यों-ज्यों तुमने दवा खिलायी, त्यों-त्यों हम बीमार हो गये

लूट, भ्रष्टाचार, डकैती, आगज़नी और दंगा, क़त्ल
ईद-दीवाली पीछे छूटीं, देश के ये त्योहार हो गये

हम को तो मुमताज, मियां ख़ुद मंज़िल ने ही लूटा है
राहबरी करनी थी जिनको वो सारे बटमार हो गये

2

एक सुनो! ये बुरी ख़बरिया अच्छे दिन की जय बोलो
हम तो लुट गये बीच बजरिया अच्छे दिन की जय बोलो

झीनी-झीनी बुनी चदरिया अच्छे दिन की जय बोलो
ये ले अपनी लकुट कमरिया अच्छे दिन की जय बोलो

जिस गयीरी में राम रतन धन, भाई चारा बंधा रखा था
ठगों ने ठग ली वही गयीरिया अच्छे दिन की जय बोलो

सूर्य को मुर्ग़ा निगल गया है, रात पसर गयी चारों ओर
उस पे ये ताक़ीद ज़बरिया अच्छे दिन की जय बोलो

हांक रहा है ग़लत दिशा में भेड़ों की इस रेवड़ को
ये शातिर चालाक गड़रिया अच्छे दिन की जय बोलो

फूल परेशां, गुंचे हैरां, ये कैसी फ़स्ल-ए-गुल है
उस पे ये कमबख़्त नज़रिया अच्छे दिन की जय बोलो

हम क्या जाने मील के पत्थर, सुबह-दोपहरी, रात-बिरात
चलते-चलते कटी उमरिया अच्छे दिन की जय बोलो

भूख कुंआरी घर में बैठी प्यास का चर्चा गली-गली
घूमें देश-विदेश सांवरिया अच्छे दिन की जय बोलो

अब तो ये तालाब मगरमच्छों का डेरा है ममुताज'
ख़ैर मनाये सोन मछरिया अच्छे दिन की जय बोलो

मो. 9755589100

दो नज़्में
तसनीफ़ हैदर

1. आदमी क़ैद है

आदमी क़ैद है
वक़्त में, ख़ून में, लफ़्ज़ में
आदमी क़ैद है
आदमी का नहीं कोई पुरसाने-हाल[1]
देवजादे-तरब[2] से ख़ुदा-ए-शबिस्तान[3] ग़म तक नहीं
दार[4] की नोंक से
आबनूसी तफ़क्कुर[5] लुटाते क़लम तक नहीं
आदमी का लहू बे-निशां, नौहा-ख़्वां[6]
आदमी का सफ़र रायगां[7], बे-अमां[8]
बस्तियों में हैं आबाद सब बे-कफ़न आदमी
बे-पैरहन आदमी, और उनके तअफ़्फ़ुन-ज़दा[9] ज़हन में ज़िंदगी क़ैद है
आदमी क़ैद है
मज़हबों के अलमदार[10], शब के परस्तार[11] ये आदमी
सरहदों के निगहदार ये आदमी
इक तिलिस्मे-सियह[12] फूंकते ख़्वाब के ज़ेरे-मिनकार[13] ये आदमी
बे-यार, बेकार ये आदमी
अपनी तक़दीस[14] का बोझ कांधों पे लेकर
अपनी तारीख़ का दर्द आंखों में लेकर
मौत के हैं तलबगार ये आदमी
भागते दौड़ते आदमियों के रेवड़ में होंठों की आहिस्तगी क़ैद है
अपने ही शहर को भस्म करती हुई आग में रोशनी क़ैद है
आदमी क़ैद है
आदमी से कहो
मौत नज़दीक है
आदमी से कहो, राह तारीक है
आदमी से कहो, वो जो कुछ कर रहा है, नहीं ठीक है
आदमी से कहो
अपने जलते घरों की हिफ़ाज़त करे

अपने बीमार होते हुए मौसमों की हिफ़ाज़त करे
अपनी तारीख़ को छोड़ दे, अपने मुस्तक़बिलों की हिफ़ाज़त करे
आदमी से कहो
वो गुज़रते हुए और गुज़रे हुए वक़्त के दरमियां आज भी क़ैद है
आदमी क़ैद है

1. हालचाल पूछने वाला; 2. विलासिता रूपी पिशाच; 3. ग़मरूपी शयनागार का खुदा; 4. फांसी का तख़्ता; 5. बहुमूल्य विचार; 6. शोक-गीत गाता हुआ; 7. व्यर्थ; 8. असुरक्षित; 9. दुर्गंधयुक्त, सड़े हुए; 10. झंडा उठाने वाले; 11. अंधकार के उपासक; 12. काला जादू; 13. चोंच तले, या नाक तले; 14. पवित्रता

2. झाड़ियां और शनाख़्त

कांटेदार लोहे की बड़ी-बड़ी झाड़ियां
लिख रही हैं ज़मीन पर
हिफ़ाज़त के नित-नये तरीक़े
और कुछ अंदेशे
जिनके दामन में ज़िंदा हैं मुख़्तलिफ़ क़िस्म के
क़द-काठी के लोगों की तहज़ीबें
और माद्दी[1] तरक़्क़ियां
और भूख, जुर्म और पाबंदियां
पैदा होने से पहले ही ये झाड़ियां
लिख देती हैं
कुंडली में मौत के पुर-असरार[2] तरीक़े
कि किस रंग, किस नस्ल, किस फ़िरक़े, किस मज़हब और किस वतन
की भेंट चढ़ना है इस बच्चे को
ब-ज़ाहिर ज़िंदा नज़र आने वाले ये तमाम लोग
इन्ही झाड़ियों से ज़ख़्म खाने के आदी हैं
इन झाड़ियों के मुख़ालिफ़ीन[3] में पैदा होते हैं इस तरफ़ ग़द्दार
और उस जानिब दुश्मन
जो अस्ल में इन झाड़ियों को पिघलाना नहीं चाहते
बल्कि फैलाना चाहते हैं, उनके अंदर मौजूद स्याही को
मेरे इल्म के मुताबिक़
आज तक ज़मीन पर कोई ऐसा सूरज नहीं उगा
जो इन झाड़ियों के लोहे को पिघला सके
और दे सके इंसान को एक भरपूर दिन
शनाख़्त के मसले से आज़ादी का

1. भौतिक; 2. रहस्यमय; 3. विरोधी लोग

मो. 7289067645

और मूर्ति रोती रही

इब्ने कंवल

लल्लन ख़ां की हालत बहुत नाजुक बनी हुई थी। बहुत ज़्यादा ख़ून बह चुका था, जिस्म के हर हिस्से पर ज़ख़्म थे। लल्लन ख़ां के घर की औरतें दहाड़ें मार-मार कर रो रही थीं। घर के बाहर एक भीड़ जमा थी...

लल्लन ख़ां ख़ानदानी कुम्हार था। उसे बस इतना मालूम था कि बाप दादा के ज़माने से उसके ख़ानदान में यही काम होता आया है। वक़्त के साथ-साथ बहुत से लोगों ने ख़ानदानी काम छोड़कर दूसरा पेशा अपना लिया था या नौकरी करने लगे थे। लेकिन वह मिट्टी से जुड़ा रहा। उसने अपने बाप से बर्तन बनाने सीखे थे। बहुत कमउमरी में वह चाक पर ख़ूबसूरत बर्तन ढालना सीख गया था। कुम्हार की उंगलियां भी अजीब होती हैं; मिट्टी के लोंदे को बिना किसी सांचे के ऐसी शक्ल प्रदान करती हैं कि आंखें हैरान हो जाती हैं। जिस ज़माने में वह छोटा था मिट्टी के बर्तनों का रिवाज बहुत ज़्यादा था। हर घर में घड़े और सुराहियों के अलावा रसोई में भी मिट्टी के बर्तन इस्तेमाल हुआ करते थे। औरतें कूंड़े ही में आटा गूंधती थीं और दही भी कूंड़े ही में जमता था। ग़रीब घरों में मिट्टी ही के बर्तनों में खाना भी खाते थे। लेकिन धीरे-धीरे स्टील और चीनी के बर्तनों ने मिट्टी के बर्तनों की जगह ले ली। फ्रिज ने घरों से घड़ों को निकाल दिया, मिट्टी की सोंधी-सोंधी ख़ुशबू से पानी वंचित हो गया, कुल्हड़ में दूध या चाय पीना सिर्फ़ फ़ैशन के तौर पर बाक़ी रह गया। लेकिन उसने अपना पेशा नहीं बदला। वह तो अक्सर यह भी कहा करता था कि अल्लाह मियां भी तो हमारी ही बिरादरी के हैं। सबसे पहले तो मिट्टी से हज़रत आदम को उन्होंने ही बनाया था।

बचपन में अक्सर लल्लन गजन चाचा के यहां जाकर बैठ जाता था। गजन भी कुम्हार था। वह ज़्यादातर मूर्तियां बनाया करता था। लल्लन का भी दिल चाहता था कि मूर्तियां बनाये; लेकिन उसका बाप मना करता था कि मूर्तियां बनाना गुनाह है, पाप है। बचपन में वह पाप और पुण्य के फ़र्क़ को जानता नहीं था, इसलिए गजन चाचा से मूर्ति बनाना सीखता भी था और बनाने में मदद भी करता था। गजन चाचा उससे कहा करते, 'अगर मूर्ति बनाना पाप होता तो तुम्हारे अल्लाह मियां मूर्ति क्यों बनाते? सबसे पहले तो तुम्हारे अल्लाह मियां ने ही मूर्ति बनायी थी।'

वह कोई जवाब नहीं दे पाता। जब अपने बाप से यह बात कहता तो वे डांट कर ख़ामोश कर देता था। लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया उसकी समझ में आ गया कि मूर्ति बनाना पाप नहीं, एक कला है। वह अच्छी मूर्तियां बनाने लगा था; लेकिन बाप के ख़ौफ़ से या उसके सम्मान में अपनी इस कला को ज़ाहिर नहीं करता था। बाप के गुज़र जाने के बाद अपने घर में ही मूर्तियां बनाने लगा था। आहिस्ता-आहिस्ता वह बहुत मशहूर हो गया। उसके हाथ में बेपनाह सफ़ाई थी। हर वर्ग के लोग उसकी बनायी हुई मूर्तियां पसंद करते थे। उसकी बनायी हुई मूर्तियां घरों और मंदिरों में रखी थीं।

लल्लन ख़ां सभी देवी-देवताओं की बहुत सुंदर मूर्तियां बनाता था। वह उन्हें सीधे बाज़ार में नहीं बेचता था बल्कि लाला सुखीराम के ऑर्डर पर बनाता था। शहर में लाला सुखीराम के ही शो-रूम में उसकी बनायी हुई मूर्तियां रखी रहती थीं। मूर्तियां बनाने पर उसके बाप की तरह कुनबे के कुछ लोग एतराज़ भी करते थे; लेकिन उसे किसी की परवाह नहीं थी। वह कहता था :

'मिट्टी के बर्तनों में अब इतनी कमाई कहां कि घर चल सके। दीवाली पर दिये बनते हैं या गर्मियों में घड़े। और अब घड़े भी कौन इस्तेमाल करता है! दुनिया बदल रही है, हमें भी कुछ नया करना चाहिए।'

बात नया करने की नहीं थी, मूर्तियां बनाने की थी। लोग कहते थे, मूर्ति पूजा हराम है, वह कहता, तुम्हारे लिए हमारे लिए हराम है। उससे पूछो जिसकी अक़ीदत और आस्था इससे जुड़ी है। हम किसी के अक़ीदे पर क्यों एतराज़ करें। अल्लाह मियां भी कहते हैं, 'उसका दीन उसके साथ, हमारा दीन हमारे साथ।'

बहस के बीच वह काफ़ी भावुक हो जाता। मिसालें पेश करता, 'मक्के मदीना में जो टोपी, तस्बीह, जा-नमाज़ें बिकती हैं, मालूम है कौन बनाता है? चीन बनाता है। तरावियों (रमज़ान में पूरे महीने हर रात पढ़ी जाने वाली विशेष नमाज़) के ख़त्म पर मिठाई किस हलवाई की दुकान की बंटती है?'

वह एतराज़ करने वालों को इतने तर्क देता कि लोग ख़ामोश हो जाते थे। मूर्तियां बनाना उसका शौक था, उसे कृष्ण जी की बांसुरी बजाते हुए मूर्ति बनाना अच्छा लगता था।

पहली बार जब उसने कृष्ण जी की गाय के साथ मूर्ति बनायी थी तो अपनी पालतू गाय ही को सामने खड़ा कर लिया था। उसके घर में एक गाय बाप दादा के ज़माने से हमेशा रहती चली आ रही थी। घर में उसी का दूध इस्तेमाल होता था। वह गाय का दूध पी कर ही बड़ा हुआ था। उसे याद था कि एक बार उसकी गाय कहीं चली गयी थी, उसके बाप ने पूरे गांव में घर के सब लोगों को दौड़ा दिया था। पूरे दिन सब परेशान रहे थे। दोपहर को खाना भी नहीं बना था, हैरान और परेशान, थक-हार कर अस्र (शाम से पहले और दुपहर के बाद) की नमाज़ के बाद जब सब बैठे थे तो गाय अपने आप ही वापस आ गयी थी। सबने उसकी वापसी पर शुक्र अदा किया था। जानवर न अपना घर भूलते हैं और न अपने मालिक को। सामान्यतः शाम होने से पहले लौट आते हैं।

लल्लन ख़ां को नहीं मालूम था कि वह कब से इस गांव में है, बस इतना जानता था कि कुम्हारों का यह मुहल्ला सदियों से आबाद है। उसके दादा-परदादा तक की क़ब्रें इसी गांव में हैं। बाप के ज़माने तक उसके बनाये हुए बर्तन गांव और आसपास के गांवों तक जाते थे; लेकिन अब उसकी बनायी हुई चीज़ें शहर तक पहुंचती हैं। शहर के लोग ख़ुद आकर सस्ते दामों पर ले जाते हैं और शहर में महंगे दामों बेचा करते हैं। वह ये सब बातें जानता था। छोटी-छोटी बस्तियों में रहने वाले कारीगरों के हाथों से बनी चीज़ें बाज़ारों में बेचने वालों को अमीर बना देती हैं; मगर कारीगर ग़रीब ही रहते हैं। किसान की तरह कर्ज़ में डूबे हुए। किसान जो सबके भरण-पोषण का माध्यम होता है उसी के बच्चे भरपेट खाना नहीं खा पाते। अजीब दुनिया की व्यवस्था है! ज़्यादा मेहनत करने वाला कम उज़रत पाता है। उसकी मेहनत का फल किसी और को मिलता है। लल्लन ख़ां कभी-कभी लाला सुखीराम से यह बात कहता भी था :

'लाला जी! जितनी मेहनत मूर्ति बनाने में लगती है, सच्ची बात तो यह है कि इतनी उज़रत नहीं मिलती।'

लाला जी उसे समझाते, 'अरे लल्लन, तुम्हें क्या पता मार्किट के दांव-पेच। एक-एक चीज़ बेचने के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ती है। और फिर दुनिया-भर के टैक्स सरकार लेती है, हमें भी कुछ ज़्यादा मुनाफ़ा नहीं मिलता।'

लल्लन और बहस नहीं करता; न उसने कभी यह जानने की कोशिश की कि लाला सुखीराम उसकी बनायी चीज़ों से कितना मुनाफ़ा कमाते हैं। वह तो दो वक़्त की रोटी घर बैठकर मिलने पर ही ख़ुश रहता था। उसके बच्चों को भी उससे कोई शिकायत नहीं थी। उसकी दिनचर्या थी : सवेरे उठकर सबसे पहले गाय को चारा देकर उसका दूध दुहता, फिर चाय नाश्ता करके काम शुरू कर देता।

एक दिन हुआ यों कि जब सवेरे उठकर गाय को चारा देने गया तो यह देखकर उसके होश उड़ गये कि गाय खूंटे पर नहीं थी। ज़रा सी देर में लल्लन ख़ां ने चीख़-चीख़ कर सबको उठा दिया। घर के सभी लोग परेशान हो गये। इधर-उधर तलाश करने लगे। लल्लन ख़ां गाय की तलाश में गांव की गलियों और खेतों में मारा-मारा फिरता रहा। थक-हार कर वापस आ गया। पूरे गांव को मालूम हो गया कि लल्लन की गाय ग़ायब हो गयी है। लोगों ने हमदर्दी जतायी और तलाश में मदद भी की; लेकिन लल्लन ख़ां पर सक्ता सा छा गया था। वह छप्पर के नीचे बैठा गाय की उस मूर्ति को देख रहा था जो लाला सुखी राम के आर्डर पर उसने बनायी थी। गाय के पास ही कृष्ण जी की बांसुरी बजाती हुई मूर्ति खड़ी थी। पूरा दिन गुज़र गया, चारों तरफ़ अंधेरा हो गया; लेकिन गाय वापस नहीं आयी। उसे पता नहीं चला कि कब वह लेटे-लेटे सो गया। फिर अचानक यों हुआ कि रात के अंधेरे में दस पंद्रह नौजवानों की एक भीड़ ने लल्लन ख़ां के घर पर हमला कर दिया, दरवाज़ा तोड़ डाला, लल्लन ख़ां पर बेतहाशा लाठियां बरसायीं। औरतें और बच्चे घरों में छिप गये। नौजवान चीख रहे थे :

'गऊ माता की हत्या हुई है।'

'काट के खा गया, काट डालो इसे भी।'

शोर सुनकर गांव के लोग इकट्ठे हो गये। लल्लन ख़ां पर लाठियां टूटती रहीं; लेकिन कोई बचा न सका। जब इन नौजवानों को यक़ीन हो गया कि अब लल्लन ख़ां में जान बाक़ी नहीं तो वे 'गऊ माता की जय' के नारे लगाते हुए चले गये। घर की औरतें डरी-सहमी दरवाज़े खोल कर बाहर आयीं और लल्लन ख़ां के ख़ून से तर-ब-तर जिस्म को देखकर चीख़-चीख़ कर रोने लगीं। सवेरा होने लगा था। पुलिस आ चुकी थी। पूरा गांव लल्लन ख़ां के घर के इर्द-गिर्द मंडरा रहा था। पुलिस घर की तलाशी में मसरूफ़ थी। सारे बर्तन उलट-पलट दिये गये थे। रसोई में गाय का गोश्त तलाश किया जा रहा था कि अचानक भीड़ को चीरती हुई लल्लन ख़ां की गाय घर में दाख़िल हुई और लल्लन ख़ां के ज़ख़्मी जिस्म को चाटने लगी। लोगों ने शोर मचाया, 'गाय आ गयी—लल्लन ख़ां की गाय आ गयी।'

मो. 9891455448

तर्जुमा : नूरेन अली हक़

मो. 7011529033

कहानी

मुक्ति द्वार के बाहर

महेश दर्पण

रास्ता तो ख़ासा जाना-पहचाना था, पर इस बार उस पर से गुज़रते हुए मुझे भीतर एक बोझ-सा महसूस हो रहा था। कितनी ऊहापोह के बाद मैं खुद को वहां जाने के लिए तैयार कर पाया था! कई बार तो मन में यह भी आ रहा था कि जाकर करूंगा ही क्या? वहां मिलूंगा भी तो किससे? अव्वल तो कोई परिचित चेहरा नज़र आना ही नामुमकिन है, लेकिन अगर कोई नज़र आ भी गया, तो क्या ऐसे सशंकित माहौल में कोई बात कर भी पायेगा?

रास्ते भर मैं जाने क्या-कुछ सोचता चला जा रहा था। राकेश ने मुझे स्कूल के मोड़ पर ही उतार देने का वादा किया था, सो उसी की कार से मैं वहां जा रहा था। मोड़ आते ही उसने ब्रेक लगाये और कहा, 'चाचा जी, मुझे अगर मीटिंग अटेंड न करनी होती तो कुछ देर रुक कर, आपको घर भी छोड़ देता।' रास्ते भर वह ख़ामोश ही रहा था। जानता जो था कि मैं अपने किसी अज़ीज़ की ग़मी में जा रहा हूं।

कार से उतरकर अब मैं उसी रास्ते पर था जिस पर से होकर जाने कितनी बार आया-गया होऊंगा, पर आज जैसे मेरे पैर उठते ही न थे। मेरी ही तरह शायद यह यक़ीन उसे चाहने वालों में किसी को भी न हो रहा हो कि आख़िर एक चलता-फिरता अच्छा-ख़ासा इंसान इस तरह अचानक दुनिया से रुख़्सत हो कैसे सकता है!

गेट से भीतर होकर मैं बेध्यानी में बढ़ना ही चाहता था कि गेटकीपर ने टोका, 'कहां जायेंगे आप? एंट्री तो कर दीजिए अपनी।'

'ओह, मैं तो बस ग़मी में आया हूं', मैंने कहा और रजिस्टर पर एंट्री करते हुए सोचने लगा, 'अब कौन यहां इसके बाद आना चाहेगा!'

अभी दो-चार क़दम ही चला था कि एक लड़का दौड़ता हुआ आया, बोला, 'आप जे. पी. साहब को सरधा-सुमन अरपित करने आये हैं न! आइए, मेरे साथ आ जाइए'।

स्थितियां बदल जाने से, कैसे सब कुछ पल भर में पहले जैसा नहीं रहता। इससे पहले कभी ऐसा न हुआ था कि मैं यहां पहुंचा होऊं और जे. पी. मुझे रिसीव करने गेट पर ही खड़ा न मिला हो। कभी एक-दो मिनट का विलंब हो भी जाये, तो वह दूर से दौड़ता नज़र आ जाता, 'आइए न सर, मैं बस आ ही रहा था, पहले एक कप चाय ले लीजिए, इसके बाद मैं आपको उन लोगों से मिलवाता हूं जिन्हें आप आज ऐड्रेस करेंगे।'

विज़िटिंग रूम में न ले जाकर प्रायः वह मुझे अपने ही रूम में ले जाता। चश्मे के भीतर से चमकती उसकी आंखें और चौड़े माथे वाला चेहरा मेरे एकदम क़रीब हो आता, 'सर, आप यहां आते हैं न, तो वह दिन यादगार बन जाता है, आपको मालूम है सर, यहां लोग आपको सुनना कितना पसंद करते हैं, कुछ कलीग्स ने तो बाक़ायदा यह फ़रमाइश ही रख दी है कि आपको बुलवाने में इतना लंबा गैप न किया जाये।'

बातों-बातों में वह उत्साहपूर्वक अपना लिखा और छपा कुछ न कुछ दिखाता जाता और पूछता, 'क्या आपकी नज़र से *आम जन* में पिछले दिनों छपा मेरा लेख गुज़रा है?' वह जानने को उत्सुक रहता कि जो कुछ वह सोच और लिख रहा है, उसमें और सुधार कैसे किया जा सकता है? यही नहीं, वह यह भी ध्यान रखता कि खुद को कैसे एक एनर्जैटिक यंग के रूप में प्रस्तुत कर सके। एक बार उसकी दाढ़ी कुछ ऐसे बढ़ गयी नज़र आयी कि उसका चेहरा ही बदल गया। मिलते ही मैंने उसे अपनत्व भरे भाव से टोक ही तो दिया था, 'क्या जे. पी., यू आर नॉट लुकिंग लाइक यू। तुम पर तो फ्रेंच कट ही फ़बती है भई!'

मैं भले ही भूल गया, उसने हमेशा याद रखा। तब से मैं उसे ज़्यादातर फ्रेंच कट में ही देखता आ रहा था। जे. पी. अचानक ही मेरा और मैं उसका आत्मीय बन गया था। दरअसल, हुआ यह कि आठ-दस साल पहले एक दिन बुक फ़ेयर के सेमिनार हॉल में किसी स्कूल द्वारा आयोजित सभा में उसने मुझे बोलते हुए सुन लिया। प्रोग्राम ख़त्म होते ही मेरे पास चला आया और अपना परिचय देते हुए बोला, 'मेरा नाम जे. पी. सिंह है सर! मैं शैक्षिक विकास परिषद से जुड़ा हूं। हम लोग गवर्नमेंट स्कूलों के टीचर्स की वर्कशॉप ऑर्गनाइज़ करते हैं और आप जैसे गुणी लोगों से उन्हें मिलवाते हैं। इससे उन्हें एजुकेशन का ऐसा सबक़ मिलता है जो किसी फ़ॉर्मल ट्रेनिंग में नहीं मिल सकता। सर, अगर आप थोड़ा समय निकाल सकें तो हमारे वर्कशॉप में आपका स्वागत है। आप आयेंगे न, तो आपको बड़ा अच्छा महसूस होगा। और सच बात तो यह है कि एजुकेशनल एनवायरनमेंट को आप जैसे लोग ही बेहतर बना सकते हैं।' अक्सर लोग औपचारिकता में बहुत कुछ कह जाते हैं, मैंने सोचा था, पर जे. पी. ऐसा न निकला।

अगले ही महीने एक दिन उसका कॉल आ धमका, 'सर, तीन दिन का वर्कशॉप है। हम चाहेंगे कि तीनों दिन आप हमारे लिए समय निकालें, लेकिन यदि तीनों दिन संभव न हो, तो आप अपनी सुविधा से बता दें ताकि हम लोग एकॉर्डिंगली ऑफ़िशियल लैटर भिजवा सकें।'

उसकी आवाज़ और लहजे में ऐसा आकर्षण था कि पहली बार मैं एक दिन, दूसरी बार दो दिन और फिर अक्सर पूरा वर्कशॉप ही अटैंड करने लगा। उसकी इच्छा बस यह रहती कि वर्कशॉप में आये अध्यापक-अध्यापिकाओं के साथ आमंत्रित वक्ता ऐसा दोस्ताना संवाद करें जिससे वे अपने स्कूलों में लौटकर पढ़ाते समय खुलकर नये प्रयोग कर सकें और छात्रों के बीच गंभीरता से पढ़ने की संस्कृति का विकास कर सकें।

जब-जब मैं वर्कशॉप में जाता, जे. पी. से ख़ाली समय में पढ़ने-पढ़ाने को लेकर खूब बातें होतीं। मुझे सचमुच लगता, वह अपने क्षेत्र में एक क़ायदे का आदमी है।

चलते-चलते अचानक लड़का एक कमरे के आगे ठहर गया। उसने हाथ से संकेत किया और दरवाज़े को धीरे से धकेल दिया। इस बीच मैंने अपने जूते उतार कर पहले से दीवार किनारे पंक्तिबद्ध रखे जूते-चप्पलों के साथ रख दिये।

लड़का मुझे छोड़कर आगे बढ़ गया था और मैं 'ओऽऽऽम्' की धीमी ध्वनि के बीच वॉल टु वॉल बिछी सफ़ेद चादर वाले कमरे में प्रवेश कर गया। ठीक सामने दीवार से लगी एक बड़ी चौकी पर रखी जे. पी. की फ्रेम लगी बड़ी तस्वीर पर फूलमाला टंगी हुई थी। वही संजीदा मुस्कान। दूर तक देखती आत्मविश्वास भरी आखें। फ्रेंचकट के सफ़ेद बालों के साथ खिचड़ी मूछों में जे. पी. को देख मुझे अब भी यक़ीन नहीं हो रहा था कि जो शख़्स अभी महीना भर पहले कंस्टीट्यूशन क्लब में शिक्षा-शास्त्रियों के बीच इतनी बढ़िया तक़रीर देकर वाहवाही लूट रहा था, अब सचमुच स्मृतिशेष हो चुका है। लेकिन

मेरे यक़ीन न करने से क्या होने वाला था! जे. पी. की तस्वीर पर बने बॉर्डर के बाहर उसके नाम के नीचे दो तारीख़ें साफ़ लिखी नज़र आ रही थीं : (1 जुलाई, 1973 - 5 सितंबर, 2019)।

तस्वीर के सामने ही चौकी पर एक थाली में गुलाब की पंखुड़ियां रखी हुई थीं और बायीं ओर एक दीया रखा था जिसकी बाती जलते हुए धीमे-धीमे हवा के प्रभाव में लहरा रही थी। मैंने वातावरण के असर में या कहूं कि जे. पी. के प्रति श्रद्धावनत होकर गुलाब की कुछ पंखुड़ियां उठायीं और उसकी तस्वीर के सामने रख हाथ जोड़ दिये।

कमरा ख़ासा बड़ा था। एसी शायद काफ़ी देर से चल रहा होगा, उमसभरी गर्मी के बाहरी वातावरण से वहां पहुंचे मुझे ज़रूर कुछ ठीक लगा; पर क्या जे. पी. की तस्वीर को इसकी ख़बर भी होगी? मुझे जाने क्यों, अनायास निगमबोध घाट पर बने एसी रूम की याद हो आयी। पर तभी यह अहसास भी होने लगा कि तस्वीर के सामने मेरा ज़्यादा देर खड़ा रहना, दूसरों को पता नहीं कैसा लगे! लिहाजा, मैं ठीक सामने बैठे लोगों के पास कुछ हट कर जा बैठा।

मैं कभी जे. पी. की तस्वीर को देखता तो कभी दीये की लौ पर मेरी नज़र जा टिकती। फ़र्श पर चादरें क़रीने से बिछी थीं। कुछ देर बाद ही मेरी नज़र उनके किनारे के डिज़ाइनों पर लगी-लगी ही धुंधलाने लगी। चादरों के बॉर्डर पर खूबसूरत डिज़ाइन अब मुझे हिलते-से नज़र आने लगे। लेकिन अजीब बात यह थी कि दूर रखी जे. पी. की तस्वीर एकदम साफ़ वैसी की वैसी नज़र आ रही थी।

अचानक मुझे लगा कि जे. पी. मेरी बग़ल में आकर बैठ गया है। उसे मेरे पास आकर बैठते देख जाने क्या हुआ कि क़तार में बैठे लोगों में से तीन-चार के बीच फुसफुस होने लगी। इसके बाद जैसे ही वे उठकर कमरे से बाहर निकलने लगे, मेरी नज़र पहले उन पर और फिर जे. पी. की तस्वीर पर पड़ी। मैं हैरान रह गया, वहां फ्रेम तो था, पर जे. पी. उसमें से नदारद था। मैंने बग़ल में देखा तो जे. पी. सवालिया निगाहों से मेरी तरफ़ देख रहा था। बात ठीक भी थी। आख़िर एक ही वक़्त में कोई दो जगह कैसे मौजूद हो सकता है!

'श्रद्धा-सुमन' लिखा काले कवर वाला एक रजिस्टर खुद ब खुद खिसकता दिखा, तो मुझे और हैरानी होने लगी। आखिर एक बेजान चीज़ बग़ैर किसी के सहारे के कैसे चल सकती है! मैं सोच ही रहा था कि रजिस्टर के ठीक पास से कुछ पीछे की ओर खिसकता मुझे नज़र आया। मुड़ कर देखा तो पाया कि भरी आंखों हाशिम क़ुरैशी अपनी स्टिक को फ़ोल्ड कर रहे थे। ओह, तो हाशिम भाई ने ही रजिस्टर मेरी ओर खिसकाया था। यह वही हाशिम थे जिनसे जे. पी. ने मेरा परिचय करवाते हुए कहा था, 'सर, ये एजुकेशन के लिए पूरी तरह समर्पित इंसान हैं। पैर में रॉड पड़ा है, पर जहां कहिए, वहीं चल देने को तैयार रहते हैं। बस यह समझ लीजिए कि ऐसे लोगों के साथ से काम करने का हौसला और बढ़ जाता है।'

वैसे आप कुछ याद करना चाहें, तो भले याद न आये, पर हाशिम को देखकर मुझे उससे हुई पहली भेंट अच्छी तरह याद हो आयी। वर्कशॉप के दौरान अध्यापकों के बीच बैठा वह बड़ी संजीदगी से मेरी बातें सुन रहा था। मैं जो भी पूछता, वह जवाब देने के लिए हाथ खड़ा कर देता। उसके जवाब बड़े माकूल होते और ज़बान भी। मैंने पहली बार में ही यह नोट कर लिया था कि उसे कुछ तकलीफ़ ऐसी ज़रूर है कि खड़े होने में दिक्क़त महसूस करता है। लेकिन आप इस काम में उसकी मदद करना चाहें, तो उसे क़तई मंजूर नहीं। पहले वह एक हाथ की बैसाखी ठीक करता, फिर दूसरे हाथ की स्टिक के सहारे उठ खड़ा होता। वह आता भी ख़ासा दूर से था। पर उत्साहित ऐसा रहता, जैसे कहीं आसपास से ही चला आया हो। दो-एक मुलाक़ातों में ही हाशिम और मैं एक-दूसरे के ख़ासे क़रीब हो गये थे।

पता नहीं, मुझे हाशिम की ओर देखते हुए देख जे. पी. क्या सोच रहा होगा! इस ख़याल के साथ मैंने बग़ल में बैठे जे. पी. पर नज़र डालनी चाही तो हैरानी ने मुझे फिर जकड़ लिया। वह श्रद्धा-सुमन वाले रजिस्टर पर लोगों द्वारा लिखे गये कमेंट पढ़ रहा था। मैंने आंखे बंद कर लीं और उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करने लगा। अजीब बात यह थी कि मैं प्रार्थना करना चाहता और जे. पी. के साथ हुए संवादों के टुकड़े बीच में आ खड़े होते।

मैं सुन रहा था संगीत में डूबी 'ओऽऽम्' की ध्वनि के बीच कहीं दूर से आ रही जैसी आवाज़ में जे. पी. कह रहा था, 'सर, आप देख रहे हैं न, ये टीचर्स पूरे मन से पढ़ाना चाहते हैं। इनमें जज़्बा है, लगन है। लेकिन होता क्या है कि यहां वर्कशॉप से अपने स्कूलों में लौटते ही इनके सपने हवा होने लगते हैं, वहां रह-रह कर उन पर वे दबाव काम करने लगते हैं जिनसे उनकी दिमाग़ी हालत ही बदल जाती है और पढ़ा न पाने की तकलीफ़ उन्हें फिर से एक यातना के लंबे सिलसिले में धकेल देती है। असल बात तो यह है सर, कि हमारा पूरा एजुकेशन सिस्टम ही सड़ चुका है, यहां बस दिखाने के दांत रह गये हैं। किसी को इससे कोई सरोकार ही नहीं कि स्कूलों में पढ़ाई का स्तर सचमुच सुधारा कैसे जाये।'

जे. पी. जब भी बात करता, उसके शब्द आक्रोश में फट पड़ने को होते। कभी महसूस होता कि उसकी आंखें बड़ी होती जा रही हैं और पूरा चेहरा आंखों में ही तब्दील हुआ जा रहा है। मैं कभी अपना चेहरा पल भर को भी उसकी तरफ़ से हटा लेता तो वह फिर एक वाक्य से मुझे अपनी तरफ़ देखने को मजबूर कर देता, 'आप सुन रहे हैं न सर?'

मुझे बंद आंखों में यही वाक्यांश फिर सुनायी दे रहा था। मैंने आंखें खोलीं, कंडोलेंस हॉल में नज़र घुमायी तो पाया कि वहां अब बस मैं और हाशिम ही बैठे रह गये थे। हाशिम सिर झुकाये अपने में ही कहीं डूबा हुआ था। कौन जाने, मेरी ही तरह उसे भी जे. पी. की बातों ने परेशान कर रखा हो।

मुझे याद हो आया, एक बार मैंने उससे कहा था, 'जे. पी., मुझे यह देख कर बड़ा अच्छा लगता है कि तुम अपने काम में इतने इन्वॉल्व रहते हो, कभी लगता ही नहीं कि तुम नौकरी को नौकरी की तरह कर रहे हो', तो वह पलट कर बोला था, 'सर, हम लोग यहां कुछ भी क्यों न कर लें, सच बात तो यह है कि यहां जो टीचर्स आते हैं न, वे जब अपनी डेली प्रॉबलम्स सुनाते हैं तब जी भर आता है। सर, मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं कि आख़िर हम इनके लिए प्रैक्टिकली क्या और कैसे कर सकते हैं? और सबसे बड़ी बात यह कि शिक्षा में असमान स्तर की समस्या का अंत कैसे हो?'

वह स्कूलों में पढ़ाने वालों के सीधे संपर्क में रहता था। वे भी अपने दुखड़े उससे खूब खुलकर साझा करते थे। दुख की इसी आग ने उसे अख़बारों में लिखने पर मजबूर किया था। अक्सर वह शिक्षा जगत से जुड़े मुद्दों को अपनी टिप्पणियों-लेखों में उठाता और उन्हें अख़बारों में छपने को भेज देता। मैंने उसकी ऐसी ही छपी कई टिप्पणियां पढ़कर प्रशंसा करते हुए एक बार कहा था, 'ये वे प्रैक्टिकल प्रॉब्लम्स हैं जिन्हें और कोई टच नहीं करता। एजुकेशन पर लिखने वाले ज़्यादातर लोग बड़ी-बड़ी सैद्धांतिक बहसों में ही उलझे रह जाते हैं। तुम लिखते रहो, देखना एक दिन जब तुम्हारी किताबें छपना शुरू होंगी, इस फ़ील्ड के तुम अकेले जांबाज़ कहलाओगे।' पर वह मेरी बात को अनसुना कर उस दिन के प्रोग्राम के बारे में मुझे बताने लगता, 'सर, आपको इंट्रोड्यूस कराने के बाद मैं आपके और टीचर्स के बीच से ग़ायब हो जाऊंगा।'

सचमुच, वह लेक्चर रूम से जाता, तो फिर तभी लौटता जब ब्रेक टाइम क़रीब होता। ब्रेक टाइम में भी सबके साथ चाय पीने की जगह वह घूम-घूम कर टीचर्स से फ़ीडबैक लेता रहता। अपने काम को लेकर उसमें यह एक ऐसी भूख थी जो कभी शांत न होती।

लेकिन हुआ क्या! अब वह तो खुद शांत पड़ा है और जिस सिस्टम ने उसे शांत करने में अहम भूमिका निभायी वह पहले की तरह निर्लज्जता से दांत फाड़े ज्यों का त्यों खड़ा है।

मैंने ग़ौर किया, ठीक जिस वक़्त मैं यह सोच रहा था, मेरे कान में जे. पी. की आवाज़ सुनायी देने लगी, 'सर, यह जो सब अचानक घटित हुआ है न, वह सारा का सारा इतना ऑर्गनाइज़्ड है कि कोई समझ ही नहीं सकता। कैन यू बिलीव इट, सर! मुझे पूरा यक़ीन है कोई मुझे और मेरी राइटिंग को लंबे समय से वॉच करता चला आ रहा था। बाक़ायदा पूरी फ़ाइल बना रखी थी उसने मेरे पब्लिश्ड वर्क की। पहले तो मैं कुछ समझ ही न सका था, लेकिन अब तो मेरी नज़र से कुछ भी छिपा हुआ नहीं। जो-जो, जैसे-जैसे होता गया, मैं सब आपके सामने हू-ब-हू रख सकता हूं।'

जब मैं यह सब सुन रहा था, उसकी आवाज़ एक़दम पहले जैसी लग रही थी। बस, उसका चेहरा मेरी नज़र के दायरे में नहीं था। वह बता रहा था, 'सर, मैंने बस सचाई को ही उजागर किया था। और वह यही है कि देश के कुछ सरकारी स्कूलों को देखकर कुछ भ्रम इसलिए हो सकता है क्योंकि इन्हें ख़ास तौर पर तैयार किया जा रहा है। पर सच्चाई यह है कि देश को छोड़िए, राजधानी तक में नगर निगम के ज़्यादातर स्कूलों में इस तरह की सुविधाएं अब भी एक सपना ही बनी हुई हैं। विद्यालयों में शौचालय और पीने का पानी तक नहीं होता। गंदगी में ही बच्चे उठते-बैठते हैं। कहीं-कहीं आइसीटी लैब है, लेकिन शिक्षक नहीं हैं। सामान्य शिक्षकों के पद ख़ाली पड़े हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे का एक पूरा अध्याय आइसीटी पर ही केंद्रित है। लेकिन कक्षाओं की स्थिति इससे ठीक उलट है। देश के अन्य राज्यों के सरकारी स्कूलों में सामान्य कक्षा कक्ष और अध्यापकों आदि की ज़बर्दस्त कमी है। ऐसे में हमारा प्रशिक्षित शिक्षक कैसे अपने बच्चों को सम्यक तौर पर सीखने-सिखाने की सकारात्मक प्रक्रिया को अंजाम दे सकेगा! आख़िर क्या कारण है कि शिक्षक अपने शैक्षणिक समाज में होने वाले राजनीतिक और नीतिगत फ़ैसलों में कभी भागीदारी ही नहीं कर पाते?' अचानक रुक कर जे. पी. मेरी तरफ़ देखने लगा, 'बताइए सर, क्या मैंने कुछ ग़लत कह दिया था!'

मैंने जो उससे कहा, उसकी कोई आवाज़ मुझे सुनायी ही न दी। पर जब जवाब में जे. पी. फिर शुरू हो गया तो मुझे लगा कि वह अपने एक ख़ास 'राइट अप' को लेकर मुझे कन्विंस करने की कोशिश में है, 'सर, इसीलिए देश के शिक्षकों का व्यवस्था पर से भरोसा ही उठ चुका है। वे यह मान चुके हैं कि कहीं कोई उनकी नहीं सुनने वाला। वे अपनी बात रखते भी हैं तो क्या उन्हें किसी भी नीतिगत प्रक्रिया में कभी शामिल किया जायेगा? सर, मैंने इस 'राइट अप' में यह बताने की कोशिश भी की थी कि शिक्षकों के पास शिक्षण के अलावा बहुत से ऐसे स्कूली काम होते हैं जिन्हें उन्हें मजबूरन करना ही पड़ता है। इनमें जनगणना, बाल गणना, बैंक में बच्चों के ख़ाते खुलवाना आदि जैसे काम भी आते हैं। कई जगह तो मिड डे मील के अलावा भी अनेक विभागीय काम होते हैं जो उन्हें सौंप दिये जाते हैं। अब अगर मैं यह सब सामने रखने की कोशिश कर रहा था, तो क्या यह ग़लत था जो मुझ पर दबाव बनाकर ज़बरन रिज़ाइन ले लिया गया! मैं जिसे सच की लड़ाई लड़ना समझ रहा था, उसके ख़िलाफ़ ऐसे कई लोग एकजुट हो गये जो नहीं चाहते कि शिक्षा जगत में कोई बदलाव आये। सच बात तो यह है कि सर, इन सब के कोई न कोई वेस्टेड इंटरेस्ट इन्वॉल्व हैं। ऐसे में अगर मुझे हार्ट अटैक हुआ और फिर मैं अपने परिवार की धड़कती ज़िंदगी से ही जुदा हो गया तो मेरे अलावा किसी का क्या गया? चार-छह दिन लोग मेरे बारे में चंद बातें कर लेंगे; पर इससे होगा क्या? आप ही देखिए न, जिस ऑर्गनाइज़ेशन ने मुझसे इस्तीफ़ा लिखवाया, उसी ने कंडोलेंस रूम बनाकर मेरी तस्वीर यहां सजा कर रखवा दी। और तो और, आप भी यहां फूल चढ़ाने चले आये।'

□

किसी का हाथ अचानक अपने कंधे पर महसूस कर मैं चौंक गया। जो लड़का मुझे कंडोलेंस रूम तक छोड़ गया था, वही पानी के पैक ग्लासों से भरी एक ट्रे लिए खड़ा था, 'आप पानी लेंगे सर?' 'नहीं' कहकर मैं फिर जे. पी. की बातें विस्तार से सुनना चाहता था, पर वह शायद अपनी बात के आख़िरी सिरे पर पहुंच चुका था, 'आप ही बताइए सर, मैं क्यों बेवजह उस फ्रेम में जकड़ा रहूं जो पहले मेरी जान लेता रहा और अब मेरे प्रति हमदर्दी जताने के लिए भी मेरा ही इस्तेमाल कर रहा है! बस उन लोगों का ख़याल करके फ़ोटो में जकड़ने को मजबूर हूं जो मेरे न रहने की ख़बर पाकर दूर-दराज़ जगहों से फूल-चढ़ाने यहां चले आ रहे हैं। सर, मेरा कहना तो बस यह है कि मेरे प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि आप सब मिलकर किसी तरह देश के भविष्य से हो रहे ऑर्गनाइज़्ड खिलवाड़ को रोकने के लिए सामूहिक कोशिश शुरू कर दीजिए।'

मैंने सामने देखा तो अब जे. पी. फिर से फ्रेम में जा घुसा था।

मैं सोचने लगा, 'क्या लाइफ़ है! जब चाहो निकल आओ, जब चाहो वहीं पहुंच जाओ। किसी को ख़बर तक नहीं होगी।' तभी लगा, मेरे कान में कोई फुसफुसाया, 'क्या कह रहे हैं सर, लाइफ़ से तो मैं कभी का बाहर हो गया! आप बस यह कह सकते हैं कि मुक्त हो गया लाइफ़ के बंधन से; लेकिन सच बताऊं, यह तो मेरी मुक्ति का द्वार भर है। इसके भीतर मैं प्रवेश तभी कर पाऊंगा जब मुझे लगने लगेगा कि किसी भी रूप में सही, शिक्षा के क्षेत्र में वास्तविक सुधार का काम शुरू हो गया है। वही मेरी असल मुक्ति होगी। आप से यह सब इस वजह से कह पा रहा हूं क्योंकि आप मेरे मूल मनोभावों को समझते हैं। ठीक कह रहा हूं न सर?' उसने जैसे अपनी आंखें ठीक मेरी आंखों पर जमा दीं।

जैसे ही मैंने उसकी आंखों की ओर देखा, मैं हैरान रह गया। उसकी दोनों आंखों से पुतलियां नदारद थीं। वहां बने दो घने काले खोखल अब मुझे डरा रहे थे।

मैंने अपनी आंखें मूंद लीं और लंबी सांस लेकर, तन कर बैठ गया। भीतर से मैं बेतरह डरा हुआ था, क्योंकि जे. पी. जो ज़िम्मेदारी मुझ पर डाल रहा था, पता नहीं, मैं उसके क़ाबिल भी था या नहीं!

तभी मैंने सुना, कोई कह रहा था, 'ये जे. पी. सर को बहुत मानते थे। जे. पी. सर भी इन्हें खूब सम्मान देते थे। कित्ती देर से आये बैठे हैं यहां! आजकल कौन निकालता है इतना टाइम किसी के लिए!'

टाइम, मैं जे. पी. के लिए नहीं, अपने लिए ही तो आया हूं यहां! यहां जो भी आये हैं, क्या वे जे. पी. के लिए आये हैं? जे. पी. कहां आता देखेगा उन्हें! वह तो मुक्ति के द्वार पर जा पहुंचा है। अब बस ज़रूरत है उसे पूर्ण मुक्ति दिलाने की दिशा में सक्रिय हो जाने की। सब अपने-अपने लिए ही आये हैं यहां। भले ही ऑर्गनाइज़ेशन सोच रहा हो कि उसका नाट्य सफल रहा, लेकिन यह नाट्य भी नाट्य द्वारा ही तो भेदा जा सकेगा अब।

'ओऽऽम्' की धीमी तरंग अब भी कंडोलेंस रूम में गूंज रही थी। पूरा वातावरण एक म्यूज़िकल शोक में डूबा हुआ था। जे. पी. फ्रेम में जड़ा हुआ भी मुझे देखे जा रहा था। तभी लगा जैसे वाइब्रेशन मोड में होकर भी मोबाइल मुझसे कुछ कह रहा था। बाहर आकर जेब से मोबाइल निकाला। तीन चार मिस्ड कॉल उलाहना दे रहे थे।

जैसे ही पहले नंबर पर कॉल लगानी चाही, ठीक सामने से एक मुस्कराता चेहरा आ खड़ा हुआ। यह वही चेहरा था जिसके साथ जे. पी. यहां मुझे कई बार मिल चुका था। मैंने डबडबाई आंखों से उससे हाथ मिलाया और आगे बढ़ने को ही था कि सुना, वह कह रहा है, 'आते रहिएगा सर कभी-कभी। आप

आयेंगे तो लगेगा कि...'। वह कुछ कह रहा था और मुझे उसकी मुस्कान में घुली कड़वाहट परेशान किये जा रही थी। मुझे लगा कहीं यही वह शख़्स तो नहीं जिसने...।

गेट से बाहर निकल कर जैसे ही सड़क पर आया, मैंने देखा इंस्टीट्यूट के अहाते से निकली कारों से पिछड़ते हाशिम भाई अपनी बैसाखी संभाले धीरे-धीरे किनारे-किनारे बढ़े चले जा रहे हैं। मैंने अपनी चाल कुछ तेज़ कर ली। ऐसे ही लोग जे. पी. को मुक्ति द्वार के भीतर प्रवेश कराने में सहायक हो सकते हैं। मैंने खुद से पूछा, 'क्या उनसे मुझे ऑफ़्टर-डेथ जे. पी. से हुआ डॉयलॉग शेयर करना चाहिए? पता नहीं, वे मेरी बातों को सीरियसली लेंगे भी या नहीं। मृत्यु के बाद किसी से संवाद का मेरा भी यह पहला ही मौक़ा तो था।

मो. 9013266057

काले-काले

नागार्जुन

काले-काले ऋतु-रंग
काली-काली घन-घटा
काले-काले गिरि शृंग
काली-काली छवि-छटा
काले-काले परिवेश
काली-काली करतूत

काली-काली करतूत
काले-काले परिवेश
काली-काली मंहगाई
काले-काले अध्यादेश

(रचनाकाल : 1981)

कहानी

बाबा के दरवाज़े
संजय कुंदन

रमाकांत का फ़ोन मेरे लिए डूबते को तिनके के सहारे की तरह था। उसने कहा था, 'तुम्हारे लिए एक काम है। करोगे?'

'कौन-सा काम?' मैंने पूछा।

'एक बाबा का पी आर करना है। घबराओ मत। तुम्हारे लिए बहुत आसान है। वो जो उपदेश देंगे, उसे लिखकर लेख बना देना है और अख़बारों में भेज देना है। साल के अंत में अख़बार के दफ़्तर जाकर पत्रकारों को कैलेंडर, डायरी, मिठाई वग़ैरह बांट आना है। कभी-कभार बाबा ने कोई बड़ा आयोजन किया तो पत्रकारों को बुलाना है। ख़बर छपवानी है। तनख़्वाह 35 हज़ार तक दे देंगे।'

पैंतीस हज़ार में क्या होना है। लेकिन यह कोई कम भी तो नहीं। दाल-रोटी तो चल ही जायेगी। घर में बेरोज़गार बैठने से तो अच्छा है कि कुछ काम किया जाये। बेपटरी हो चुकी ज़िदगी को फिर से पटरी पर लाया जाये।

दो महीने पहले मेरे जीवन में वज्रपात हुआ। मैं जिस अख़बार में संपादक था, वह अचानक बंद कर दिया गया। दरअसल, उसे एक बड़ा बिल्डर निकाल रहा था। कुछ साल से उसे घाटा हो रहा था। उसके कुछ प्रोजेक्ट में घपले की शिकायते थीं, जिनकी जांच शुरू हो गयी थी। वह एकाध बार जेल की यात्रा भी कर आया था। परेशान होकर उसने अपना कारोबार समेटना शुरू किया। सबसे पहले उसने अख़बार बंद करने का फ़ैसला किया। मैं एक बड़े अख़बार की जमी-जमायी नौकरी छोड़कर उसके यहां आया था। उस वक़्त मेरे सिर पर यह दर्शन सवार था कि स्वर्ग का नौकर होने से अच्छा है नरक का राजा होना। मैं यह सोचकर नयी नौकरी में आया कि यहां सब कुछ मेरे हाथों में होगा। अपने तरीके से काम करूंगा। अब तक एक अख़बार को लेकर मेरी जो कल्पनाएं रही हैं, उन्हें मूर्त रूप दे सकूंगा। लेकिन यह मेरे लिए बहुत बड़ा जोख़िम साबित हुआ। न मैं उधर का रहा न इधर का। अब पुराने अख़बार में लौटना मुश्किल था। इस उम्र में कहीं और नौकरी नहीं मिल सकती थी।

अचानक आयी बेरोज़गारी ने जीवन की तमाम योजनाओं को तहस-नहस कर दिया। बेटी ने बारहवीं की थी। उसका सपना एयर होस्टेस बनने का था। बचपन से ही हवाई जहाज उसे बहुत ज़्यादा आकर्षित करते थे। घर के ऊपर से जब किसी एयरोप्लेन के गुज़रने की आवाज़ आती तो वह दौड़कर बाहर उसे देखने आती। जब हमने पहली बार सपरिवार हवाई यात्रा की, तो उसे एयर होस्टेस की भूमिका बड़ी मज़ेदार लगी। उसने एयर होस्टेस बनने की ठानी थी। तय हुआ कि बारहवीं करते ही एयर होस्टेस की कोचिंग में एडमिशन ले लेगी। लेकिन क्या पता था कि उसकी बारहवीं का रिजल्ट आते ही मैं बेरोज़गार हो जाऊंगा। साल में दो-ढाई लाख का ख़र्च जुटाना अब मेरे लिए मुश्किल था। फिर भी मैंने उसे समझाया कि हम कहीं से इंतजाम कर लेंगे, पर वह नहीं मानी। उसने रेगुलर कोर्स में ग्रेजुएशन

में एडमिशन ले लिया। मैं समझ रहा था, वह ख़ुद ही अपने सपने का गला घोंट रही है। मेरे लिए इससे बड़ा आघात और क्या होता। यही नहीं पत्नी के घुटने का भी ऑपरेशन कराना था। डॉक्टर ने तारीख़ भी दे दी थी। लेकिन अचानक आयी बेरोज़गारी ने इसे भी स्थगित करने को मजबूर कर दिया। अब तो लग रहा था कि किसी तरह दोनों वक़्त खाने का इंतज़ाम हो जाये, यही बड़ी बात है। मैं धीरे-धीरे अवसाद में जाने लगा था कि तभी रमाकांत का फ़ोन आ गया।

बाबाओं में मेरी कोई आस्था न थी। आज तक किसी साधु-संत के चक्कर में नहीं पड़ा। पिछले कुछ समय से उन्हें लेकर जिस तरह की ख़बरें आ रही थीं, उनसे उन्हें लेकर मन में कई तरह की आशंकाएं भी पैदा हो गयी थीं। हालांकि मैं फिर भी मानता था कि हर साधु-संन्यासी फ्रॉड नहीं हो सकता। चंद लोगों के चलते सारे संतों की बदनामी हो गयी है। संभव है, रमाकांत जिन बाबा जी के बारे में बता रहा हो, वे बेहद भले हों। मैं इसी विश्वास के साथ उनसे मिलने गया। रमाकांत साथ में था।

उनका नाम विशेषानंद महाराज था। वे दिल्ली के एक पॉश इलाक़े की एक बड़ी-सी कोठी में रहते थे। रमाकांत ने बताया कि बाबा का आश्रम गुड़गांव में है, जहां वे शनिवार और रविवार को भक्तों को दर्शन देते हैं, बाक़ी दिन यहीं रहते हैं। उसने मुझे हिदायत दी, 'बाबा को पैर छूकर प्रणाम करना। यह नहीं कि हाथ जोड़कर रह जाओ। आख़िर तुम उनके कर्मचारी बनने जा रहे हो। जितनी भक्ति दिखाओगे, उतना फ़ायदा होगा।'

बाबा की कोठी के भीतर घुसने से पहले हमारी बाक़ायदा तलाशी हुई। सफ़ारी सूट पहने, काला चश्मा लगाये सुरक्षाकर्मियों को देखकर मैंने मन ही मन अंदाज़ा लगाया कि बाबा की कमाई करोड़ों में तो ज़रूर होगी।

भीतर पहुंचा तो देखा कि बाबा एक पलंग पर गावतकिये के सहारे अधलेटे से बैठे थे। दोनों तरफ़ सोफ़े लगे थे, जिन पर कुछ लोग बैठे थे, जो संभवतः वी आई पी भक्त होंगे। मैंने और रमाकांत ने बाबा के पैर छुए। बाबा ने हमें अपने पास ही पलंग पर बैठने को कहा। रमाकांत ने मेरी ओर इशारा करके कहा, 'यही हैं वो। अब आपका काम यही देखेंगे।'

बाबा ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मुझसे कहा, 'आप हमारे यहां नौकरी करने नहीं आये हैं। आप धर्म प्रचार के कार्य में अपना योगदान देने आये हैं। प्रभु ने आपको यह अवसर प्रदान किया है।... आप कल से आ जाइए। कल बड़ा शुभ दिन है।'

फिर बाबा ने पास बैठे एक सज्जन से कहा, 'पांडे जी, इनको कार्यालय दिखाइए। और हां, प्रसाद ज़रूर खिलाइएगा।'

लौटते समय बार-बार बाबा का चेहरा मेरी आंखों के सामने घूम रहा था। उस चेहरे में कोई ऐसी बात थी जो मेरे भीतर कुछ कुरेद रही थी। मैंने सुना था कि साधु-संन्यासी कई बार सम्मोहित कर लेते हैं। क्या उन्होंने भी मेरे ऊपर कोई जादू चला दिया था? हालांकि मैं इन चीज़ों में विश्वास करता नहीं था फिर भी इस नये अनुभव को समझने की कोशिश कर रहा था। इस पर सोचते हुए ध्यान आया कि दरअसल, बाबा के बोलने के तरीक़े में कुछ अलग सा था। बोलते समय उनके चेहरे के दाहिनी ओर बल पड़ता था। उनके होंठ और नाक में एक ख़ास तरह की हरकत होती थी। बोलने का यह अंदाज़ किसी और भी व्यक्ति का था, जिसकी मेरी ज़िंदगी में कोई न कोई जगह थी। कहीं बाबा वही तो नहीं..।

यह ख़याल आते ही मैंने अपने खून में एक उबाल सा महसूस किया। मैंने तुरंत इंटरनेट पर बाबा

का नाम सर्च किया। उनके बारे में जो तथ्य सामने आने लगे, उसने मेरी धुकधुकी बढ़ा दी।

वे मेरे ही शहर के थे और उन्होंने मेरे ही कॉलेज से पढ़ाई की थी। एम.ए. पी-एच.डी. करने के बाद वे राजनीति विज्ञान के प्रोफ़ेसर बने। कुछ दिनों तक पढ़ाने के बाद अचानक उनका झुकाव अध्यात्म की ओर हो गया और उन्होंने संन्यास ले लिया।

अब रहस्य से पूरी तरह पर्दा उठने का वक़्त आ गया था। मैंने अपनी बेटी को आवाज़ दी। मैंने उससे कहा कि वह इस बाबा की फ़ोटो डाउनलोड करे और उसे फ़ोटोशॉप में डाले, फिर इनकी दाढ़ी हटा दे। हो सके तो इनका तीस साल पहले वाला चेहरा निकालने की कोशिश करे।

मेरी बेटी को इन सबमें बड़ा मज़ा आता था। वह मेरी और अपनी मां की तस्वीरों के साथ खूब खेल करती थी। जब उसने बाबा की युवावस्था की तस्वीर निकाली तो मेरे होश उड़ गये।

...हां, यह पूरन सिंह ही है। मेरे कॉलेज का लफंगा-बदमाश पूरन सिंह। आज महात्मा बनकर लोगों को बेवकूफ़ बना रहा है।

पूरन सिंह का ध्यान आते ही मेरे भीतर नफ़रत का एक ज्वार-सा उठा। जीवन में मैंने अब तक एक ही आदमी से घृणा की थी और वह पूरन सिंह था। मैं उसकी बर्बादी चाहता था। मैं उसे असफल और दयनीय होते देखना चाहता था। हालांकि उसने मेरा कोई बहुत बड़ा नुक़सान नहीं किया था। फिर भी उसने जो किया था, उसके दंश से मैं आज तक मुक्त नहीं हो पाया था।

आज से तीस साल पहले के उस घाव का निशान मेरे मन पर अब भी बना हुआ था, जिसे सिर्फ़ मैं देखता और परेशान होता था। एक नये रूप में पूरन सिंह से मुलाक़ात ने उस घाव को हरा कर दिया।

उन दिनों मैं ग्रेजुएशन के अंतिम वर्ष में था और अपने विश्वविद्यालय के हॉस्टल में रहता था। सर्दियों के दिन थे। एक रात खाना खाकर मै रज़ाई में दुबका लैंप की रोशनी में पढ़ाई कर रहा था। तभी दरवाज़े पर दस्तक हुई। मैंने टेबल घड़ी पर नज़र डाली। दस बज चुके थे। मैं थोड़ा घबराया। इस वक़्त भला कौन आ सकता है?

इस समय तक खाना खाकर सभी लड़के अपने-अपने कमरे में जा चुके होते थे। जिनको पढ़ना होता था, वे पढ़ते थे, बाक़ी सो जाते थे। मुझे लगा किसी को अचानक कोई ज़रूरत पड़ गयी हो। मैंने सहमते हुए दरवाज़ा खोला। दरवाज़े पर दो अनजान लड़के खड़े थे। दरवाज़ा खुलते ही वे अंदर घुस आये और एक ने दरवाज़ा सटा दिया।

'मेरा नाम पूरन सिंह है।' यह कहते हुए दूसरे लड़के ने जेब से पिस्तौल निकाली और मेज़ पर रख दी। मेरी धड़कन तेज़ हो गयी। अब तक इस विश्वविद्यालय के बारे में जो कुछ सुना था, वह प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा था। लेकिन मेरी पहचान तो पैसे वाले लड़के के रूप में थी नहीं। किसी लड़की से मेरा कोई चक्कर नहीं था। किसी से कभी झगड़ा भी मैंने नहीं किया, फिर मुझसे क्या शिकायत है इन्हें...?

तभी पूरन ने अपने साथी से कहा, 'देखो, भइया पढ़ रहे हैं। हम कह रहे थे न कि ये भइया हर समय पढ़ते रहते हैं।'

मेरी कंपकंपाहट बढ़ रही थी। पूरन ने पिस्तौल उठाकर जेब में रख ली। मैंने सोचा कि हो सकता है यह पैसे मांगे। मैं मन ही मन हिसाब करने लगा कि मेरे पास कितने पैसे बचे होंगे। तभी पूरन ने कहा, 'भइया हम भी पॉलिटिकल साइंस में पढ़ते हैं, आपसे जूनियर बैच में। हमारा एग्ज़ाम है।'

'नोट्स चाहिए?' मैंने राहत की सांस लेते हुए कहा।

'नोट्स!' पूरन ने ज़ोर का ठहाका लगाया, 'अरे भइया, हमलोग के पास कहां टाइम है नोट्स और किताब पढ़ने का। हम लोग से यह सब होगा भी नहीं। और जब आप हैं ही, तब हम लोग काहे तकलीफ़

करें।'

'म...म...मतलब?' मैंने हकलाते हुए पूछा।

'मतलब यह कि आप हमारे बदले परीक्षा में बैठ जाइए।'

'यह कैसे हो सकता है?' मेरे मुंह से अपने आप निकला।

'क्यों नहीं हो सकता है?'

'यह तो ग़लत है।' मैंने धीरे से कहा।

'अब आप ग़लत-सही मत समझाइए। चुपचाप परीक्षा दीजिए।'

'कहीं कोई पकड़ लिया तो..?' मुझे लगा ठंड और तेज़ हो गयी है।

'वो सब आप हम पर छोड़ दीजिए। परीक्षा के एक दिन पहले हम आपको एडमिट कार्ड दे जायेंगे। बस एक पासपोर्ट साइज़ फ़ोटो तैयार रखिएगा।'

'लेकिन कोई पकड़ लिया तो..?'

'अरे कौन पकड़ेगा? यूनिवर्सिटी में अपना राज चलता है। वी सी अपने आदमी हैं। सारा स्टाफ़ सेट है। घबराने का कोई ज़रूरत नहीं है। लेकिन हां, एक बात और सुन लीजिए। परीक्षा के टाइम में कहीं चले मत जाइएगा। गये तो कैंपस में फिर घुस नहीं पाइएगा।' यह कहकर पूरन ने फिर पिस्तौल निकाली और उसे अपने गालों पर फिराने लगा। मैं असहाय दोनों को देख रहा था और वे शरारतपूर्ण तरीक़े से मुस्कराये जा रहे थे। पूरन ने कहा, 'और हां, परीक्षा के दिन का आपका नाश्ता हमारी तरफ़ से। अरे भैया, बढ़िया नंबर से पास करा दीजिए, फिर देखिए कितनी शानदार पार्टी देते हैं आपको। ठीक है भैया, चलते हैं। गुड नाइट।' यह कहकर पूरन अपने साथी के साथ चला गया। मैंने एक झटके में दरवाज़ा बंद किया और बिस्तर पर लुढ़क गया। मेरी सांसें काफ़ी तेज़ चल रही थीं। बदन पसीने से तरबतर था। मैं बार-बार सोच रहा था कि अभी-अभी जो कुछ हुआ वो सच था या नहीं। मैं मेज़ की ओर देख रहा था जिस पर थोड़ी देर पहले पिस्तौल रखी थी।

कुछ देर बाद उठकर मैंने खूब सा पानी पिया, तब जाकर मन थोड़ा शांत हुआ। लेकिन पानी पीने का असर यह हुआ कि लघुशंका का दबाव पैदा हो गया। टॉयलेट कमरे से दूर था। लेकिन बाहर निकलने का साहस नहीं हो रहा था। कहीं वे दोनों बाहर ही बैठे हों या कोई और उनके ही जैसा टहल रहा हो..। मैंने थोड़ी देर तक लघुशंका के दबाव को नकारने की कोशिश की लेकिन कब तक बर्दाश्त करता। किसी तरह चादर ओढ़कर बाहर निकला। भगवान - भगवान करते शौचालय तक पहुंचा और निवृत्त होकर तेज़ी से कमरे की ओर भागा।

मेरी नींद उड़ गयी थी। बार-बार पूरन सिंह की बातें ज़ेहन में कौंध जाती थीं। अब तो मैं एक तरह से उसका बंधक हो गया था। कहीं जा भी नहीं सकता था। उसने कहा है अगर मैं बाहर गया तो फिर लौट नहीं पाऊंगा। अगर इस बीच मेरे घर में कुछ हो गया तो...। जाना ही पड़ गया तो...? क्या सब कुछ अपने दोस्तों को बता दिया जाये या अपने कुछ टीचरों को, जो मेरे प्रति स्नेह रखते थे? लेकिन वे लोग उन बदमाशों का क्या कर पायेंगे। पिछले दिनों कुछ शिक्षकों पर भी हमले हुए थे। फिर मेरे जो दो-चार दोस्त थे, वे एक़दम सीधे-सादे थे। वे पूरन सिंह जैसे बदमाशों का कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे। उन बेचारों को क्यों धर्म संकट में डाला जाये।

इन गुंडों का कोई भरोसा नहीं। ये कुछ भी कर सकते हैं। एकमात्र रास्ता यही होगा कि उनकी बात मान ली जाये। अपने करियर को दांव पर लगाना ठीक नहीं।

मैंने यह बात किसी को नहीं बतायी। परीक्षा के एक दिन पहले पूरन उसी तरह रात में आया। वह अपना एडमिट कार्ड साथ लेकर आया था। उसने एडमिट कार्ड से अपनी फ़ोटो हटा कर मेरी फ़ोटो लगा

दी। हंसते हुए उसने कहा, अब आप हो गये पूरन सिंह। फिर उसने अपना हस्ताक्षर करके दिखाया और मुझसे वैसा ही हस्ताक्षर करने को कहा। हालांकि उसने आश्वस्त किया कि हस्ताक्षर का मिलना कोई ज़रूरी नहीं है। बस मैं रोल नंबर सही लिख दूं।

दूसरे दिन पूरन सुबह-सुबह ही आ गया था। मैं तैयार हो चुका था। पूरन मुझे पास की दुकान पर ले गया। वहां कचौड़ी-सब्ज़ी और जलेबी का नाश्ता कराया। मेरी हालत बलि के बकरे जैसी थी। मैं चुपचाप पूरन के पीछे-पीछे जा रहा था। वह मुझे परीक्षा भवन तक लाकर खिसक गया। मैं जब अंदर दाख़िल हुआ तो लगा मैं चोरी करने जा रहा हूं। मैं इस बात से डरा हुआ था कि कोई पहचान न ले। कहीं मेरे किसी परिचित शिक्षक की ड्यूटी न लगी हो। अगर पकड़ा गया तो मुझे भी सज़ा होगी क्योंकि किसी के बदले परीक्षा देना भी अपराध है। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। कोई परिचित शिक्षक नहीं मिला। दूसरे किसी स्टाफ़ ने मेरी तरफ़ देखा तक नहीं। मैं आराम से परीक्षा देता रहा। अगले दो पेपरों में भी यही हाल रहा। परीक्षा ख़त्म होने के बाद पूरन ग़ायब हो गया। कहां गया पता नहीं। मेरे लिए यह राहत की बात थी। अच्छा ही हुआ उसके दर्शन नहीं हुए। लेकिन इस प्रकरण को मैं भुला नहीं पाया। मन में एक कचोट-सी बनी रही। जब भी यह घटना याद आती मैं बेचैन हो जाता। एक तरह की शर्मिंदगी और अपमान के अहसास से घिर जाता। कई बार लगता कि मैं कितना कायर हूं कि एक टुटपुंजिए अपराधी के इशारे पर चलने को मजबूर हो गया। आज फिर पूरन सिंह को सामने पाकर मैं उसी तरह छटपटाने लगा। उस वक़्त मैं सोचता था कि पूरन है क्या, नाली का एक कीड़ा। वह जीवन में क्या करेगा। अधिक से अधिक एक उठाईगीर या चोर बनेगा, हो सकता है, लंबा समय जेल में गुज़ारे, पुलिस या किसी अपराधी के हाथों मारा जाये। या अगर समय के साथ सुधर गया तो संभव है, पान की दुकान खोल ले। मैं कई बार सोचता था कि अपने शहर जाऊंगा तो पूरन सिंह के ऑटो में बैठूंगा।

लेकिन दूसरों से परीक्षा दिलाने वाला पूरन प्रोफ़ेसर बन गया। उसके बाद बाबा बन गया जिसके आगे समाज के सफल-संभ्रांत लोग सिर झुकाते हैं। आज मैं कहां हूं, और वह कहां! ऐसा महसूस हो रहा था जैसे मैं पूरन से हार गया। इस समाज, इस सिस्टम ने मेरे साथ कैसा मज़ाक किया था!

अब मैं उसका मातहत था, उसका कर्मचारी। वह मेरा नियंता बन गया। वह मुझे आदेश देगा और मैं उसे मानूंगा, जैसे तीस साल पहले माना था। उसका चेहरा देखते हुए हर पल मैं अपमानित महसूस करूंगा। यह मुझसे नहीं हो पायेगा। यह नौकरी मैं नहीं कर पाऊंगा। साफ़-साफ़ कह दूंगा रमाकांत से कि यह काम मुझसे नहीं हो पायेगा। वह मेरे लिए कोई और नौकरी ढूंढ़ ले। दुनिया में काम की कोई कमी थोड़े ही है।

मैं रमाकांत को फ़ोन करने ही जा रहा था कि तभी पत्नी आयी। उसने मेरी ओर प्रसाद बढ़ाते हुए कहा, भगवान ने हमारी सुन ली। मैं तो डरी हुई थी कि कहीं आपको कोई काम नहीं मिला तो क्या होगा। ...हमारे मामा तो पगला गये थे। ऐसा नहीं था कि उनके घर में चूल्हा नहीं जल रहा था। लेकिन काम नहीं रहने पर आदमी का दिमाग़ शैतान का घर हो जाता है। अभी आप लोगों की उम्र घर बैठने की थोड़े है।'

पत्नी की बात सुनकर मैं घबरा गया। सचमुच यह घर बैठने की उम्र नहीं है। मैं हाथ में आयी नौकरी को कैसे लात मार सकता हूं। मैंने सोचा, क्यों न मैं पूरन सिंह की असलियत के बारे में पत्नी को बता दूं; लेकिन नौकरी न करने की बात से पत्नी परेशान हो सकती थी। उसे परेशान करने का कोई हक़ मुझे नहीं था। उसे चिंता में डालने से उसकी बीमारी और बढ़ सकती थी। मुझे मन मार कर रहना ही होगा। लेकिन मन मारने की भी कोई सीमा होती है। यह बात कोई और समझ ही नहीं सकता।

मैं पूरन सिंह के साथ कैसे काम कर पाऊंगा? बार-बार मुझे अपना वह अपमान याद आता रहेगा।

बार-बार मुझे अपनी हार का अहसास होता रहेगा। हो सकता है वह छात्र जीवन की उस घटना को लेकर मेरी खिल्ली उड़ाये।...लेकिन हाथ में आयी इस नौकरी को छोड़ना आसान नहीं था मेरे लिए। मैं अपनी पत्नी और बेटी के साथ अन्याय नहीं कर सकता।

आख़िरकार मैंने इस उलझन से बाहर आने का एक रास्ता निकाला। मैंने खुद से एक दांव खेला। अगर पूरन भी मुझे पहचान लेता है तो मैं काम नहीं करूंगा। अगर वह मुझे नहीं पहचान पाता तो मैं काम करूंगा। मैं अतीत को भूल जाऊंगा। मैं उसे विशेषानंद महाराज के रूप में स्वीकार करूंगा।

मैं दूसरे दिन जब वहां पहुंचा तो पांडे जी ने मुझे मेरा कमरा दिखाया। वहां कुर्सी-टेबल थी, कंप्यूटर था। एक टी.वी. सेट भी था। मैं बैठकर अख़बार पलटने लगा। मेरे लिए चाय आ गयी। साथ में एक प्लेट में भुने हुए काजू थे। इतने अच्छे स्वागत के बाद भी मेरा मन उद्विग्न था। समझ में नहीं आ रहा था कि मेरा जीवन कौन सी दिशा में बढ़ने वाला है।

तभी थोड़ी देर बाद पांडे जी ने कहा कि 'बाबा बुला रहे हैं।' मेरी धड़कन तेज़ हो गयी। अब पूरन से सीधा सामना होने वाला था। उसने कहीं पहचान लिया तो...।

पांडे जी मुझे बग़ल के एक कमरे में ले गये। यह बाबा का निजी कमरा था। पांडे जी ने मुझे बैठने को कहा और चले गये। मैं कमरे में उधर-उधर देख ही रहा था कि पूरन सिंह एक भीतरी दरवाज़े से प्रकट हुआ। मैंने झुककर पैर छुए। उसने मेरी पीठ ठोंकी और कहा, 'मैं आपको पहचान गया।'

'क्या!' मुझे लगा जैसे मैं चक्कर खाकर गिर जाऊंगा। मेरी आंखें बंद होने लगीं।

पूरन सिंह कह रहा था, 'आप टी.वी. पर आये थे न पिछले महीने चुनाव के समय। बहुत अच्छा बोलते हैं आप।'

मुझे लगा जैसे मैं डूबते-डूबते ऊपर आ गया। मैंने राहत की सांस ली।

मो. 9910257915

आठ लघुकथाएं

संदीप मील

1. ख़तरा

'साब, अब हमें किससे ख़तरा है?'
'तुम सोचो।'
'मुसलमानों से?'
'कोई ख़तरा नहीं। वे पहले से ही डरे हुए हैं।'
'ईसाइयों से?'
'वे तो मुठ्ठीभर हैं। जब चाहें मसल दें।'
'बौद्धों से?'
'नहीं रे। वहां भी हमारी घुसपैठ हो चुकी है।'
'फिर दलितों से? वे हिंदू धर्म से अलग हो गये तो?'
'चुप पापी!'

2. कब्ज़ा

'आदेश करो साब, किस पर कब्ज़ा करना है?'
'विश्वविद्यालय?'
'अधिकांश हो गये। बचे-खुचे भी हो जायेंगे।'
'स्कूल?'
'शिक्षा विभागों को हथिया लिया है।'
'साहित्य?'
'अकादमियों पर नकेल कस दी है।'
'इतिहास?'
'गढ़ रहे हैं। सारा बदल देंगे।'
'अर्थव्यवस्था?'
'अपने भाई-बंधुओं के हित में कर ली है।'
'शाबाश...।'
'आदेश करो साब, किस पर कब्ज़ा करना है?'
'संविधान नामक एक किताब है...'
'वह है कहां?'

३. तुम गोली मारो

'वे तर्क करते हैं।'
'तुम झूठ बोलो।'
'वे प्रमाण मांगते हैं।'
'तुम देशद्रोही कहो।'
'वे विज्ञान की बात करते हैं।'
'तुम रामराज्य का हवाला दे दो।'
'वे रोज़गार मांगते हैं।'
'तुम उन्हें गाय की पूंछ पकड़ा दो।'
'वे हमारे षड्यंत्रों की पोल खोलते हैं।'
'तुम गोली मारो।'

4. अकाल

'साब, बरसात बिल्कुल नहीं हो रही है। किसान परेशान हैं।'
'गांव-गांव में हवन और यज्ञ कराओ।'
'लोगों के पास खाने को अनाज तक नहीं है।'
'सबको उपवास का महत्व समझाओ।'
'फ़सल सूख रही है।'
'नहरें लाने की योजनाओं का प्रचार करो।'
'लोग सरकार को सवालों के घेरे में ला रहे हैं।'
'तो फिर दंगा करा दो।'

5. मांगें

'साब, लड़कियां पढ़ना चाहती हैं।'
'बिल्कुल पढ़ाओ। उन्हें संगीत और पकवान कला तो ख़ास तौर से पढ़ाना।'
'साब, औरतें नौकरी मांग रही हैं?'
'दे दो। शिक्षिका की नौकरी उनके लिए मुफ़ीद रहेगी।'
'औरतें राजनीति में आना चाह रही हैं।'
'आने दो। स्वागत करो। निर्णय निर्धारण हमारे पास है।'
'साब, वे विवाह संस्था का बहिष्कार कर रही हैं।'
'यह नहीं हो सकता। जात-समाज सब ढह जायेगा।'

6. चिंता

'हुज़ूर, आप दुबले हुए जा रहे हैं। क्या चिंता सता रही है?'
'तुम्हें इस समय मेरा कोई प्रतियोगी नज़र आ रहा है?'
'बिल्कुल नहीं साब। बूढ़े को आपने राख में दबा दिया, जवान को कांख में दबा लिया। कोई नहीं है।'
'कल भी क्या कोई मेरा प्रतियोगी पैदा हो सकता है?'
'सवाल ही नहीं उठता। सारे रास्ते बंद हैं। अब सिर्फ़ फ़ॉलोअर्स पैदा होंगे।'
'तो अब मुझे बिल्कुल चिंता नहीं।'
'कोई चिंता नहीं। तुम तो केवल मुझे फ़ॉलो करो।'

7. ईमानदारी

'लगता है लोग बहुत बेईमान हो गये हैं?'
'हद दर्जे के। ईमान कहीं बचा ही नहीं।'
'मेरी ज़िंदगी का एक सपना है।'
'आदेश कीजिए। आपकी हर आरज़ू पूरी करने के लिए मेरे जैसे नाचीज़ तैयार हैं।'
'मुझे इस देश को पूरी तरह से ईमानदार बनाना है।'
'फिर तो सारे बेईमानों को जेल में डालना होगा।'
'बिल्कुल। तुरंत डाल दो।'
'सर, कैसे पहचान करेंगे कि कौन ईमानदार है और कौन बेईमान?'
'बहुत आसान है। अपने लोग सब ईमानदार और बाक़ी सब...।'

8. आसान काम

'साब, मेरे विभाग में बड़ी मुश्किलें हैं।'
'तो आपका विभाग बदल दिया जाये?'
'सर, नये विभाग में भी तो समस्याएं होंगी ना।'
'यह बात तो सही है। तो आप नौकरी छोड़ दीजिए।'
'सर, परिवार भी तो पालना है। आप मुझे ऑफ़िस में कोई आसान काम बता दीजिए।'
'फिर तुम कल से मेरी तारीफ़ करने का काम करो।'

मो. 9116038790

कहानी

एन. एच. 43 की मौत

विश्वासी एक्का

रामसुभग पैकरा और उसकी मित्रता अटूट है। दोनों की उम्र 70 वर्ष है। उनका बचपन साथ-साथ दौड़ते भागते उछलते कूदते बीता। रामसुभग के नंगे पैंरो में वे गिट्टी और मुरम चुभते नहीं थे, अगर चुभते तो वह सड़क पर तेज़ी से कैसे दौड़ता? स्कूल की घंटी बजने के पहले ही पहुंचना उसके पूर्वजों की अधूरी शिक्षा को पूरी करने की चाह को दर्शाता। क्यों न हो, रामसुभग को अपने नाना का पितर मिला है, उसके नाना सुधु साय अपढ़ होकर भी अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ छिड़े जंग में शामिल हुए थे और अपना बलिदान दिया था, क्या अपढ़ होना सुधु साय को अपने जीवनकाल में नहीं खला होगा? शायद इसी पढ़ने लिखने की चाह लिये सुधु साय ने नाती के रूप में फिर जन्म लिया। पितर ढूंढ़ने के समय जब पंचों ने सुधु साय के नाम पर कांसे की थाली में चावल का एक दाना डाला तो रामसुभग के नाम पर पहले से थाली में भरे पानी पर तैरते चावल के दाने ने चुंबक की तरह उस दाने को अपनी ओर खींच लिया था।

कच्ची सड़क पर अक्सर सरगुजा महाराज की खुली जीप हिचकोले लेते दौड़ती। सड़क के समीप कच्ची झोपड़ियों से आदिवासी बच्चे झांकते, उनकी बड़ी बड़ी आंखें ऐसे विस्फारित हो जातीं जैसे तलैया के पानी में शरद ऋतु के बादलों से गिरने वाली बड़ी बड़ी बूंदे गिरकर फैल जाती हैं। एक दिन बालक रामसुभग बाल सखाओं के साथ बरगद के नीचे खेल रहे थे कि अचानक फट-फट-फट की आवाज़ सुनायी दी, वे दौड़कर बरगद के तने के पीछे छिप गये। फटफटिया के दूर जाते ही वे उसी गति से सड़क की ओर दौड़ पड़े और अपनी नाक ज़मीन से सटा कर पेट्रोल की गंध सूंघने लगे, जैसे वे कोई खोज कर रहे हों, ऐसा खेल करने के बाद वे ज़ोर ज़ोर से हंसने लगे। उन्होंने यह पहली बार नहीं किया था, पिछली बार इस खेल के आनंद के बदले पिता से डांट पड़ी थी और हथेलियों पर छड़ी के प्रहार के रूप में क़ीमत भी चुकानी पड़ी थी। रामसुभग बहुत शरारती था, उसे अपनी शैतानियों के बदले आने वाले समय में जाने कितनी बार मार खाना बदा था। आजो उससे कहते, 'तै ढेरेच बितबितहा हस बाबु आगी मूतबे का?' एक दिन अपनी मां की अनुपस्थिति में उसने यह प्रयोग भी कर लिया। ज़िद कर, आजी से पैरा जलवाया और उस जलते पैरा में पेशाब करके ही उसका मन माना। पर रामसुभग जैसे जैसे बड़ा होता गया उसकी शरारतें कम होती गयीं। किशोरावस्था में ही वह जवान हो चला था, उसके कंधे भारी बोझ उठाते उठाते घर के मयार की तरह मज़बूत हो गये थे। 18वें बसंत को छूते ही रामसुभग गबरू जवान हो गया था। सांवला रंग, गोल चेहरा, मोटे होठों के ऊपर पतली मूंछ, सिर पर गमछा। जब वह कंधो पर बहंगी लेकर चलता तो उसकी लचकती कमर पर गांव की फुलमनिया लट्टू हो जाती। कभी रामसुभग सड़क के उस पार चला जाता और कभी फुलमिनया सड़क के इस पार चली आती। सड़क उन दोनो के प्रेम की मूक साक्षी थी। रामसुभग चाह कर भी 5वीं कक्षा से आगे नहीं पढ़ सका। ग़रीबी ने उसके पैरों में बेड़ियां डाल दीं, लेकिन उसके मज़बूत कंधे और मेहनत रंग लायी। सड़क के किनारे उसके खेतों में छिनमौरी, बयालों,

सफ़री और विष्णुभोग धान की बालियां हवाओं संग झूमते बलखाते झुक झुक जातीं जैसे फुलमनिया कभी कभी हंसते-हंसते दोहरी हो जाती।

कहते हैं बारह साल में तो घूरे के दिन भी फिरते हैं फिर उस कच्ची सड़क की उम्र तो इससे अधिक हो चली थी। एक दिन रामसुभग खेतों से घर की ओर आते हुए मेड़ पर ठिठक गया। कुछ लोग कच्ची सड़क की मरम्मत कर रहे थे। उस सड़क से रामसुभग का बचपन से लगाव था। मनुष्य कभी-कभी ख़ुद को सजीव के साथ निर्जीव चीज़ों से भी गहराई से जोड़ लेता है, फिर सड़क तो निर्जीव होकर भी सजीवता लिये हुए थी। वह फटफटिया जीप, ट्रक अब राज्य परिवहन के बसों के दौड़ने का आधार बन चुकी थी। रामसुभग सड़क पर काम करते हुए लोगों के क़रीब पहुंच गया और उनसे अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए कहा, 'राम राम भाई, सड़क में कोनो सुधार होवत हे का?' एक कामगार ने फावड़े से मिट्टी समेटते हुए कहा, 'हां पक्का सड़क बनही', यह कहते हुए उसके चेहरे पर ख़ुशियां साफ़ साफ़ झलक रही थीं, क्यों न हों, उसने भी इसके पहले पक्की सड़क कहां देखी थी।

निर्माण कार्य शुरू हुआ तो गांव के लोग दर्शक की भूमिका में थे, निठल्ले युवा तो घंटों खड़े होकर देखते जैसे उन्हीं की देख रेख में काम चल रहा हो। रामसुभग भी आते जाते दिन में एक बार सड़क की ओर चला ही जाता। उबलते हुए लसलसे काले तारकोल पर गिट्टी डाल कर मिलाया जाता, जब मसाला तैयार हो जाता तो पहले से तैयार किये गये गिटटी मुरुम वाली सड़क पर उसे फैला दिया जाता, ठंडा होने पर उस पर रोलर चलाया जाता। बच्चों का आकर्षण सड़क से ज़्यादा वह रोलर मशीन थी जिसे वे धुरमुस गाड़ी कहते। धुरमुस के बड़े बड़े चक्कों को देखकर बच्चों की आंखें विस्मय और कौतूहल से फटी की फटी रह जातीं। देखते ही देखते पक्की सड़क रामसुभग के आजो की उम्र सी लंबी होती गयी।

बड़ी धूमधाम से फुलमनिया और रामसुभग का ब्याह संपन्न हुआ। बारात वापसी के समय रामसुभग बारातियों के संग पैदल चल रहा था। चमरहा जूते से हर क़दम पर चर्र... मर्र... की ध्वनि निकल रही थी। वह नयी पक्की सड़क जैसे रामसुभग के ब्याह के लिए ही बनायी गयी थी। फुलमनिया तो डोली में बैठी थी, चार लोग डोली उठाये पगडंडी से चलते चलते पक्की सड़क पर आ गये थे। उनके पैरों में जूते नहीं थे लेकिन चिकनी, फिसलती सड़क उन्हें सहूलियत ही दे रही थी।

अब सड़क पर गाड़ियों की आवाजाही बढ़ गयी थी, इक्का दुक्का सेठ साहूकारों ने भी ट्रक ख़रीद लिया था। रामसुभग के जीवन की गाड़ी भी बिना किसी अवरोध के सीधे सपाट राह पर चल पड़ी। एक साल बाद रामसुभग के घर में किलकारियां गूंज उठीं। देखते ही देखते आठ साल बीत गये, उन आठ सालों में फुलमनिया का आंगन एक बेटा और तीन बेटियों से गुलज़ार हो गया, बेटा फलेश्वर और बेटी सीता, गीता और सावित्री। रामसुभग बेटे के साथ बेटियों को भी पढ़ाने का पक्षधर था। बेटियां ख़ूब मन लगाकर पढ़तीं, पर फलेश्वर अपने बेटे होने का भाव दिखाता। आख़िर मां का लाड़ला था वह। बेटियां भी नौवीं-दसवीं तक पढ़ सकीं। गांव की परंपरानुसार उनका कम उम्र में ब्याह कर दिया गया। फलेश्वर सेठ मुरारी लाल के ट्रक का ख़लासी बन गया।

रामसुभग चालीस की अवस्था में ही बूढ़ा दिखने लगा था। गाल पिचक गये थे, गले की हड्डियां उभरने लगी थीं। डामर वाली पतली सड़क भी थोड़ी खुरदुरी हो चली थी। नर्म मिट्टी का क्षेत्र होने के कारण सड़क के किनारों की मिट्टी कटने लगी थी। ऐसा लगता जैसे सड़क ऊपर टंगी हो तो बग़ल की ज़मीन नीचें धंस गयी हो जिसमें सायकल और दुपहिया वाहन चालकों को साइड लेने और देने में बड़ी दिक़्क़त होती थी। बच्चे जब छोटे थे, रामसुभग उस सड़क से जुड़ी स्मृतियां उन्हें सुनाता। शंख से चिरमिरी तक चलने वाली राज्य परिवहन की बस तो आज भी चल रही थी जिसमें रामसुभग अपने परिवार के साथ यदा कदा अंबिकापुर तक की यात्रा करता। पिछले हफ़्ते ही तो वह सपरिवार अंबिकापुर आया

था। दशहरा के दिन सरगुजा महाराज के महल के दरवाज़े आम जनता के लिए खोल दिये जाते। महाराजा साहब राज सिंहासन पर बैठते, लोग उनके पांव छूकर आशीर्वाद लेते। रामसुभग सपरिवार महल में घूम रहा था। छोटी बेटी सावित्री पिताजी के कंधे पर सवार थी। सीता-गीता मां की उंगली थामे चल रही थीं, फलेश्वर पिता का हाथ पकड़े हुए था। महल की दीवारों पर जगह जगह बारहसिंगा की खोपड़ी ठुकी हुई थी, कहीं नील गाय के सींग दीवारों की शोभा बढ़ा रहे थे। एक बड़े कमरे में बाघ की खाल ओढ़े आकृति को देखकर सावित्री एक़दम से चीख़ पड़ी। रामसुभग ने उसे चुप कराते हुए कंधे से नीचे उतारकर गोद में उठा लिया। इतनी रेलमपेल भीड़ थी कि फलेश्वर भीड़ में गुम हो गया। कुछ दूरी पर जब भीड़ कम हुई तो फलेश्वर ने देखा कि वह जिस व्यक्ति की धोती का छोर पकड़कर चल रहा था वे उसके पिता नहीं थे। बालक भय और लोगों की धक्कामुक्की से रोने लगा। वह तो अच्छा हुआ कि गांव के ही फूलसाय चाचा की नज़र फलेश्वर पर पड़ गयी और उसे उसने भीड़ से बाहर निकाला। रामसुभग और फुलमनिया घबराये हुए, फलेश्वर को इधर उधर ढूंढ़ रहे थे कि फूलसाय की नज़र उन पर पड़ गयी। उसने ऊंची आवाज़ में पुकारकर कहा, 'ददा! बाबु इहां हवे मोर ठन'। आवाज़ तो उनके कानों तक नहीं पहुंची लेकिन रामसुभग ने राजमहल के प्रांगण में बने कुएं के पास फूलसाय का हाथ थामे फलेश्वर को देख लिया।

हर वर्ष दशहरा के समय ही नगर में सर्कस का खेल लगता, इस साल गांधी मैदान में जमुना सर्कस लगा था। फलेश्वर अभी भी डरा हुआ था। पिता ने पूछा, 'सर्कस देखे जाबे बाबु?' डरा हुआ फलेश्वर बोला, 'नयी देखो चल घरे जाबो'। जबकि पिछले एक हफ़्ते से उसी ने सर्कस देखने की रट लगा रखी थी। रामसुभग ने बेटे को पुचकारते हुए कहा, 'झिन डरा बाबु, सब्बो झन जाबो।' प्यार से हाथ थामते हुए बेटे को हिम्मत दिलायी। वे होटल मनबहार से लड्डू और भजिया खाने के बाद जमुना सर्कस देखने चले गये। घर से लाये हुए गुड़-चूड़ा वे पहले ही खा चुके थे। रस्सी के सहारे दूर तक छलांग लगाते लड़के, लड़कियां, फिर बिलायती सफ़ेद कुत्तों का करतब, फिर भालू का ढोल बजाना, हाथियों की परेड, बीच बीच में अजीबोग़रीब चेहरे और रंगीन झबला पहने जोकरों की हंसी ठिठोली। दो बौने आदमियों की लड़ाई देखते देखते सीता-गीता और फलेश्वर खुश हो रहे थे, उनके लिए यह किसी दूसरी दुनिया की तरह था। सावित्री, मां की गोद में ही सो गयी थी। आख़िरी में रिंग मास्टर के साथ बाघ और बब्बर शेर मंच पर दाखिल हुए, शेर पिंजरे में था; लेकिन बाघ बाहर था। इस दृश्य को देखते हुए फलेश्वर को लगा कि यह तो राजमहल का बाघ है जो यहां आ पहुंचा है। वह कंधों को सिकोड़ते हुए पिता से चिपक गया। शेर और बाघ को साक्षात् सामने देख कर रामसुभग भी थोड़ा भयभीत हो गया; लेकिन चेहरे पर उभर आये भय को छुपाते हुए उसने फलेश्वर का हाथ ज़ोर से पकड़ लिया जैसे उसे समझा रहा हो, 'डरो मत, मैं हूं ना।' सर्कस का शो रात आठ बजे ख़त्म हुआ। बच्चों की आंखों में नींद उमड़ रही थी, गांव में सोने का यही समय तो होता है, गांव वापस जाने के लिए कोई गाड़ी नहीं थी। अतः रामसुभग ने यात्री प्रतीक्षालय में सपरिवार रात बितायी।

जो सड़क रामसुभग से मित्रवत जुड़ी हुई थी, आधी ज़िंदगी जिस सड़क पर चलते फिरते गुज़र चुकी थी, वही सड़क अब फलेश्वर की दिनचर्या से जुड़ गयी। खलासी का काम करते हुए उसे सड़क की पूरी स्थिति मालूम हो गयी थी, कहां पर पेड़ हैं ,कहां पर मोड़ है, कहां पुल है, कहां सड़क पर गड्ढा है, कहां सड़क संकरी है तो कहां चौड़ी है। इतने वर्षों में संकरी सड़क और भी तन्वंगी हो चली थी, उस पर भारी वाहनों की आवाजाही से दिन-ब-दिन जर्जर होने लगी। इस्पात, कोयला, बॉक्साइड तो कभी बड़ी बड़ी मशीनों से लदे ट्रक, सड़क को रौंदते हुए निकलते, तो जर्जर सड़क जैसे पहियों के नीचे दब जाती।

इतने वर्षों बाद सब क्षेत्रवासी बड़े प्रसन्न हैं। सरपंच ने बताया कि अब पुरानी सड़क को उखाड़कर सरकार इसकी जगह पक्की चौड़ी सड़क बनवाने वाली है। एन. एच. पहले 78 थी फिर 43 हुई, नाम

के बाद अब उसका स्वरूप भी बदलने वाला है। पहले तो लोगों को विश्वास ही नहीं हुआ, फिर एक दिन लोगों ने सड़क पर बुलडोज़र को देखा जो सड़क को खखोर रहा था, यह काम कई महीनों तक चला। अब उस संकरी सड़क का कहीं नामोनिशान नहीं था, बड़ी-बड़ी मशीनें आ गयीं, सड़क निर्माण अपनी गति से चलने लगा, कभी तीव्र तो कभी मद्धिम। गांव के लोग उन मशीनों को देखने आते जैसे वर्षों पहले सड़क निर्माण कार्य को देखने आते थे; लेकिन पता नही एक दिन ऐसा क्या हुआ कि भीमकाय मशीन तो सड़क पर खड़ी रह गयी लेकिन काम करने वाले नदारत हो गये। हफ़्ते-दो हफ़्ते, फिर कई महीने बीत गये। लोग आपस में बातें करते कि साउथ का ठेकेदार था, पता नहीं क्या हुआ कि वह काम छोड़कर वापस चला गया। कुछ लोग कहते, अरे यह राजनीति है, तो कोई कुछ कहता, जितने मुंह उतनी बातें। सड़क किनारे खड़ी जे. सी. बी. मशीन गांववालों को भारी भरकम शरीर लिये, सूंड़ लटकाये, विघ्नहर्ता, विनायक की मूर्ति सी जान पड़ती, वे आते-जाते मशीन को उम्मीद भरी नज़रों से देखते। मशीन अब भी भरोसा दिलाती कि देर सबेर ही सही काम ज़रूर होगा।

इसी भरोसे के साथ बरसात का समय भी आ पहुंचा। जैसे-जैसे पानी ज़मीन में समाता गया, सड़क पर कीचड़ बढ़ने लगा, इतना कि आये दिन कोई भारी वाहन उसमें फंस ही जाता फिर उसे बड़ी मशक्कत से निकाला जाता। छोटी गाड़ियां कीचड़ से नहा जाती, दुपहिया वाहन फिसल कर गिर जाते। पिछले हफ़्ते ही एक दुखद घटना घटी। एक मोटर सायकल सवार अनियंत्रित होकर ट्रक के नीचे आ गया, ड्राइवर ने बचाने की कोशिश की लेकिन पिछला पहिया उस आदमी के ऊपर से गुज़र गया। आये दिन अख़बारों में सड़क दुर्घटना की ख़बरें छपतीं, ख़बर पढ़कर कुछ लोग अफ़सोस करते तो कोई सरकार को कोसते। अब बच्चों का स्कूल जाना भी दूभर हो गया, प्रायवेट बस वालों ने भी हाथ खड़े कर लिये। अब बच्चों को उनके अभिभावक स्कूल छोड़ने और लेने जाते। कुछ बच्चे पैदल ही स्कूल जाते, वे स्कूल तो पहुंचते लेकिन कीचड़ में सन कर। अब जिसे बहुत ज़रूरी काम होता वही यात्रा करते। लोग कहते, 'यह प्रदेश की सबसे ख़स्ताहाल सड़क है।'

एक दिन रामसुभग की तबीयत अचानक ख़राब हो गयी, रात में नीम बेहोशी में वह जैसे ख़ुद से बात कर रहा था, तबीयत ख़राब होने पर वह ऐसा ही करता, वह बड़बड़ा रहा था, 'मैं तो मर जाहूं, बकी तहूं नयी बाचबे। ओ बुलडोजर गाड़ी अइसने सड़क धरी ठड़होय रही, अऊ तैं मोरेच कस छटपटाय-छटपटाय मइर जाबे।' फलेश्वर और फुलमनिया भी रातभर जागते रहे। सुबह फलेश्वर गांव के बैगा को बुला लाया, उसने झाड़-फूंक की, जड़ी-बूटी पीसकर पिलायी, फिर भी तबीयत नहीं सुधरी, तो आनन-फानन में सरजू साहू की मार्शल गाड़ी से उसे इलाज के लिए अंबिकापुर ले जाया जाने लगा। सड़क, सड़क तो थी नहीं पर लोग उसे सड़क ही कहते। सड़क पर वाहनों की लंबी क़तार लगी थी। एक घंटे बाद किसी तरह साइड लेते हुए ड्राइवर ने गाड़ी आगे बढ़ायी। गाड़ी हिचकोले खाती हुई धीमी गति से आगे बढ़ने लगी; लेकिन शायद रामसुभग को जल्दी थी, अंबिकापुर पहुंचने के पहले ही उसने अपनी आंखें मूंद लीं। फलेश्वर चुप था, आंखों के कोरों से दो बूंद आंसू टप-टप टपक पड़े। फलेश्वर की बग़ल में बैठे फूलसाय चाचा ने कहा, 'बाबु अब अस्पताल जाये के कोनो फायदा नय होही।' फलेश्वर की मौन स्वीकृति पा कर ड्राइवर ने वापसी के लिए गाड़ी मोड़ ली। गाड़ी के साथ रामसुभग का शांत निश्चल शरीर भी बार-बार हिल-हिल उठता। रामसुभग और एन. एच. 43 की मित्रता कितनी पक्की निकली, साथ जन्मे, साथ पले-बढ़े और आख़िर दोनों ने एक साथ अंतिम सांस ली। राहगीरों ने आज, बतौली और रघुनाथपुर के बीच कीचड़ से लथपथ, चोट से भरे, अशक्त, बेसहारा एन. एच. 43 को औंधे मुंह पड़ा पाया।

मो. 9340382843

नाटक

सांस्कृतिक प्रतिरोध में नाटक की भूमिका

चंद्रेश

पूरी दुनिया में सांस्कृतिक माध्यमों, विशेषकर नाटक का इस्तेमाल सत्ता के दमन, शोषण व जनविरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ लोगों से संवाद स्थापित करने के लिए एक कारगर माध्यम के रूप में किया जाता रहा है। ज़ाहिर है, संवाद व जनमानस तैयार करने की इस प्रक्रिया में दर्शकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। सत्ता के दुश्चक्र को, कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में जब दर्शकों के बीच नाटक के रूप में प्रदर्शित किया जाता है तो दर्शक भी कहीं न कहीं उसका हिस्सा बनने के लिए उत्प्रेरित होते हैं। लोकतंत्र में सवाल पूछना नागरिकों का मौलिक अधिकार है। नाटक की भी मूल प्रवृत्ति यही है। हर जनपक्षीय नाटक कोई न कोई सवाल खड़ा करता है, दर्शकों को सोचने के लिए बाध्य करता है। अपनी इसी विशिष्ट भूमिका के कारण सदियों से दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में नाटक से जुड़े रंगकर्मियों को सत्ता की निरंकुशता का शिकार होना पड़ा है।

बीसवीं सदी के महान जर्मन कवि व नाटककार बर्टोल्ट ब्रेश्ट का उदाहरण हमारे सामने है जिनके नाट्य प्रदर्शनों पर न केवल तत्कालीन नाज़ी हुकूमत ने रोक लगायी, बल्कि उन्हें देश छोड़ने के लिए विवश किया। हालांकि नाज़ीवाद के उसी अंधेरे दौर में ब्रेश्ट ने, *थ्री पेनी ऑपेरा, लाइफ़ ऑफ़ गेलीलियो, मदर करैज एंड हर चिल्ड्रेन* समेत अनेक श्रेष्ठ नाटक रचे और इतिहास की इतिवृत्तात्मकता की जगह वर्णनात्मक शैली का क्रांतिकारी नाट्य सिद्धांत प्रतिपादित किया। उसी दौर में लिखी गयी बर्टोल्ट ब्रेश्ट की कविता की पंक्तियां भारत के मौजूदा हालात मानो बयां करती हैं :

बरस यह ऐसा कि करेंगे बातें लोग, बारे में इसके
बरस यह ऐसा कि रहेंगे लोग चुप, बारे में इसके
मरते देखते हैं जवानों को बूढ़े
मूर्ख देखते हैं मरते बुद्धिमानों को
धरती उगलती नहीं अब, निगलती है
लाता नहीं आकाश वर्षा-बौछारें, लोहा गिरता है।

भारत के संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि 1876 में ब्रिटिश हुकूमत ने देशभर में होने वाले नाट्य प्रदर्शनों पर शासन के नियंत्रण के लिए 'नाट्य प्रदर्शन अधिनियम, 1876' पारित किया। इस अधिनियम के अनुसार शासन को यह अधिकार प्राप्त था कि बग़ैर स्थानीय प्रशासन की पूर्व अनुमति के यदि किसी नाटक का प्रदर्शन होता है जो सरकार की किसी नीति का विरोध करता है तो उस संस्था और उससे जुड़े लोगों को षड्यंत्रकारी घोषित कर तीन साल तक जेल की सज़ा व जुर्माने का भागीदार

माना जायेगा। इसके अलावा भी कई अन्य जनविरोधी प्रावधान इस अधिनियम का हिस्सा हैं। इस अधिनियम की पृष्ठभूमि अत्यंत दिलचस्प है।

दिसंबर, 1872 में नेशनल थियेट्रिकल सोसाइटी की ओर से दीनबंधु मित्र रचित, *नील दर्पण* नाटक का कलकत्ता में मंचन किया गया। इस नाटक में नील की खेती करने वाले किसानों के अंग्रेज़ों द्वारा बर्बर शोषण को उजागर किया गया था। इस नाटक के प्रदर्शन के बाद बंगाल में जैसे भूचाल आ गया। देशभक्त अख़बारों ने नाटक के पक्ष में संपादकीय लिखे और जमकर इसकी प्रशंसा की। लेकिन अंग्रेज़ परस्त अख़बारों ने *नील दर्पण* के नाट्य प्रदर्शन पर प्रतिकूल व भद्दी टिप्पणियां कीं और नाटक पर प्रतिबंध लगाने की मांग की; नाटक की इसी प्रतिरोधकारी भूमिका के कारण आख़िरकार अभिव्यक्ति की आज़ादी के अपहरण के परिणामस्वरूप 'नाट्य प्रदर्शन अधिनियम, 1876' अस्तित्व में आया। अकारण नहीं है कि आज भी यह काला क़ानून वजूद में है जबकि मौजूदा केंद्रीय सरकार बार-बार खुद अपनी पीठ थपथपाती है कि उसने पिछले पांच वर्षों में सैकड़ों बेमतलब क़ानूनों को निरस्त कर दिया!

यहां यह ग़ौरतलब है कि मौजूदा दशक न सिर्फ़ भारतीय राजनीति में, वरन संपूर्ण भारतीय समाज के लिए एक नये मोड़ का सूचक है। आज़ादी के बाद से अब तक भारतीय समाज ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। आपात्काल से लेकर बाबरी मस्जिद विध्वंस समेत अनेक ऐसे कारनामे हुए हैं जिनसे देश में उथल-पुथल की स्थितियां उत्पन्न हुईं; तथापि धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के प्रति लोगों की आस्था व धार्मिक सहिष्णुता की भावना भारतीय जनमानस को अनुप्रेरित करती रही। यही कारण है कि पूरे देश में घृणा और फ़िरकापरस्ती का ऐसा माहौल कभी नहीं बना जैसा 2014 के आम चुनाव के बाद देखने को मिला। इसने भारतीय समाज को झकझोर दिया और सदियों पुरानी गंगा-जमुनी संस्कृति के ताने-बाने को तार-तार कर दिया।

तर्क-वितर्क से परे एक ऐसी संस्कृति का बीजारोपण हुआ जिसकी क़ीमत डॉ. नरेंद्र दाभोलकर, गोविंद पानसरे, प्रोफ़ेसर एम.एम. कलबुर्गी व गौरी लंकेश जैसी महत्वपूर्ण हस्तियों को अपनी जान देकर चुकानी पड़ी। अलग-अलग अंतराल में इन तर्कवादी बुद्धिजीवियों की जघन्य हत्या महज़ इत्तफ़ाक़ नहीं बल्कि इसके तार अंधराष्ट्रवादियों के संगठित संघी गिरोह से जुड़े हैं। दरअसल, यह उस दृढ़ विचार की हत्या की कोशिश है जो विवेक व तार्किकता पर आधारित है और भारतीय चिंतन की सबसे बड़ी ताक़त तार्किकता ही है। लेकिन सत्ता के शीर्ष पर क़ाबिज़ राजनेताओं की ओर से न तो कभी इन हत्याओं की भर्त्सना की गयी और न कोई सार्वजनिक बयान दिया गया। यही वह दौर है जब सरकार, साहित्य अकादमी व अन्य सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों की ओर से भी विरोध या प्रतिकार स्वरूप किसी प्रकार का वक्तव्य तक जारी नहीं किया गया। ज़ाहिर है, केंद्र की सत्ता पर क़ाबिज़ सत्तारूढ़ दल ने एक-एक कर तमाम साहित्यिक, सांस्कृतिक, ज्ञान-विज्ञान व शोध से जुड़े संस्थानों के शीर्ष पर बैठे दक्ष व पेशेवर विशेषज्ञों की जगह द्वितीय-तृतीय कोटि के कूढ़मग़ज़ लोगों को ला कर बिठाया, जिन्होंने सत्ता के अधीन रहते हुए ज्ञानविरोधी, विज्ञानविरोधी व तर्कातीत मान्यताओं को स्थापित करने का संगठित अभियान शुरू किया जिन लोगों के तार नागपुर स्थित अपने मातृ संगठन से जुड़े हुए हैं।

इस पृष्ठभूमि में, अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों के ज़रिये देशभर में स्वतंत्रचेता व प्रगतिशील विचारधारा से जुड़े लोगों ने कविता, गीत, व सबसे जीवंत व कारगर माध्यम नाटक के ज़रिये लोगों से जुड़ने की पहल की। इस प्रक्रिया में पूरे देश में अलग-अलग रंग-समूहों ने समसामयिक विषयों पर अनेक नाट्य मंचन किये और बड़ी संख्या में इन नाट्य प्रदर्शनों में दर्शकों की भागीदारी रही। दूसरी ओर, इसी दौर में गाय, गोबर व गोमूत्र का संगठित अभियान भगवा ब्रिगेड व लंपट संगठनों की ओर चलाया गया

ताकि मूलभूत मुद्दों से लोगों का ध्यान भटकाया जा सके। इन विपरीत परिस्थितियों में नाटक प्रतिरोध व भ्रम की स्थिति के ख़िलाफ़ एक कारगर औजार बन सकता है और पूरी दुनिया में नाटक व रंगकर्म ने यह भूमिका निभायी है। अपने देश में भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) ने भारत की आज़ादी की लड़ाई के दौर में नाटक का सृजनात्मक इस्तेमाल कर जनचेतना को विस्तार देने व अंग्रेज़ी हुकूमत की दमनकारी नीतियों के ख़िलाफ़ जनता को लामबंद करने में ऐतिहासिक भूमिका निभायी थी। नाटक की इस प्रतिरोधकारी भूमिका के कारण इप्टा से जुड़े रंगकर्मियों, निर्देशकों को इसका ज़बरदस्त ख़ामियाज़ा भुगतना पड़ा था, लेकिन इसने भारतीय रंगकर्म को नयी पहचान दिलायी। इतिहास अपने को दोहराता है। एक बार फिर अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों से जुड़े लोगों को उन्हीं प्रतिकूल स्थितियों से गुज़रना पड़ रहा है। उन्मादी राष्ट्रवाद की आड़ में अभिव्यक्ति की आज़ादी को कुचलने की लगातार कोशिशें हो रही हैं।

वर्ष 2017 में जाने-माने फ़िल्मकार संजय लीला भंसाली की फ़िल्म, *पद्मावती* के प्रदर्शन को लेकर देशभर के कई इलाक़ों में भगवा ब्रिगेड से जुड़े लोगों ने जो उत्पात मचाया, लोग अभी भी उसे भूले नहीं हैं। इस तरह की घटनाएं इस बात की ओर इशारा करती हैं कि एक महान राष्ट्र किस दिशा की ओर बढ़ रहा है और कैसा समाज गढ़ा जा रहा है, जहां किसी भी स्तर पर कला माध्यमों में सृजनात्मक प्रयोग की छूट नहीं दी जा सकती। तथापि पूरे देश में अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों, विशेषकर नाट्य प्रदर्शनों पर रोक लगाने या फिर सत्ता-पोषित भगवा ब्रिगेड द्वारा उत्पात मचाने की घटनाओं की फ़ेहरिस्त लंबी होती जा रही है।

पिछले वर्ष अक्तूबर माह में इंदौर में आयोजित इप्टा के 14वें राष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम के ठीक पहले हिंदूवादी संगठन से जुड़े लोगों ने आयोजकों पर 'देशद्रोही' कन्हैया कुमार का समर्थक होने के नारे लगाये, उपस्थित कार्यकर्ताओं को 'भारत माता की जय' बोलने का फ़रमान सुनाया और उत्पात मचाना शुरू कर दिया। इस दौरान कई कार्यकर्ता घायल भी हो गये थे। स्थानीय अख़बारों ने प्रमुखता से अगले दिन इस घटना को प्रकाशित किया।

इसी कड़ी में पिछले वर्ष उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर में 'मंथन आर्ट्स' की ओर से आयोजित विश्वविख्यात नाटककार शेक्सपियर के नाटक, *ऑथेलो* को नाट्य मंचन की अनुमति देने से स्थानीय पुलिस ने इनकार कर दिया। इसके पूर्व *गाय* व *औरंगज़ेब* नाटक का मंचन भी पुलिस ने रुकवा दिया था।

इसी प्रकार पुणे स्थित 'कबीर कला मंच' के कई सदस्यों को पुलिस दमन का शिकार होना पड़ा। 'कबीर कला मंच' ज़्यादातर दलित समुदाय से जुड़े संस्कृतिकर्मियों का समूह है जो गीत-संगीत, कविता व समसामयिक नुक्कड़ नाटकों के ज़रिये दलित-उत्पीड़ित वर्ग के लोगों के बीच सक्रिय हैं। इस मंच से जुड़े कई सक्रिय सदस्यों को महाराष्ट्र के भीमा कोरेगांव में आयोजित कार्यक्रम में सांस्कृतिक माध्यमों के ज़रिये आपत्तिजनक गीत व लोगों के बीच शत्रुता का भाव पैदा करने के आरोप में पिछले वर्ष पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया।

पुणे स्थित फ़िल्म व टेलीविज़न के प्रबंधन ने वहां के अंतिम वर्ष के एक छात्र द्वारा 23 मिनट की डॉक्यूमेंट्री, *होरा* के प्रदर्शन पर अंतिम समय में रोक लगा दी। कारण कि भगवा ब्रिगेड से जुड़े एक छात्र संगठन ने इसके प्रदर्शन का विरोध किया था। दरअसल, *होरा* 'कबीर कला मंच' की सांस्कृतिक गतिविधियों को केंद्र में रखकर बनाया गया था। छद्म देशभक्तों की नज़र में डॉक्यूमेंट्री देशद्रोहियों का महिमामंडन करती है।

इस वर्ष के अप्रैल माह में 'हिमाचल शोध संस्थान' व 'नाट्य रंग मंडल' द्वारा आयोजित विख्यात

नाटककार विजय तेंदुलकर के चर्चित नाटक, *जाति ही पूछो साधु की* के नाट्य मंचन के पूर्व आयोजकों को एक समूह द्वारा धमकी दी गयी कि यदि इस नाटक का नाम नहीं बदला गया तो उसका मंचन नहीं होने दिया जायेगा। आयोजकों ने दबाव में आकर नाटक का शीर्षक बदल दिया, 'जाति न पूछो साधु की'। और इसके बाद ही इस नाटक का मंचन संभव हो पाया।

इसके पूर्व लखनऊ में जाने-माने नाटककार राजेश कुमार के नाटक, *गाय* के मंचन के दौरान भी भगवा ब्रिगेड ने उत्पात मचाया और नाट्य मंचन में व्यवधान पैदा किया। पूरे देश में *गाय* के नाम पर राजनीतिक रोटी सेंकने वाले दल व संगठनों की कारगुज़ारियों को इस नाटक में कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। मूलभूत समस्याओं से लोगों का ध्यान भटकाकर स्वार्थी राजनीतिक दल के लोग किस तरह आम लोगों का भावनात्मक इस्तेमाल करते हैं *गाय* नाटक में इन्हीं जीवन-स्थितियों को दर्शाया गया है। भगवा ब्रिगेड की नज़र में यह नाटक लोगों की धार्मिक आस्था के साथ खिलवाड़ है।

इसी प्रकार नवंबर माह में नाटक के ज़रिये जागरूकता फैलाने की दिशा में सक्रिय 'कबीर फ़ाउंडेशन, मुंबई' द्वारा राजेश कुमार लिखित नाटक, *तफ़्तीश* के मंचन पर स्थानीय पुलिस ने रोक लगा दी और नाट्य निर्देशक को थाने में तलब किया और अकारण वहां घंटों बैठाकर रखा। *तफ़्तीश* नाटक एक निर्भीक पत्रकार को केंद्र में रखकर लिखा गया है जो उन घटनाओं को सामने लाना चाहता है जिसे कॉरपोरेट नियंत्रित मीडिया समूह जानबूझकर अनदेखा करता है ताकि सच्चाई से लोग वाकिफ़ नहीं हो सकें। नाटक के मुख्य पात्र को आतंकवादी होने के जुर्म में पुलिस हिरासत में ले लेती है और प्रताड़ित करती है। पूरे देश में सच का बयान करने वाले लोगों को, मौजूदा निरंकुश शासनतंत्र कभी 'आतंकवादी', कभी 'देशद्रोही' के रूप में प्रचारित कर किस तरह परेशान करने की मुहिम चला रहा है *तफ़्तीश* इन्हीं स्थितियों से दर्शकों को रू-ब-रू कराता है।

हाल के वर्षों में सांस्कृतिक प्रतिरोध के विभिन्न माध्यमों को दबाने-कुचलने की घटनाओं में काफ़ी तेज़ी आयी है। उन्मादी राष्ट्रवाद की इस दौड़ में केंद्र में सत्तारूढ़ दल व उनसे जुड़े देशभर में फैले उन्मादी भगवा ब्रिगेड का एक सूत्री कार्यक्रम है तर्क व सच बोलने वाले लोगों के ख़िलाफ़ घृणा का प्रचार करना। नफ़रत की राजनीति में दक्ष ऐसे लोगों के लिए सबसे सॉफ़्ट टारगेट हैं संस्कृतिकर्मी, जो नाटक, संगीत व अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों के ज़रिये सामाजिक सरोकार से जुड़े मुद्दों के प्रति लोगों को सचेत करने की दिशा में सक्रिय हैं और जन सामान्य के बीच उनकी अच्छी ख़ासी पैठ भी है। 'अर्बन नक्सली' के रूप में प्रचारित कर संस्कृतिकर्मियों के ख़िलाफ़ लगातार झूठे मुक़दमे दायर कर उन्हें परेशान और तबाह करने का सुनियोजित खेल जारी है। सत्ता की इस निरंकुशता की तरफ़ इशारा करते हुए महान शायर फ़ैज़ ने लिखा :

यूं ही हमेशा उलझती रही है ज़ुल्म से ख़ल्क़,
न उनकी रस्म नयी है न अपनी रीत नयी।
यूं ही हमेशा खिलाये हैं हमने आग में फूल,
न उनकी हार नयी है न अपनी जीत नयी।

मो. : 9939442704

सिनेमा में प्रतिरोध के मायने

संजय जोशी

बीती सदी में तितली मूंछों वाले सिनेमा के लोकप्रिय अदाकार चार्ली चैपलिन की याद है न ? वे सिनेमा के शुरुआती दौर के नायक थे; लेकिन आज तक हमारी स्मृतियों पर उनकी कला का कब्ज़ा है। पिछली से पिछली सदी के आख़िरी दशक में अविष्कृत हुए सिनेमा माध्यम को पिछली सदी में ही ऊंचाई मिली और सिनेमा के अब तक के इतिहास में अगर कोई एक कलाकार इस माध्यम को कलात्मक ऊंचाई प्रदान कर सका तो वो निसंदेह चार्ली ही थे। ज़रा उनकी फ़िल्म, *दि ग्रेट डिक्टेटर* की याद करिए और फिर उस हिस्से में पहुंचकर अपनी याददाश्त को घुमा लीजिए जब नक़ली तानाशाह अपना भाषण शुरू करता है। वह कहता है :

> माफ़ करें मैं राजा नहीं बनना चाहता न हीं मैं किसी पर शासन करना चाहता हूं... मैं हर किसी की मदद करना चाहता हूं, यहूदी, काले लोग, गोरे लोग... हम एक दूसरे से घृणा नहीं प्रेम करना चाहते हैं। इस दुनिया में सबके लिए जगह है और प्यारी धरती सबका थाल भर सकती है... हम सोचते बहुत हैं जबकि महसूसते बहुत कम। हमें मशीन से ज़्यादा मानवता की ज़रूरत है...।

मेरे ख़याल से विश्व सिनेमा के इतिहास में यह अब तक दिया सबसे मानीखेज भाषण है जो इस धरती को, इस मनुष्यता को और इस नाते हम सबको बचाने की बात करता है। तानशाह आगे कहता है :

> आइए, धरती को मुक्त करने के लिए लड़ें, राष्ट्रीय सरहदों से छुटकारा पावें, लालच से, घृणा और असहनशीलता से निजात पायें। एक तार्किक दुनिया बनाने के लिए संघर्ष करें। एक ऐसी दुनिया बने जहां विज्ञान और प्रगति के ज़रिये मनुष्य का भला हो।

पिछली सदी की यह सबसे बड़ी सिनेमाई उपलब्धि है जिसके मायने आज के फ़ासीवादी समय में हमें और ठीक से समझ में आते हैं।

चित्र-1 : फ़िल्म, *दि ग्रेट डिक्टेटर* में नक़ली तानाशाह चैपलिन

1940 में हालीवुड में बनी फ़िल्म, *ग्रेट डिक्टेटर* तब से लेकर अब तक के सभी तानाशाहों के लिए एक ज़रूरी आईना है; लेकिन आज की तारीख़ में सिनेमा में होने वाले प्रतिरोध को हमें अलग तरह से देखना होगा। आज के पूंजीवादी समय में सबसे ज़्यादा एकाधिकार सूचना के माध्यम पर हुआ है। सूचना के माध्यम में छवियों की दुनिया भी है। अब छवियों का निर्माण सिर्फ़ सिनेमा हाल या टेलीविज़न के सेट से नहीं होता, उन पर बाक़ायदा कब्ज़ा उन लोगों के हाथ में है जिनका पूंजी पर भी कब्ज़ा है। इसलिए यह अचानक नहीं हो जाता कि रिलायंस समूह सबसे धनी समूह होने के साथ 75 प्रतिशत से अधिक मीडिया का स्वामी भी हो जाता है। यह खेल हमें तब समझ में आता है जब किसी भी सच्ची ख़बर से ज़्यादा प्रामाणिक हमें उसकी झूठी ख़बर लगने लगती है क्योंकि झूठों का नेटवर्क और उस नेटवर्क में लगी पूंजी की मात्रा हमारे कमिटमेंट से कई गुना ज़्यादा है। इसीलिए 70 के दशक में शुरू हुई सिनेमाई नयी लहर हमें बहुत इलीट लगती है। इसीलिए श्याम बेनेगल की *अंकुर* और केतन मेहता की *मिर्च मसाला* के यादगार दो दृश्य : पहला, जिसमें लड़का ज़मींदार के घर पर पत्थर फेंकता है और दूसरा लाल मिर्च की फ़ैक्टरी की औरतों का सामूहिक रूप से नसीरुद्दीन शाह पर लाल मिर्च का पाउडर फेंकना- फ़िल्म सोसाइटी आंदोलन के शहरी मध्यवर्ग तक ही सिमट कर रह जाते हैं जबकि मुख्यधारा का सिनेमा तो कुछ और ही कहानियां गढ़ रहा था।

सिनेमा बनाना, कविता, कहानी या दीवाल पर नारे लिखना जितना संभव नहीं और सिनेमा बनाने के साथ सिनेमा दिखाना भी एक ज़रूरी काम है इसलिए सिनेमा बनाना और दिखाना दो अलग चीज़ें न होकर एक ही चीज़ हैं जिसमें किसी एक पर भी नियंत्रण न होने से सिनेमा का मक़सद पूरा नहीं होता। इसलिए जब हम सिनेमा में प्रतिरोध की बात करते हैं तो चाहकर भी दूसरे कला माध्यम जैसी एकांतिक कला अभिव्यक्ति नहीं होती। इसीलिए सिनेमा माध्यम में तकनीक की उपलब्धता, उसका सस्ता होना और उसका तेज़ी से डुप्लीकेट होना वे नये कारक थे जिनको समझे बिना हम सिनेमाई प्रतिरोध की अभिव्यक्ति की आकांक्षा और लाचारी को नहीं समझ पायेंगे।

चित्र-2 : फ़िल्म शूटिंग का तामझाम : 'एक था टाइगर' की शूटिंग से एक दृश्य

जब हमारे पास डिजिटल तकनीक नहीं थी तब सिनेमा माध्यम की मजबूरी थी सेल्यूलाइड में छवियों का अंकन, फिर उन्हें बड़े प्रोजेक्टरों द्वारा बड़े सिनेमा हाल में प्रदर्शित करना। इस बड़े बड़े के चक्कर में कुछ मिनट की छवियों को क़ैद करना एवरेस्ट चढ़ने जैसा था। इसलिए सिनेमाई अभिव्यक्ति आम नियम की तरह संस्थानों से ही संचालित होती रही। इस संचालन ने निजी क्षेत्र में फ़िल्म के वितरकों और सरकारी क्षेत्र में फ़िल्म प्रभाग जैसी संस्थाओं को सेंसर के असीमित अधिकार दिये। यह सेंसर सिर्फ़ विषय के चुनाव तक ही सीमित नहीं था; बल्कि इसने सिनेमा के रूप को भी प्रभावित किया। हमारे

यहां के सबसे बड़े सिने उद्योग मुंबई में, दशकों तक नाच गाने फ़िल्म की कहानी की ज़रूरी डोर बने तो सरकारी क्षेत्र में भारी भरकम आवाज़ में रिकार्ड की गयी कमेंटरी पर चलते दृश्यों को ही हमने अंतिम समझा।

सिनेमा निर्माण के इस पहलू ने इस कारण बहुत से विषयों और अभिव्यक्तियों से एक स्थायी दूरी बनाये रखी और साल दर साल हाशिये की तमाम आवाज़ों की उपेक्षा करते हुए एक के बाद एक पुनरावृत्तियां होती रहीं।

1990 का दशक भारतीय जीवन के लिए कई मायनों में महत्वपूर्ण रहा। इसी दशक में नयी आर्थिक नीतियों की वजह से आम जन को दरबदर करने का सिलसिला तेज़ हुआ। वहीं सिनेमा की तकनीक में पहले वीडियो के प्रवेश, फिर उसमें हुई तेज़ी से फेरबदल की वजह से अब कई कंधों और दिमाग़ से छवियों के अंकन का काम शुरू होना संभव हुआ।

नयी तकनीक में कैमरे और साउंड रिकार्डर का एक होना कोई छोटी उपलब्धि न थी। इसने असंख्य नये युवा फ़िल्मकारों की फ़ौज तैयार कर दी।

कैसे सिनेमा के वितरण पर कब्ज़ा न होना किसी बड़ी सिनेमाई उपलब्धि या यह कहें कि सिनेमाई प्रतिरोध की हवा निकाल देता है। इसका बहुत अच्छा उदहारण 1995 में नेशनल फ़िल्म डिवैलपमेंट कारपोरेशन द्वारा निर्मित और सईद मिर्ज़ा द्वारा निर्देशित, *नसीम* फ़िल्म का है। 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद देश के बुद्धिजीवियों में गहरी हताशा थी। इस हताशा की थोड़ी हवा निकालने के मक़सद से सईद मिर्ज़ा को यह फ़िल्म बनाने को मिलती है जिसमें किसी तरह का कोई क्रिएटिव हस्तक्षेप भी नहीं होता; लेकिन तमाम उदारता के बावजूद नेशनल फ़िल्म डिवैलपमेंट कारपोरेशन इसका वितरण ही नहीं करता है। इस सरकारी चालाकी से लड़ने का सबसे कारगर तरीका मशहूर दस्तावेज़ी फ़िल्मकार आनंद पटवर्धन ने खोज निकाला। उन्होंने अपनी हर फ़िल्म को राष्ट्रीय पुरस्कारों के लिए भेजा और फिर पुरस्कार मिलने पर हर पुरस्कृत फ़िल्म को दिखाने के लिए सरकार पर दवाब डाला और क़ानूनी लड़ाई जीतकर दूरदर्शन के ज़रिये दर्शकों के एक विशाल समूह तक अपनी बात पहुंचा सके।

मुझे लगता है कि सिनेमा बनाने से भी ज़्यादा ख़ास बात है सिनेमा के वितरण में अपनी हिस्सेदारी बनाना। कई बार यह हिस्सेदारी आपकी फ़िल्म के अद्‌भुत क्राफ़्ट से पैदा होगी, तो कई बार बड़े पुरस्कार जीतकर; तो शायद कई बार अपने खुद के दर्शक बनाकर। नया हिंदुस्तानी सिनेमा आंदोलन शायद इसीलिए सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि वह अपने दर्शक अपनी क़ीमत पर बना पा रहा है।

अब अपना सिनेमा और नये प्रोजेक्टरों की मदद से अपने दर्शक बना सकना कोई मुश्किल प्रमेय नहीं। इसके कुछ सफल उदाहरणों को भी हमें ज़रूर जानना चाहिए तब सिनेमाई प्रतिरोध की असल सूरत से हम वाक़िफ़ हो सकेंगे। लेकिन इससे पहले मैं नयी शताब्दी में नयी तकनीक की वजह से छवियों के अंकन में जो कुछ बड़े अनुभव हासिल हुए हैं उनकी बानगी ज़रूर पेश करना चाहूंगा। हम सब AFSPA नामक काले क़ानून से भली भांति परिचित होंगे। साल 2004 में मणिपुर में असम राइफ़ल्स के जवानों द्वारा मनोरमा देवी का बलात्कार और फिर हत्या होती है। इसके बाद पूरे मणिपुर में AFSPA के ख़िलाफ़ व्यापक गोलबंदी होती है। इस गोलबंदी की चरम अभिव्यक्ति 15 जुलाई 2004 को घटती है जब असम राइफ़ल्स के मुख्यालय कांगला फ़ोर्ट के गेट के सामने नौ मणिपुरी औरतें अपना चरम प्रतिरोध दर्ज करते हुए नग्न प्रदर्शन करती हैं और अपने बदन के आगे एक सफ़ेद चादर रखती हैं जिस पर लिखा था : INDIAN ARMY RAPE US. यह वाक़या बमुश्किल पांचेक मिनट चला और फिर वे सब बेहोश होकर ज़मीन पर गिरती गयीं; लेकिन इस दरम्यान उनके प्रतिरोध की छवियों के अंकन

ने पूरे देश में AFSPA के ख़िलाफ़ जनमत बनाने में बहुत मदद की।

कुछ इसी तरह का दृश्य चार साल पहले 11 जुलाई 2016 को गुजरात के उना में क़ैद किया गया जब सात दलित युवकों को जीप से बांधकर चमड़े की बेल्ट से मारा गया। जैसे जैसे यह दृश्य सोशल मीडिया के विभिन्न फ़ॉरमेट्स द्वारा लोकप्रिय होता गया वैसे वैसे गुजरात का दलित आंदोलन और उस आंदोलन से निकला नारा, 'गाय की पूंछ तुम रखो, हमें हमारी ज़मीन दो' भी लोकप्रिय होता गया।

चित्र-3 : मणिपुर प्रोटेस्ट : AFSPA

चित्र-4 : उना, गुजरात में दलित उत्पीड़न

सिनेमाई प्रतिरोध की बहुत सी छोटी-बड़ी कहानियां हमारे आसपास हर रोज़ घटती रहती हैं जिनकी ख़बरें हमें नहीं मिलतीं क्योंकि वे बॉक्स ऑफ़िस पर करोड़ों का हिसाब नहीं करतीं। वे तो बस हमारे जीवन में थोड़ा बहुत उलटफेर करती हैं जैसे कि प्रताप विहार, ग़ाज़ियाबाद की पुष्पा रावत की कहानी। पुष्पा ने दिल्ली के बालभवन से कैमरा चलाना सीखा। जब उन्हें कुछ बनाने का मौक़ा मिला तो बहुत से विषयों से माथापच्ची करने के बाद उनकी गुरु अनुपमा श्रीनिवासन ने उन्हें अपनी ही कहानी क़ैद करने के लिए प्रेरित किया। अपनी कहानी पर फ़िल्म बनाते हुए जब पुष्पा ने *निर्णय* नाम की दस्तावेज़ी फ़िल्म बना डाली तो सिनेमा जगत को एक ऐसी नयी फ़िल्म मिली जो अब तक तमाम फ़िल्मकारों से अछूती थी। अब जब कभी इस फ़िल्म की स्क्रीनिंग युवा लड़कियों के बीच होती तब तब प्रेम और प्रतिरोध की कई क़िस्में बातचीत के दौरान दिखती रहती हैं। पुष्पा जैसी कहानी तो पहले ज़माने की लड़कियों के पास भी ज़रूर रही होगी। मसला तो अवसर मिलने का था।

दस्तावेज़ी सिनेमा बनाने और देखने-दिखाने वाले अक्सर इस ग्रंथि के शिकार रहते हैं कि वे कब तक हाशिये पर बने रहेंगे जबकि नये सिनेमाई समय में हर अंधेरी जगह को आप अपने बैकपैक में रखे छोटे प्रोजेक्टर और एक कोने में रखी सफ़ेद चादर से एक बेहद हलचल वाले सिनेमाघर में बदल सकते हैं। ये नये सिनेमाघर और फिर उसमें निर्मित नयी बहसें किसी बड़े हासिल से कम नहीं; 1 अगस्त 2015 को रामजस कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय के ऐसे ही एक नये सिनेमाघर में जब नकुल सिंह साहनी की फ़िल्म, *मुज़फ़्फ़रनगर बाक़ी है* को दक्षिणपंथी गुंडों ने ज़बरन रोकना चाहा तो दिखाने के नये तरीक़ों की वजह से सिनेमाई प्रतिरोध की एक नयी मिसाल बनी। इस गुंडई के ख़िलाफ़ 'प्रतिरोध का सिनेमा अभियान' ने 25 अगस्त 2015 को *मुज़फ़्फ़रनगर बाक़ी है* की देशव्यापी प्रतिरोध स्क्रीनिंग का ऐलान कर दिया। दिल्ली के एक ऑफ़िस से रातोंरात फ़िल्म की कई डीवीडी बनायी गयीं और सोशल मीडिया के ज़रिये पूरे देश के सिनेमा प्रेमियों को इसका न्योता दिया गया। कुछ ही दिनों में हर तरफ़ से इस फ़िल्म की स्क्रीनिंग की मांग आने लगी और 25 अगस्त को पूरे देश के कम से कम 70 शहरों में 100 स्क्रीनिगें हुईं जिसमें कई हज़ार लोगों ने न सिर्फ़ फ़िल्म देखी बल्कि उस पर जम कर बहस भी की। ये आंकड़े निश्चय ही कई सौ करोड़ की लागत और फिर करोड़ों रुपये के प्रचार से निर्मित मुख्यधारा की फ़िल्म से तुलना के लिए नहीं हैं। लेकिन यहां यह पूछना ज़रूरी है कि क्या कई सौ करोड़ रुपये कमाने वाली फिल्में इस तरह की जीवंत बहसें भी करवा पाती हैं।

चित्र-5 : *25 अगस्त* की प्रतिरोध स्क्रीनिंग का पोस्टर

सिनेमा बनाने और दिखाने की नयी तकनीक के ज़माने में सिनेमाई प्रतिरोध की इस तरह की सैकड़ों कहानियां हैं जो नयी तरह का सिनेमा बनाने वालों और इस तरह के सिनेमा अभियान चलाने वालों के लिए प्राणवायु का काम करती हैं। ज़रूरत है सिनेमा की नयी ताक़त को और अधिक शिद्दत से पहचानने की ताकि ज़्यादा से ज़्यादा नयी सिनेमाई जगहों का निर्माण हो सके और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति हाशिये की नहीं, वरन मुख्यधारा की जगह ले सके।

नये काम का यह सिलसिला अभी रुका नहीं है। इंटरनेट और नये माध्यमों के विस्तार की वजह से दलाल और जनविरोधी मीडिया की जगह कई नये मीडिया संस्थान अंतरजाल (इंटरनेट) की दुनिया में आ गये हैं। अच्छी बात यह है कि इनका दायरा भी कोई कम नहीं। आज *वायर, स्क्रोल, न्यूज़क्लिक* जैसे संस्थान हर रोज़ दलाल मीडिया को चुनौती दे रहे हैं; वहीं *समकालीन जनमत, नैनीताल समाचार, मीडिया विजिल, जन चौक, गोरखपुर न्यूज़लाइन, नेशनल दस्तक, जन ज्वार, फ़ारवर्ड प्रेस* जैसे लगभग बिना पूंजी वाले मीडिया संस्थान भी अपने चुनिंदा साथियों के कमिटमेंट की वजह से अपने महत्व को बनाये हुए हैं। तीन साल पहले 10 अगस्त 2017 के दिन गोरखपुर शहर में ऑक्सीजन की कमी और उससे हुई 34 बच्चों की मौतों की चेतावनी बरसों से कौन आपको दे रहा था। ज़ाहिर है कि यह काम किसी 'जागरण' या 'एचटी मीडिया समूह' ने नहीं बल्कि एक अकेले पत्रकार मनोज सिंह द्वारा चलाये जानेवाले न्यूज़ पोर्टल, *गोरखपुर न्यूज़ लाइन* ने कर दिखाया। इसी तरह पिछले तीन सालों से पश्चिमी उत्तर प्रदेश की नियमित ख़बरें हमें एक, एकदम बनते हुए, नये मीडिया संस्थान, *चल चित्र अभियान* द्वारा ही मिली हैं।

ख़बरों की दुनिया में न ख़बरें न सिर्फ़ बड़े मीडिया संस्थानों द्वारा छुपायी गयीं बल्कि बहुत से कुख्यात संस्थानों ने 'फ़ेक' ख़बरें चलाकर भी बहुत नुक़सान किया; लेकिन इसका भी प्रतिकार किसी बड़ी पूंजी ने नहीं, बल्कि प्रतीक सिन्हा के *ऑल्ट न्यूज़* जैसे निहायत छोटे संस्थान ने किया जो आज भी बड़ी बदनाम पूंजी की करतूतों पर भारी है।

साल 2019 में पूरे हिंदुस्तान में नागरिकता क़ानून के विरोध में चले शाहीन बाग़ आंदोलन के लिए भी जाना जायेगा जिसकी हज़ारों ख़बरें, पूरी विविधता के साथ ऊपर बताये गये नये मीडिया संस्थानों और खुद आंदोलन की जगह पर उपजे एकदम नये मीडिया की पहलों की वजह से हमारे सामने आयीं और तानाशाही सत्ता का असली चेहरा दिखाने में कामयाब रहीं।

नयी तकनीक की वजह से आज हर छोटे-बड़े क़स्बे में एलसीडी प्रोजेक्टर ठीक उसी तरह मिल रहे हैं जिस तरह से पचीस साल पहले वीसीआर और फ़िल्मों के कैसेट मिलते थे। वीसीआर और छोटे टीवी की वजह से एक तरह की समानांतर स्क्रीनिंग उन दिनों भी मोहल्लों में हुआ करती थी; लेकिन एलसीडी प्रोजेक्टरों के आने से अब असल के सिनेमा हाल बनने शुरू हो गये; क्योंकि इन प्रोजेक्टरों को परदे से थोड़ा ही दूर ले जाने पर सिनेमा हाल जैसी ही छवि नयी जगहों में बननी शुरू हो गयी जो वीसीआर और छोटे टीवी सेटों के ज़रिये हासिल न हो सकी थी। एक दूसरी बात यह भी हुई कि पहले के वीडियो कैसेट 4-5 स्क्रीनिंगों के बाद घिस जाते थे जबकि नये ज़माने की डीवीडी ज़्यादा टिकाऊ थी। फिर, थोड़ा और समय बीतने पर जब इंटरनेट का जाल फैलना शुरू हुआ तब, 'टोरेंट साइट' दुनिया भर का सिनेमा चोरी कर अपने सुधी दर्शकों के लिए मुहैया करवाने लगा। तकनीक के इस उलटफ़ेर और उदारता की वजह से अब हर छोटे बड़े शहर और क़स्बे में सिनेमा सक्रियता का नया दौर शुरू हुआ और सत्तर के दशक के सिनेमा आंदोलन से लोकप्रिय हुई फ्रांसीसी नयी लहर की फ़िल्मों के अलावा केरल, बंगाल, ओड़िशा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात आदि में बन रही नयी कथा फ़िल्मों को भी देखा जाने लगा। इसके साथ ही

आनंद पटवर्धन, राकेश शर्मा, दीपा धनराज, मेघनाथ, संजय काक, रीना मोहन, शबनम विरमानी, सबा दीवान, सुरभि शर्मा, राहुल राय, अजय भारद्वाज, फ़ैज़ा अहमद ख़ान, पारोमिता वोहरा, अनुपमा श्रीनिवासन, पुष्पा रावत सरीखे तमाम दस्तावेज़ी फ़िल्मकारों का काम भी नये सिनेमा अड्डों पर पहुंचने लगा। 21वीं शताब्दी में देश के अलग अलग कोनों में शुरू हुए सिनेमा दिखाने के नये आंदोलनों जैसे कि उत्तर भारत में 'प्रतिरोध का सिनेमा', पूरब में 'कोलकाता पीपुल'स फ़िल्म कलेक्टिव', कर्नाटक में 'पेडेस्ट्रियन पिक्चर', केरल में 'विब्योर फ़िल्म फ़ेस्टिवल' और तमिलनाडु में 'मरुपक्कम' आदि ने उभरते हुए नये फ़िल्मकारों में बहुत उत्साह जगाया। इन आंदोलनों की वजह से सेंसर की बाध्यता भी ख़त्म हुई और प्रतिरोध की इन नयी अभिव्यक्तियों को न सिर्फ़ नये दर्शक मिले बल्कि बहस और प्रशंसा की जीवंत परंपरा से सिनेमा की एकदम नयी धारा प्रवाहित हुई।

2019 का साल भारतीय सिनेमा के लिए बहुत ख़ास रहा है। इस साल की सबसे ख़ास तीन नयी फ़िल्मों, *ऐसे ही, ईब आले ऊ* और *आनी मानी* को किन्हीं नामचीन निर्माताओं ने नहीं बल्कि एकदम नये निर्माताओं और एकदम नये निर्देशकों ने निर्मित किया है। इन फ़िल्मों को अगर हम एक साथ देखें तो पता चलेगा कि पहली फ़िल्म की प्रौढ़ा मिसेज़ शर्मा कैसे अपनी तरह से जीवन जीने के प्रयास में एक दिन भुला दी जाती हैं; *ईब आले ऊ* का बेरोज़गार युवक अंजनी बड़ी मुश्किल से कोई नौकरी न मिलने पर दिल्ली के सरकारी इलाक़े में बंदर भगाने की नौकरी पाता और एक दिन खुद बंदर में तब्दील हो जाता है; वहीं, *आनी मानी* का युवा व्यवसायी भुट्टो बड़े जानवर की बिक्री अवैध घोषित होने पर अपने रोज़गार से हाथ धो बैठता है। वह आख़िरकार मार दिया जाता है। ये तीनों फ़िल्में हमारे समय के सच को बहुत मज़बूती से बिना किसी क़तरब्योंत के कहती हैं और देरसबेर नये सिनेमा के मंचों द्वारा ही आम लोगों तक पहुचेंगी भी।

चित्र-6 : *ईब आले ऊ* का बेरोज़गार युवक अंजनी

काले क़ानून और तमाम दमन के आज के दौर में इन नयी पहलों की वजह से ही लड़ाई जीतने का हमारा विश्वास बना हुआ है। इसलिए यह ज़रूरी है कि ऐसे नये बनते हुए संस्थानों को हम खोजकर यथासंभव उनकी मदद भी करें ताकि प्रतिरोध के मायने बने रहें।

मो. 9811577426

पुस्तक समीक्षा

जस्टिस लोया की विवादित मौत

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह

2019 में प्रकाशित, *सत्ता की सूली* नामक यह किताब महेंद्र मिश्र, प्रदीप सिंह और उपेंद्र चौधरी ने लिखी है। जनपक्षधर इन तीनों युवा पत्रकारों ने यह पुस्तक आम जनता और श्रमिक संघर्ष के अग्रणी नेता शहीद शंकर गुहा नियोगी और जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय छात्रसंघ के पूर्व अध्यक्ष शहीद चंद्रशेखर प्रसाद को समर्पित की है। यह पुस्तक 317 पृष्ठों में ढेर सारे तथ्यों और दस्तावेज़ों पर आधारित है। पुस्तक की 'भूमिका' मुंबई उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, बी जी कोलसे पाटिल ने लिखी है। जस्टिस पाटिल ने भूमिका में यह टिपण्णी की है कि 'जब आर एस एस-बी जे पी सत्ता में आते हैं तो पुरानी बोतल में पानी नहीं ज़हर होता है। यह मेरा अनुभव है।' इसके साथ ही उन्होंने कहा है, 'हम चाहते हैं कि लोया की मौत की फिर से जांच होनी चाहिए।'

इस पुस्तक का 'आमुख' सुप्रीम कोर्ट के वरिष्ठ वकील प्रशांत भूषण ने लिखा है। यह 'आमुख' 2 अप्रैल 2019 को लिखा गया था। इसमें उन्होंने यह कहा :

> यह केस आख़िर में सुप्रीम कोर्ट में आता है। उसकी स्वतंत्र जांच की मांग को लेकर सुनवाई के दौरान बहुत सारे ऐसे प्रमाण सामने आते हैं जो यह दिखाते हैं कि जज लोया की मौत बेहद संदिग्ध परिस्थितियों में हुई थी लेकिन उन सभी चीज़ों को नज़रअंदाज़ करके मामले को रफ़ा दफ़ा कर दिया जाता है।

पुस्तक में संकलित तमाम दस्तावेज़ों और रिपोर्टों के आधार पर प्रशांत भूषण ने किताब की बहुत प्रशंसा की है तथा यह बताया है कि जस्टिस लोया की मौत 'बहुत ही महत्वपूर्ण रहस्य है।' 'कानूनविद की नज़र में' शीर्षक से 'आमुख' के बाद सुप्रीम कोर्ट की वरिष्ठ वकील इंदिरा जयसिंह ने 3 अप्रैल को अपनी टिपण्णी लिखी है। उनकी मान्यता है कि

> यह किताब उन तमाम कड़ियों को जोड़ती है जिसमें एक हत्या के बाद दूसरी हत्या और एक मौत के बाद अगली मौत होती चली जाती है और यह सिलसिला उस वक़्त तक चलता रहता है जब तक कि राजनेता, आम स्त्री और पुरुष, गवाह और जज सभी की मौत नहीं हो जाती है। ...लगभग सात हत्याओं के परिणामस्वरुप संदिग्ध परिस्थितियों में मौत का यह केस स्पष्टतौर पर यह खुलासा करता है कि इन सभी घटनाओं का तार एक ही व्यक्ति से जुड़ता है जिसके बारे में इस किताब को पढ़ कर ही हम जान सकते हैं।

'भूमिका', 'आमुख', 'कानूनविद की नज़र में' लिखे गये आख्यान के बाद इस किताब के तीनों लेखकों ने 'लेखकीय' के अंतर्गत अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया है। इन तीनों पत्रकार लेखकों का दावा

है कि 'इस किताब को लिखने का मक़सद लोया मामला और उससे जुड़ी पुरी गुत्थी को सामने लाना है। इस काम में केवल और केवल तथ्यों का सहारा लिया गया है...।'

उपर्युक्त लेखकीय वक्तव्य के बाद पुस्तक की सारी सामग्री चार खंडों में घटनाओं के कालक्रम के अनुसार प्रस्तुत और विश्लेषित की गयी है। पुस्तक की शुरुआत सोहराबुद्दीन, कौसर बी और तुलसी प्रजापति के एनकाउंटर (फ़र्ज़ी मुठभेड़) के घटनाक्रम के सारे विवरणों और हंगामों से सी बी आई को केस सौंपने से होती है। इसके बाद दूसरे खंड में जस्टिस लोया की सी बी आई जज के रूप में नियुक्ति, उनकी मृत्यु और पोस्टमार्टम रिपोर्ट का हवाला दिया गया है, रिपोर्ट में फ़ोरेंसिक विशेषज्ञ का स्पष्ट वक्तव्य कि 'ज़हर से मौत की आशंका' का ज़िक्र है, इसके साथ, पुलिस रिकॉर्ड में मौत की अलग अलग तारीख़ों का खुलासा और इस तरह के अन्य कई तथ्यों को विस्तार से सहज सरल भाषा में रखा गया है। एस आई टी रिपोर्ट के बाद पुस्तक के दूसरे खंड में ही यह बताया गया है कि किस तरह बरी हुए अमितशाह। लेकिन पुस्तक में श्रीकांत खंडालकर और पूर्व जज प्रकाश थोम्ब्रे की रहस्यमयी परिस्थितियों में हुई मौतों का पूरा खुलासा नहीं हो पाता। तीसरे खंड में, जस्टिस लोया की मौत की गुत्थी सुलझाने एवं परिजनों को न्याय दिलाने के उद्देश्य से लड़ी गयी सुप्रीम कोर्ट की क़ानूनी लड़ाई का विवरण और विवेचन है। इस विवरण ने देश की ख़स्ताहाल न्याय व्यवस्था को उघाड़ कर रख दिया है। 231 से 244 पृष्ठों तक अपराध के पर्याप्त सबूत पेश किये गये हैं। कैसे पूरी न्यायपालिका, इन पत्रकारों की नज़र में, एक व्यक्ति को बचाने में लगी है, इस प्रश्न को विस्तार से लगभग छह पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है।

यद्यपि जस्टिस लोया की मौत से संबंधित हादसे को सुप्रीम कोर्ट ने सुनवाई के बाद ख़ारिज कर दिया था; पर इन पत्रकार लेखकों ने देश के सामने जस्टिस लोया की मृत्यु या हत्या से जुड़े सभी प्रश्नों को खंगालते हुए बड़े बेख़ौफ़ ढंग से विचार किया है। इसीलिए यह बहुत महत्वपूर्ण पुस्तक है। जस्टिस लोया की मौत की फिर से निष्पक्ष जांच की मांग को, *सत्ता की सूली* किताब पूरी तरह पुष्ट करती है। यह उल्लेखनीय है कि महेंद्र मिश्र, प्रदीप सिंह एवं उपेंद्र चौधरी ने निर्भीकता के साथ भाजपा-राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्रवाइयों को प्रश्नांकित भी किया है।

मो. 9818859545

पुस्तक का नाम : *सत्ता की सूली*
लेखक : महेंद्र मिश्र, प्रदीप सिंह, उपेंद्र चौधरी
प्रकाशक : शब्दलोक प्रकाशन
मूल्य : 300 रुपये

पुस्तक समीक्षा

लंबे विलंबित के बाद उठता स्वर

दिनेश कुमार शुक्ल

कविता में कुलदीप कुमार की उपस्थिति पिछले पांच दशकों से है। उन्हें पहली बार 1974 में *उत्तरार्ध* पत्रिका में देखा गया था, जिस में सव्यसाची जी ने उनकी कविताओं को प्रमुख स्थान दिया था। उस वर्ष की ऐतिहासिक रेल हड़ताल पर उनकी कविता, 'दृश्य-गिद्ध' बहुत से पाठकों की स्मृति में आज भी बनी हुई है :

...दृश्य में टिल्लू है और उसकी बीमार खांसती मां है
कुत्तों की आहट पर कांपती हुई एक बस्ती है
एक नदी है जो उसके भीतर तभी से बहती है
जब लोहा टोप और बंदूक के भेस में आया था
और टिल्लू के बाबूजी के हाथों पर बैठ गया था...

यह समय तब के शीर्षस्थ कवि धूमिल का ज़माना था जो लोहे की काव्य-वस्तु को कविता में उतार रहे थे। 'लोहे का स्वाद लोहार से मत पूछो' या 'वाह भाई वाह! लोहा भी सोचता है...।' वह युग ही ऐसा था जब सत्ता के बढ़ते अधिनायकत्व से हिंदी कवि सीधे भिड़ रहे थे। कुलदीप की कविता की जड़ भी उसी भावभूमि में है।

कविता में इतनी लंबी उपस्थिति के बावजूद कुलदीप का पहला कविता संग्रह, *बिन जिया जीवन*, अब आया है। सब की तरह कवि की भी अपनी रोज़मर्रा की बाध्यताएं होती हैं, जिनसे उसका संघर्ष लगातार चलता रहता है। लेकिन कविता ने जिसे एक बार स्पर्श कर लिया वह उससे बाहर नहीं जा सकता, घूम घूम कर उसी के पास आता है। तुलसीदास के शब्दों में, 'लुबुध मधुप इव तजइ न पासू'। अथवा सूरदास के शब्दों में, 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवे।' कविता कवि को उसकी सीमाओं और बाध्यताओं के पार ले जाने का काम करती है। लगता है कि कविता ने इस बार कवि कुलदीप को बाध्य कर दिया कि, व्यस्ताओं के बावजूद लंबे समय के बाद ही सही, वे अपना पहला कविता संग्रह पुस्तकाकार रूप में पाठकों को उपलब्ध करायें।

पांच दशकों के लंबे विलंबित के बाद आये इस कविता-संग्रह का नाम, *बिन जिया जीवन* है। प्रत्येक कविता अगम को सुगम बनाने की एक कोशिश है, अधिक से अधिक को भाषा में भर लेने का प्रयास है यहां तक कि उसे भी जो जीवन में पास से गुज़र गया होता है; किंतु उसे स्पर्श कर पाना तक कठिन है। रेल के डिब्बे की खिड़की से दिखायी तो कितना पड़ता है—लोग, गांव, शहर, नदी, पहाड़... लेकिन यह सब तेज़ी से पीछे छूटता चला जाता है। बाज़ारवाद के चलते वर्ग चेतना को हाशिये पर धकेलते हुए अस्मितावादी विमर्श का बोलबाला बढ़ा है। वर्ग चेतना के साथ-साथ अनेक जीवन-मूल्य, अनेक बोलियां-भाषाएं, अनेक संस्कृतियां, अनेक वनस्पतियां और जीव-जंतुओं की प्रजातियां तेज़ी से

लुप्त होती जा रही हैं। कविता इन तमाम जीवन-मूल्यों, आदर्शों और जीव-जंतुओं के छूटते चले जाने के अहसास का दूसरा नाम है। चीज़ों को बचा पाने की एक कोशिश है कविता। यही इस संग्रह की कविताओं का मूल स्वर है। यह स्वर इन कविताओं में सबसे गहराई से उठता हुआ स्वर है। दो उद्धरण–

... मैं अभी तक उसके इंतज़ार में हूं
हालांकि मुझे अच्छी तरह मालूम है
इस तरह से गाड़ी पकड़कर छूमंतर हो जाने वाले
कभी वापस नहीं आते...

('रेलवे स्टेशन का पुल')

... यह कमरा नहीं
बरसों से जोड़ी हुई किताबें हैं
जिन्हें पढ़ने का वक़्त अब
कभी नहीं मिलेगा
मैं इस कमरे में रहता रहूंगा
उसी तरह
जैसे इस जर्जर शरीर में।

('मेरा कमरा')

कविता कवि को लगातार अपूर्णता का बोध कराती रहती है। यही ख़लिश कवि के भावबोध को आगे बढ़ाती है। कविता अनजिये जीवन को जी लेने का एक उपक्रम है। कुलदीप के कविता-संग्रह का यह नाम, दरअसल दुनिया के हरेक कविता संग्रह का नाम है–भले ही अदृश्य रौशनाई में लिखा हुआ।

कुलदीप कुमार पेशे से पूर्णकालिक पत्रकार हैं और ज़्यादातर अंग्रेज़ी मीडिया के लिए लिखते हैं। भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया में भारतीय नाटक, संगीत, समकालीन हिंदी साहित्य तथा अन्य कला-विधाओं की उपलब्धियों और सरोकारों को वे विस्तार से उजागर करते रहे हैं। वैसे तो अंग्रेज़ी मीडिया में हिंदी लेखन और लेखकों के प्रति उपेक्षा का इलिटिस्ट भाव पहले से ही रहा है, पर समय बीतने के साथ और अंग्रेज़ी पत्रकारिता के लगातार गिरते स्तर के चलते अज्ञान और उपेक्षा का भाव बढ़ता ही गया है। ऐसे वातावरण में भी कुलदीप ने इस आयरन-कर्टेन को बख़ूबी तोड़ा है और समकालीन हिंदी साहित्य से वे अंग्रेज़ी मीडिया के पाठकों को परिचित कराते रहे हैं। भारतीय संगीत और संगीत-कार्यक्रमों पर उनकी रिपोर्टिंग बहुत महत्वपूर्ण होती है।

संगीत के साथ लंबी संगत का अनुभव कुलदीप की कविता को एक ख़ास तरह का क्लासिकल स्वभाव प्रदान करता है। ऐसी कविता में शब्द एक दूसरे को पकड़कर आपस में संगत बैठाते हुए पूरी रचना को सघन-अर्थवत्ता और एक विशिष्ट संयम की शक्ति प्रदान करते हैं। कुलदीप भाषा को बहुत संवेदनशीलता के साथ स्पर्श करते हैं, मानो कोई आदमी बहुत सम्हाल कर नवजात शिशु को गोद में उठाना चाहता हो, पर हिचक रहा हो। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी कविता अल्पभाषी है। बल्कि इस स्वभाव की कविता प्रायः अपने कथ्य को, पाठक के सामने रंगमंच के दृश्य की तरह थ्री-डाइमेंशन में प्रकट कर देती है। कुछ उदाहरण :

1. महाभारत के युद्ध का
सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर प्रेम में
निराश

विफल
विकल
जिसके हृदय में इतने बाण धंसे
कि वह उसका तूणीर ही बन गया...

('द्रौपदी')

द्रौपदी यह दृश्य देख रही है और उसकी आंखों से आप भी देख रहे हैं कि सामने लड़खड़ाता वाणविद्ध लुहूलुहान अर्जुन रंगमंच पर अब गिरा कि तब गिरा—यह रंगमंच प्रेम का है जिस पर अर्जुन को अपनी प्रिया द्रौपदी को वस्तु की तरह पांचों भाइयों के साथ बांटना पड़ा था।

2. ...मैं सचमुच मुस्कुराया/ तुम आदतन... ('क्षण')

यहां प्रेम आवेग के साथ मिलने के लिए आगे बढ़ता है किंतु वह औपचारिकता की मुसकुराती हुई ठंडी दीवार से जा टकराता है। मुस्कान का अर्थ प्यार समझ लेना एक ज़माने में आम बात थी। अब शायद नयी पीढ़ी अधिक अनुभवी हो गयी है। हे पाठक! क्या पता कि आप भी इस अनुभव से कभी गुजरे हों।

3. बिहाग के नाग
जब लिपटते हैं
और निखिल बनर्जी जब अल्हड़ प्रेमी की तरह
उनकी आंखों में आंखें डालकर
सितार को बीन की तरह बजाते हैं
तब/मुझे लगता है
मुझसे अधिक सुखी कोई नहीं...
मैंने आज राग देख लिया...

('राग दर्शन')

यहां निखिल बनर्जी का सितारवादन गंधर्व का रूप धरे अपने दोनों हाथों में नागों का वलय पहन कर मंच पर भावाभिभूत राग में भीग रहा है। इस कविता को पढ़ते समय आप भी साकार राग-दर्शन कर सकते हैं।

अमूर्त के मूर्तन की ऐसी अनेक छवियां इस संग्रह में देखी जा सकती हैं। कविता का यह गुण समकालीन कविता में क्रमशः कम होता जा रहा है। अधिकांश समकालीन कविता में भयावह एकरूपता है : एक जैसी भाषा, कथ्य की एक-सी पिटी-पिटायी ज़मीन, विचार की विविधता का निषेध, वर्ग-चेतना का लोप, अस्मितावाद का मायाजाल, और आनुवादिकता का दमघोटू एक-सा विन्यास। समकालीन कविता की ऐसी एकरूप भेड़-चाल से कुलदीप ने अपनी कविता को बचा रखा है। कविता के समकालीन प्रचंड अवसरवाद की आंधी में कुलदीप की कविता आशादीप की तरह जगमगाती है। यद्यपि पेशेगत व्यस्ताओं और प्रतिबद्धताओं के चलते कुलदीप को कल्चर के बाज़ारी चाकचिक्य और चहल-पहल के समारोहों में शरीक होना पड़ता है और पत्रकारिता में यह दिख भी जाता है। किंतु जहां तक कविता का सवाल है उसमें कुलदीप अपने स्वत्व और व्यापक मानवीय-सरोकारों से सीधे-सीधे जुड़े रहते हैं। इसीलिए इस कविता की पहुंच और व्याप्ति गहरी है। समाज में बढ़ते हुए दैन्य, फैलती हुई बेकारी, हिंसा और असमानता का प्रतिरोध इन कविताओं में शांत और दृढ़ता के स्वर में व्यक्त होता है—'चौकीदार की चिंता', 'चौराहे पर लड़की', 'सुबह और सपने', और 'समय' जैसी इस संग्रह की कविताओं में प्रतिरोध का यह स्वर सुना जा सकता है :

...सुबह तो सोने के बाद होती है

लेकिन सोना होता ही कहां है
नींद की बस लपटें-सी उठती हैं
और सब कुछ राख कर चुकने के बाद
मेरी पलकों पर ठहर जाती हैं
तभी मुझे नींद आ पाती है थोड़ी-सी देर
लेकिन सपने नहीं आते
उन्हें मैं जागते हुए देखता...

('सुबह और सपने')

इस कविता-संग्रह की विशिष्टता है इसका रागानुराग। रागानुराग से मेरा तात्पर्य है कवि की संवेदना का वह पक्ष जो एक साथ विराट और सूक्ष्म में अंतर्निहित सौंदर्य को भाषा में उतार सके। ऐसी कविता कलाओं के माध्यमों को अतिक्रमित करती हुई कथ्य की आंतरिक छटा को शब्द के विस्तृत आकाश में उठा देती है–उसके सौंदर्य को ब्राडकास्ट कर देती है। सर्वसुलभ कर देती है। कला जितना कुछ अपने माध्यम से व्यक्त कर पाती है, एक संवेदनशील मन, उसके भी पार जाकर देखना चाहता है। इन अर्थों में, मैं समझता हूं कि कविता कलाओं की कला है। अच्छे कवि का एक काम यह भी है कि बच्चों की तरह पर्दा उठाकर ग्रीन-रूम मे शरारतन कभी-कभी झांक ले। इस संग्रह की कविताओं में इस नज़र का असर बखूबी देखा जा सकता है :

1. रात में कभी-कभी बांसुरी बजती है
   चंद्रमा की नाभि से झरता है अजस्र जीवन रस
   ...
   चंद्रमा की नाभि से
   तिलक कामोद झरता है...

   ('तिलक कामोद')

2. राग की आग
   वही जानता है जो इसमें जला है...

   ('राग दर्शन')

3. ...छल नहीं
   मुझे प्यार ने पछाड़ा है...

   ('मैं')

जीवन दुख-सुख, आनंद-विषाद, आशा-निराशा के ताने-बाने में निरंतर बनती-बिगड़ती संरचना है, जिसमें कवि खुद भी कहीं बैठा हुआ होता है। कविता की सिद्धि यही है कि वह इस वितान में होते हुए भी इसके बाहर जाकर इसको निर्द्वंद्व-निस्संग भाव से देख सके और उसे ज्यों का त्यों भाषा में उतार सके। ताने-बाने की एकरूपता के भीतर जगमगाती विविधता को पकड़ सकने वाली आंख कविता की ही हो सकती है। इस संग्रह की कविताओं में यह विशेषता लगातार दिखायी देती है।

प्रकृति के साथ मनुष्य की अनन्यता और तादात्म्य को कविता में बार-बार कहा गया है; फिर भी, गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में, 'तदपि कहे बिनु रहा न कोई।' कुलदीप कुमार की कविता में प्रकृति किसी लता की तरह लिपटी हुई आती है :

...एक राग झरता है
जंगली खुशबुओं के

रंग-बिरंगे फूल
खिलते हैं
...
दिल यकायक डूबने लगता है
कहीं कोई सरोद बजाता हो शायद...

('जादू')

संगीत से निकलकर संगीत को देखने का अद्‌भुत चित्र है एक कविता में, जहां कवि महान गायक मल्लिकार्जुन मंसूर को, गायन की समाप्ति के बाद चश्मा लगाते हुए देखता है। तुरीयता से लौटकर संसार में वापस आता हुआ गायक कविता के टेलिस्कोप में ही ठीक से देखा जा सकता है। साधारण-सी लगने वाली चश्मा लगाने की क्रिया को एक बड़े कलाकार के परिप्रेक्ष्य में कवि कुलदीप कुमार जब देखते हैं तो एक जीवंत पोर्ट्रेट-सा बन जाता है। किसी इंप्रेशनिस्ट-चित्र की तरह ऐसी झलकियां इन कविताओं में बार-बार आती हैं :

...चौहत्तर साल की वह निष्कंप लौ
एकाएक कांपी
और
उसने चश्मा लगा लिया
...
ज़रा देखें
सुरों के बाहर भी
है क्या कोई दुनिया...

('मल्लिकार्जुन मंसूर')

एक अन्य कविता, 'औरत का दर्द' भी इसी भाव की कविता है :

... वह / एक / औरत है
जो दूर है
और जो मुझे देख रही है
...
उसकी देह में तरह-तरह के फूल हर साल खिलते हैं
दलदल में वह धंसती है / बढ़ता बोझ टांगों पर
संभालने की हड़बड़ी में / मैं देखा जाना सहता हूं
अपने पुरुष होने के अभिमान पर
लजाता हुआ...

('औरत का दर्द')

इस कविता में प्रत्येक शब्द के प्लेसमेंट पर ग़ौर कीजिए—औरत, दूर, औरत का पुरुष को देखना, उसका हर साल खिलना, उसका बढ़ता बोझ, दलदल, और पुरुष का अपने अभिमान पर लजाना। क्या कसा हुआ अंतर्गुंफन है यहां; और एक बहुत जटिल अनुभूति का अंकन है। यह भी एक इंप्रेशनिस्ट चित्र है, क्षण भर को आंखों में प्रतिबिंबित होकर लुप्त हो जाने-वाला। कला की व्याप्ति मनुष्य ही क्या, जड़-चेतन समस्त संसार में है। पशु-पक्षी-वनस्पतियां सभी संगीत की स्वर-लहरी में अनुप्राणित हो उठते हैं। संगीत की इस अंतर्वेधी-शक्ति ने कुलदीप की कविताओं को भी खूब अनुप्राणित किया है। ज़ाहिर है, संगीत

के साथ संगत करने वाली कुलदीप की कविता ऐंद्रिकता के दरस-परस को भी सेलेब्रेट करे– इस संदर्भ में दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कपड़ों के साथ पहनी गयी नींद में
चलते हुए / खामोश हम
अपने शरीरों के आर-पार देख सकते हैं...

('कुछ भी नहीं')

2. दो काले गुलाब / सिहर उठे
कई प्रकाश वर्ष दूर से
आयी एक निश्वास
और चारों ओर एक महीन-सा जाला बुन गयी...

('अनुभव')

काले गुलाबों के निष्पंद स्पंदन का भूकंप जिसने देखा है वह जानता है, ऐसे में पूरा ब्रह्मांड थरथरा जाता है। कविता की ये दो पंक्तियां भी यही कुछ कर रही हैं शब्दों के माध्यम से। प्रेम का झीना-सा आवरण ऐंद्रिकता को और भी प्रगाढ़ कर देता है। इस कविता-संग्रह में प्रेम और शरीर के अंतर्संबंधों को छूती हुई कविताएं चित्रकला-संगीत-मूर्तिशिल्प-साहित्य के संगम का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

इस कविता संग्रह के अंत में पांच कविताओं का 'महाव्यथा' नामक एक उप-अध्याय अलग से है जिसमें *महाभारत* के पांच स्त्री पात्रों की व्यथाकथा कही गयी है। इनमें माधवी, मत्स्यगंधा, गांधारी, माद्री और द्रौपदी शामिल हैं। इन कविताओं में कुंती भी अप्रस्तुत-रूप में प्रस्तुत है। कवि ने इन कविताओं में पौराणिक कथा को आधुनिक संदर्भ में समाजशास्त्रीय विश्लेषण के साथ प्रस्तुत किया है और समकालीन विमर्श के अनुसार इन पांचों कविताओं को मिलाकर एक आख्यान का रूप देने का प्रयत्न किया है। कहना न होगा कि कविता में जीवन के सरोकार सहज रूप में तभी आते हैं जब उनका प्रवाह सहज हो। शास्त्रीयता इस प्रवाह में बाधा डालती है। इन कविताओं में स्त्री की पीड़ा और उसके संघर्ष के अनेकानेक मर्मस्पर्शी प्रसंग हैं। स्त्री के आपस के अंतर्विरोधों को भी यहां कविता में उठाया गया है। हां, कुंती को संभवतः कंट्रास्ट दिखाने के लिए या एक खल-पात्र की आवश्यकता के चलते कवि ने कुछ ज़्यादा-ही रूखे-खुरदुरे रंगों में रंग दिया है। बहरहाल, इन कविताओं को पढ़ते समय मुझे धर्मवीर भारती का *अंधायुग* और उसके मंचन में गांधारी का यादगार-अभिनय करने वाली अभिनेत्री उत्तरा बावकर की याद आ गयी। कलाओं में दिये से दिया जलता है और स्मृति में भी। कविता एक साथ स्मृति और कल्पना के दीयों को जगाने का काम करती है। कुलदीप कुमार की ये कविताएं समकाल के शोर-शराबे में किसी मानवीय मधुर स्वर-लहरी की तरह पाठक के अंतरंग को स्पर्श करती हैं। इस पुस्तक का आवरण चित्र और पूरा गेटअप सुरुचिपूर्ण और आकर्षक है।

मो. 9810004446

कविता संग्रह : *बिन जिया जीवन*
कवि : कुलदीप कुमार
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
प्रकाशन वर्ष : 2019
मूल्य : रु. 199/-

रिपोर्ट

'हम देखेंगे'
1 मार्च 2020, जंतर मंतर, नयी दिल्ली
सीएए-एनआरसी-एनपीआर के विरोध में लेखकों-कलाकारों-संस्कृतिकर्मियों-वैज्ञानिकों का अखिल भारतीय कन्वेंशन

आन फ्रांक, तुम्हारी डायरी कब रुकेगी!
मैं सत्य-कथाएं नहीं पढ़ता/ कभी तो लिखना बंद करो
चारों ओर हंसते खेलते लोग/ छंद-लय में नाचते-गाते लोग
खलनायक बन जाते हैं/ अब और नहीं सहा जाता
लिखना बंद करो/ आख़िरी बार मर जाओ
भूल जायें हम तुम्हें/ याद रखें कि कोई था जिसे हम भूलना चाहते हैं
डरता हूं कि तुम मेरी बेटी हो।

1 मार्च 2020 को नयी दिल्ली के जंतर-मंतर पर आयोजित अखिल भारतीय लेखकों, कलाकारों, संस्कृतिकर्मियों और वैज्ञानिकों के साझा कन्वेंशन में इन कविता-पंक्तियों के ज़रिये लाल्टू ने उस अवसाद की ओर इशारा किया, जो भारत में मनुवादी सांप्रदायिक फ़ासीवाद के चरम उभार के इन दिनों में लोकतंत्रप्रेमी नागरिक समाज के एक हिस्से को अपनी गिरफ़्त में ले चुका है। उनका कहना था कि 'इस अवसाद को परास्त करने वाली उम्मीद की किरण जंतर मंतर पर लेखकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, पत्रकारों, शिक्षकों और छात्रों की इस अभूतपूर्व जुटान से पैदा हुई है।'

देश भर के बुद्धिजीवियों का एकजुट होकर सड़क पर उतरने का ऐसा दृश्य, पांच साल पहले तब दिखा था जब हिंदुत्ववादी तत्वों द्वारा लेखकों, पत्रकारों व अख़लाक़ आदि मुस्लिम ग़रीबों की निर्मम हत्याओं का सिलसिला शुरू हो गया था और जिसके ख़िलाफ़ अपना प्रतिरोध व्यक्त करते हुए लेखकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों आदि ने अपने अपने पुरस्कार वापस करने शुरू कर दिये थे। वह प्रदर्शन तब हुआ था जब साहित्य अकादमी ने भाजपा सरकार के भय से प्रो. एम एम कलबुर्गी की हत्या के ख़िलाफ़ एक शोकसभा तक बुलाने से इनकार कर दिया था जिसका आग्रह जनवादी लेखक संघ समेत कई लेखक संगठनों ने किया था। उस अभियान ने सांप्रदायिक-फ़ासीवादी सत्ता के सामने एक ज़बरदस्त नैतिक चुनौती पेश की थी। इस बार भाजपा सरकार के संविधानविरोधी क़दमों के ख़िलाफ़ देश भर में जो ज़बर्दस्त स्वतःस्फूर्त विशाल जनआंदोलन उठ खड़ा हुआ है उसके साथ अपनी एकजुटता का इज़हार करना, पहले की ही तरह लेखकों-कलाकारों ने, अपना नैतिक और सामाजिक दायित्व महसूस किया। अपने इसी दायित्व का निर्वाह करने के लिए लेखकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों और संस्कृतिकर्मियों के अनेक संगठनों ने इस कन्वेंशन का आयोजन किया जिसके ज़रिये खुद को, देशभर में चल रहे नागरिक-सत्याग्रहों के साथ जोड़ा। लेखकों, कलाकारों व संस्कृतिकर्मियों के अनेक संगठनों का यह कन्वेंशन, इस बार, नागरिकता संशोधन क़ानून, एनपीआर और एनआरसी के विरोध में दिल्ली के जंतर मंतर पर 1 मार्च

2020 को आयोजित हुआ।

'हम देखेंगे' शीर्षक के साथ आयोजित इस कन्वेंशन में हिंदी, अंग्रेज़ी, मलयालम, तेलुगु और कन्नड़ समेत विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखने व काम करने वाले सैकड़ों लेखक-कवि-संस्कृतिकर्मी शामिल हुए।

जनवादी लेखक संघ, दलित लेखक संघ, जन संस्कृति मंच, प्रगतिशील लेखक संघ, इंडियन कल्चरल फ़ोरम, दिल्ली विज्ञान मंच, जन नाट्य मंच, जनसंस्कृति (मलयाली), न्यू सोशलिस्ट इनिशिएटिव, आल इंडिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क, संगवारी, प्रतिरोध का सिनेमा और विकल्प के सामूहिक प्रयास से यह आयोजन हुआ। इसमें कवियों ने अपना प्रतिरोध दर्ज कराते हुए अपनी कविताएं सुनायीं, गायन व सांस्कृतिक टीमों ने नाटक व गीत प्रस्तुत किये। जन नाट्य मंच, जनसंस्कृति (मलयाली), संगवारी थिएटर ग्रुप आदि ने सांस्कृतिक प्रस्तुतियां दीं। 'ज़नाना कलेक्टिव' ने 'ज़नाना का ज़माना' नामक बेहद प्रभावशाली नाट्य प्रस्तुति दी। सारी प्रस्तुतियां मौजूदा सत्ता के तानाशाही क़दमों के प्रतिरोध का इज़हार कर रही थीं।

अरुंधति राय ने अपने जाने-पहचाने अंदाज़ में बिना किसी लाग-लपेट के लेखकों-कलाकारों के सड़क पर आने की ज़रूरत और महत्व को रेखांकित किया। उन्होंने बताया कि नागरिकता संशोधन क़ानून, राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर और प्रस्तावित नागरिकता रजिस्टर फ़ासीवादी राज्य के निर्माण का अंतिम चरण है। नागरिकता हर नागरिक के लिए अधिकार हासिल करने की गारंटी है। नागरिकता पर संशय पैदा कर नागरिक को अधिकार के हर दावे से वंचित किया जा सकता है। यह हक़ की मांग करने वालों को उस मांग के संवैधानिक आधार से ही वंचित कर देने की नायाब परियोजना है। ऐसा बिलकुल नहीं है कि यह संकट मुसलमानों तक सीमित रहेगा। दलित, आदिवासी, घुमंतू क़बीले और सभी तरह के ग़रीब इसके दायरे में हैं, जो अपनी नागरिकता के 'सबूत' न सरकार से ख़रीद सकते हैं न काले बाज़ार से। यह नागरिक को पूरी तरह राज्य की दया पर आश्रित कर देना है। कश्मीर में जो सूरतेहाल बनायी जा चुकी है, वही अब देशभर में दुहरायी जा रही है। लोकतंत्र जिन संस्थाओं के बल पर काम करता है, भारत में उनमें से हर एक की स्वायत्तता ख़त्म की जा चुकी है। ऐसे में जनता के स्वतःस्फूर्त प्रतिरोध को शक्ल और आवाज़ देने का काम केवल निर्भीक बुद्धिजीवी, पत्रकार, लेखक और कलाकार ही कर सकते हैं। अरुंधति राय ने अपने वक्तव्य में दिल्ली में जारी हिंसा पर चिंता जताते हुए कहा कि 'सारे मृतक, सारे घायल और तबाह हो चुके लोग, मुसलमान और हिंदू सभी, इसी शासनतंत्र का शिकार बने हैं जिसका मुखिया नरेंद्र मोदी है, जो हमारा पूर्णतया फ़ासीवादी प्रधानमंत्री है जिसके लिए ऐसी घटनाएं अजनबी नहीं हैं और जो अब से 18 साल पहले अपने राज्य में कई हफ़्तों तक और कहीं बड़े पैमाने पर चलने वाले क़त्ले-आम का इसी तरह ज़िम्मेदार था।' सीएए-एनपीआर-एनआरसी का उद्देश्य उन्होंने 'लोगों को केवल भारत में ही नहीं, बल्कि पूरे उपमहाद्वीप में विस्थापित, विचलित और विभाजित करना' बताया।

सुभाष गाताड़े ने स्पेन के गृहयुद्ध में फ्रांको की तानाशाही के ख़िलाफ़ लेखकों के सक्रिय प्रतिरोध की याद दिलाते हुए बताया कि इतिहास में ऐसे मौक़े आते हैं, जब अपनी अंतरात्मा की आवाज़ की अनसुनी न कर सकने वाले लेखकों को सड़क पर चल रही लड़ाई में शरीक होने के लिए उतरना पड़ता है और आज हमारे देश में ऐसा ही मौक़ा आन पड़ा है।

गांधीवादी कर्मकर्ता हिमांशु कुमार की दो-टूक राय थी कि दिल्ली की हालिया हिंसा के सीधे निशाने पर वे मुसलमान औरतें थीं, जिन्होंने देश भर में शाहीन बाग़ के सत्याग्रह खड़े कर मुसलमानों के ख़िलाफ़ चलाये गये उस मिथ्या-प्रचार की हवा निकाल दी थी कि मुसलमान दूसरों की तुलना में

धार्मिक दृष्टि से अधिक कट्टर और रूढ़िवादी होते हैं। हिंदूवाद के नाम पर सांप्रदायिक राजनीतिक दुकान चलाने के लिए यह प्रचार ज़रूरी होता है। इस प्रचार को लोगों के गले उतारने के लिए यह दिखाया जाता है कि मुसलमान औरतें पुरुषवादी दमन की सबसे बड़ी शिकार हैं। वे हमेशा बुर्क़े में लिपटी रहती हैं, बे-आवाज़ होती हैं। मुसलमान औरतों के दमदार नेतृत्व ने इस सारे ताने-बाने की हवा निकाल दी। यह चीज़ हिंदूवादी राजनीति को मटियामेट कर सकती है। इसलिए चाहे जैसे हो, इस प्रतिरोध को ख़त्म करना ज़रूरी हो गया था।

सम्मेलन में हिस्सेदारी करने वाले लेखकों ने एक स्वर से नागरिकता संशोधन क़ानून को संविधान विरोधी बताया। उन्होंने कहा कि यह क़ानून और इसके साथ एनआरसी और एनपीआर का मूल मक़सद देश में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को तेज़ करते हुए फ़ासीवाद क़ायम करना है। हिंदू राष्ट्र क़ायम करने की मंशा से निर्देशित यह क़वायद देश के अल्पसंख्यकों, दलितों, आदिवासियों व घुमंतू जनजातियों के विरोध में एक गहरी साज़िश है, जो भारत की आज़ादी की लड़ाई के सपनों व आकांक्षाओं के विपरीत है। यह संविधान और लोकतंत्र को ख़त्म कर मनुवादी व्यवस्था क़ायम करने की साज़िश है।

वक्ताओं ने दिल्ली में हुई सांप्रदायिक हिंसा की घटनाओं पर गहरी चिंता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि इसे दंगा नहीं कहा जाना चाहिए, इसमें पुलिस के साथ बहुसंख्यक सांप्रदायिक गुंडों की हिंसा से भविष्य की बहुत ही चिंताजनक तस्वीर उभरती है। जिस तरह के वीडियो सामने आ रहे हैं, वे दिल्ली की हवाओं में घुलते ज़हर की ओर इशारा करते हैं। उन्होंने इस प्रकरण में राजनीतिक दलों व दिल्ली के सत्ताधारियों की भूमिका पर भी सवाल खड़े किये।

11 बजे से 4.30 तक चले इस प्रतिरोध सम्मेलन में वक्ताओं के रूप में अरुंधति राय, सुभाष गाताडे, शुभा, विष्णु नागर, मंगलेश डबराल, टिकेंद्र पवार, हिमांशु कुमार, डी रघुनंदन, संजय काक, भंवर मेघवंशी, बद्री रैना, जगदीश पंकज, हीरालाल राजस्थानी, लाल रत्नाकर आदि ने शिरकत की।

के सच्चिदानंदन, मंगलेश डबराल, अशोक वाजपेयी, गौहर रज़ा, ममता नागर, अनीता थम्पी, सलमा, मृत्युंजय, और अदनान कफ़ील दरवेश की कविताओं ने इस सम्मेलन को भावात्मक समृद्धि प्रदान की।

डूटा की पूर्व अध्यक्षा नंदिता नारायण द्वारा फ़ैज़ की नज़्म, 'हम देखेंगे' के गायन से कार्यक्रम की शुरुआत हुई। नसीरुद्दीन शाह और रत्ना पाठक शाह ने सम्मेलन के लिए अपने वीडियो संदेश भेजे थे, जिन्हें मंच से प्रसारित किया गया। आशुतोष कुमार और संजीव कुमार ने मंच संचालन किया। भागीदार संगठनों द्वारा तैयार 'जंतर मंतर ऐलान' को पेश और पारित करने के साथ प्रतिरोध सम्मेलन समाप्त हुआ। (पूरा ऐलान इस अंक में शुरू में ही दिया गया है।)

सम्मेलन स्थल के चुनाव में ही नहीं, उसकी साज-सज्जा में भी प्रतिरोध का रंग नुमायां था। मंच की पृष्ठभूमि फ्रांसिस्को गोया की मशहूर पेंटिंग, 'तीन मई, अठारह सौ आठ' से बनी थी, जिसमें नेपोलियन की सेना के एक गोलीमार दस्ते का सामना करते हुए स्पानी विद्रोही दिखाये गये हैं। सम्मेलन स्थल को कविताओं और कार्टूनों से सजाया गया था। इनमें बड़ी संख्या में बालेंदु परसाई 'बाप' के बनाये कार्टून भी थे। सम्मेलन के भागीदारों के लिए चित्र बनाने, संदेश लिखने और हस्ताक्षर करने के लिए प्रभूत सामग्री मौजूद थी, जिसका खूब रचनात्मक उपयोग किया गया। यह सारी साज सज्जा खुद जाने माने लेखक चित्रकार, अशोक भौमिक की देखरेख में हुई थी।

वक्ताओं के अलावा भी बड़ी संख्या में नामचीन लेखक-कलाकार इस सम्मेलन में भागीदार हुए। कुछ नाम इस प्रकार हैं : असग़र वजाहत, चंचल चौहान, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, रेखा अवस्थी, अली जावेद, नरेश सक्सेना, रामजी राय, रमेश उपाध्याय, शिवमंगल सिद्धांतकार, मनोज कुलकर्णी, सविता सिंह,

आभा देव हबीब, प्रबीर पुरकायस्थ, मुकुल प्रियदर्शिनी, प्रज्ञा रोहिणी, प्रियम अंकित, प्रियदर्शन, मृदुला गर्ग, गीतांजलि श्री, सुधीर चंद्र, निर्मला गर्ग, रामायन राम, अनिल यादव, मनोज कुमार सिंह, बादल सरोज, गीता हरिहरन, इब्बार रब्बी, देवी प्रसाद मिश्र, हेम ज्योतिका, जवरी मल्ल पारख, संजय जोशी, प्रेम शंकर, उमाकांत चौबे, दिलीप कठेरिया, रमेश भंगी, मुकेश मानस, रजनी अनुरागी, जावेद आलम ख़ान, सुनीता राजस्थानी, हरपाल भारती, पुष्पा विवेक, धीरज सिंह, कौशल सोनकरिया, हरिमोहन शर्मा, गोपेश्वर सिंह, बली सिंह, ख़ालिद अशरफ़, रेणु प्रधान, संजीव कौशल, प्रवीण कुमार, राकेश तिवारी, द्विजेंद्र कालिया, बालेंदु परसाई, मलयश्री हाशमी, मनमोहन, शुभा, अजेय कुमार, सुधन्वा देशपांडे, मदन कश्यप, संजय कुंदन, राजेंद्र शर्मा, काजल घोष, बाल मुकुंद, सुजाता, रचना यादव, नंद किशोर नंदन, कल्पना उप्रेती, रवि सिन्हा, संदीप मील, भाषा सिंह, फ़रहत नक़वी इत्यादि।

प्रस्तुतिः आशुतोष कुमार/संजीव कुमार
मो. 9953056075/ 9818577833

गुलामी

रघुवीर सहाय

मनुष्य के कल्याण के लिए
पहले उसे इतना भूखा रखो कि वह और कुछ
सोच न पाये
फिर उसे कहो कि तुम्हारी पहली ज़रूरत रोटी है
जिसके लिए वह गुलाम होना भी मंज़ूर करेगा
फिर तो उसे यह बताना रह जायेगा कि
अपनों की गुलामी विदेशियों की गुलामी से बेहतर है
और विदेशियों की गुलामी वे अपने करते हों
जिनकी गुलामी तुम करते हो तो वह भी क्या बुरी है
तुम्हें रोटी तो मिल रही है एक जून।

(जनवरी, 1972)

आततायी सत्ता और प्रतिरोध : अंक-1 के लेखक

शाश्वती मजूमदार	9971784144
अनु. नलिन विकास	9717367329
सिद्धार्थ	9711754989
सुभाष गाताडे	9711894180
नित्यानंद तिवारी	9810435834
रवि सिन्हा	9792673444
रामशरण जोशी	9810535019
असग़र वजाहत	9818149015
विष्णु नागर	9810892198
कांतिमोहन 'सोज़'	9818367626
नरेश सक्सेना	8090222200
इब्बार रब्बी	9911710644
राजेश जोशी	9424579277
असद ज़ैदी	9868126587
मनमोहन	9896838229
शुभा	9896310916
कुमार अंबुज	9424474678
अष्टभुजा शुक्ल	8795594931
लाल्टू	9966878063
गौहर रज़ा	9810358179
जावेद मलिक	9873661893
दिनेश शुक्ल	9810004446
अनिल गंगल	8233809053
अजय सिंह	7827263050
हीरालाल राजस्थानी	9910522436
पंकज चतुर्वेदी	9354656050/ 9425614005
संजीव कौशल	9958596170
निशांत	8250412914
अनुज लुगुन	7677570764
अनुराधा सिंह	9930096966
ज्योति लकड़ा	9113325669
चंद्रकांता	8826839117
अदनान कफ़ील दरवेश	9990225150
अनुपम सिंह	9718427689
यतीश कुमार	8777488959
ऋतेश	9874307700
लीमा टूटी	8340592167
मुशर्रफ़ आलम ज़ौक़ी	9899583881
नूर ज़हीर	9811772361
चरण सिंह पथिक	9414846545
शक़ील सिद्दीक़ी	9839123525
शम्सुल इस्लाम	9968007740
प्रभात पटनायक	0124-2350544
सच्चिदानंद सिन्हा	9868354019
बद्री रैना	9205262055
अशोक कुमार पांडेय	8375072473
किरन सिंह	9415800397
कमलनयन चौबे	9911228278
प्रबीर पुरकायस्थ	9811142462
पी साइनाथ	9869212127
राकेश तिवारी	9811807279
मुशर्रफ़ अली	9897023750
जवरीमल्ल पारख	9810606751
अनन्या वाजपेयी	9810026032
अनु. अशोक तिवारी	9312061821

आततायी सत्ता और प्रतिरोध : अंक-2 के लेखक

शुभा	9896310916
नलिनी तनेजा	9868338681
अनु. जवरीमल्ल पारख	9810606751
टी.के. राजलक्ष्मी	9818310554
अनु. राकेश तिवारी	9811807279
डी रघुनंदन	9810098681
अनु. संजीव कुमार	9818577833
सुरजीत मजूमदार	9891568324
अनु. चंद्रप्रभा	9873578855
विष्णु नागर	9810892198
संजय कुंदन	9910257915
नवल शुक्ल	9425636550
धीरेंद्र तिवारी	8126477516
देवी प्रसाद मिश्र	9560976818
सृष्टि श्रीवास्तव	9560210332
मंगलेश डबराल	9910402459
कुलदीप कुमार	9810032608
लीलाधर मंडलोई	9818291188
जयप्रकाश कर्दम	9871216298
हरीश चंद्र पाण्डे	9455623176
चैतन्य मित्र	9608072335
विवेक निराला	9415289528/ 8726755555
संतोष चतुर्वेदी	8887570655
बसंत त्रिपाठी	9850313062
अंशु मालवीय	9170911718
देवेंद्र चौबे	9868272999
बली सिंह	9818877429
महेंद्र सिंह बेनीवाल	8368510267
सुदेश तनवर	9999093364
मणिमोहन	9425150346
सपना चमड़िया	9968851201
विनीताभ	7488543849
सीमा संगसार	8434811917
टेकचंद	9650407519
रानी कुमारी	8447695227
उपासना गौतम	9527903458
सुरेंद्र कुमार पांडेय	9818390399
देवी प्रसाद मिश्र	9560976818
वक़ार सिद्दीक़ी	8989133543
चंचल चौहान	9811119391
सागर सयालकोटी	9876865957
बल्ली सिंह चीमा	7452970255
महेश कटारे 'सुगम'	8770380598/ 9713024380
मुमताज	9755589100
तसनीफ़ हैदर	7289067645
इब्ने कंवल	9891455448
तर्जुमा : नूरेन अली हक़	7011529033
महेश दर्पण	9013266057
संजय कुंदन	9910257915
संदीप मील	9116038790
विश्वासी एक्का	9340382843
संजय जोशी	9811577426
मुरली मनोहर प्रसाद सिंह	9818859545
दिनेश कुमार शुक्ल	9810004446

नया पथ के उपलब्ध अंक (सीमित प्रतियां)

अंक	मूल्य
1. अक्टूबर-दिसंबर 2008	30/-
2. अप्रैल-जून 2009	30/-
3. जुलाई-सितंबर 2009	30/-
4. अप्रैल-जून 2010	50/-
5. जुलाई-सितंबर 2010 (त्रिपुरा विशेषांक)	50/-
6. जुलाई-दिसंबर 2012 (*बालाबोधिनी* अंक)	60/-
7. जुलाई-सितंबर 2013	60/-
8. अक्टूबर-दिसंबर 2013 (राजेंद्र यादव अंक)	60/-
9. अक्टूबर 2014-मार्च 2015	60/-
10. जुलाई 2016-मार्च 2017 (इस्मत चुग़ताई अंक)	100/-
11. अप्रैल-सितंबर 2017 (मुक्तिबोध अंक)	100/-
12. अक्टूबर 2017-मार्च 2018	100/-
13 अप्रैल-सितंबर 2018 (रज़िया सज्जाद अंक)	60/-
14. अक्टूबर-दिसंबर 2018 (भैरवप्रसाद गुप्त अंक)	80/-

नोट : आर्डर के साथ डाकख़र्च 30 रुपये भी भेजें :

संपादक *नया पथ,*
ख़सरा नं 258, लेन नं 3,
चंपा गली, वेस्ट एंड मार्ग,
सैदुल्लाजाब गांव, साकेत मैट्रो स्टेशन के पास,
नयी दिल्ली-110030

आज बाजार में पा-ब-जौलां चलो

चश्म-नम जान-ए-शोरीदा काफ़ी नहीं
तोहमत-ए-इश्क़ पोशीदा काफ़ी नहीं

आज बाज़ार में पा-ब-जौलां चलो
दस्त-अफ़्शां चलो मस्त-ओ-रक़्शां चलो

ख़ाक-बर-सर चलो ख़ूं-ब-दामां चलो
राह तकता है सब शहर-ए-जानां चलो

हाकिम-ए-शहर भी मजमा-ए-आम भी
तीर-ए-इल्ज़ाम भी संग-ए-दुश्नाम भी

सुब्ह-ए-नाशाद भी रोज़-ए-नाकाम भी
उन का दम-साज अपने सिवा कौन है

शहर-ए-जानां में अब बा-सफ़ा कौन है
दस्त-ए-क़ातिल के शायां रहा कौन है

रख़्त-ए-दिल बांध लो दिल-फ़िगारो चलो
फिर हमीं क़त्ल हो आयें यारो चलो

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

January-March 2020 Naya Path Rs. 60.00

Registered with the Registrar Newspapers for India. RNI No.47323/87

जनवादी लेखक संघ के लिए प्रकाशक, मुद्रक, संपादक चंचल चौहान द्वारा खसरा नं. 258, लेन नं. 3, चंपा गली, वेस्ट एंड मार्ग, सैदुल्लाजाब, साकेत मेट्रो के पास नयी दिल्ली–110030 से प्रकाशित तथा प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स ए–21 झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, शाहदरा दिल्ली–95 से मुद्रित